सत्य-उपदेशमाला

सत्य-उपदेशमाला—

वैदिक-साहित्य के प्रसिद्ध प्रकाशक
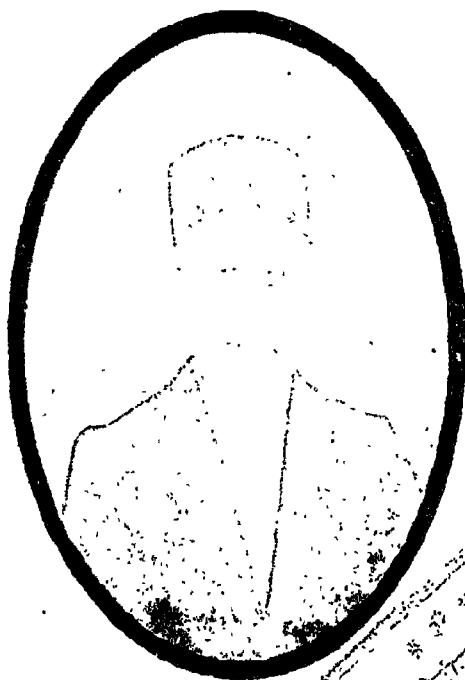
शहीद धर्म महाशय राजपाल जी

जो

६ एप्रिल १९२९ को धर्म की वेदी पर बलिदान हुए।

धर्म की वेदि पर बलिदान होने वाले

म० राजपाल जी

का

संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त

(लेखक—महाशय जी का एक मुसलमान मित्र)

जन्म स्थान

महाशय राजपाल जी अमृतसर के एक निर्धन घराने में पैदा हुए। आप के पिता जी सम्भवतः अर्जी नवीस थे। जो कि कई एक साँसारिक घरेलु कारणों से, आप को आपके छोटे भाई और आपकी माता जी को बिना किसी आश्रय के छोड़ कर किसी तरफ़ चल दिये, और फिर उनका पता न लगा।

बाल्य काल

यह एक ऐसी अवस्था है, जिस में प्रायः लड़के अच्छे नागरिक नहीं बन सकते और अधिकतया दुनियाँ की परीक्षाओं में पड़ कर नालायक रह जाते हैं। परन्तु आप ने आरम्भ ही से परिश्रम-शील स्वभाव पाया था।

आप जो कि उस समय राजपाल नहीं, अपितु घासीटा-राम थे, स्कूल में पढ़ते थे और आपका छोटा भाई अभी बहुत छोटा था। आपने इसी निर्धनता की दशा में किसी न किसी

तरह अपनी तालीम को जारी रखा और मिडल तक विद्या प्राप्त की।

ऐसी अनुभव-रहित छोटी आयु में कई लड़के मेहनत से जी चुराया करते हैं, और मुसीबत में घबरा जाते हैं? लेकिन आप मेहनती और होश्यार थे। आप ने अपने उत्तर दायित्व को शीघ्र ही अनुभव कर लिया कि घर भर में मैं ही हूँ, जो कि अपनी पूज्य माता जी और छोटे भाई की मदद कर सकता हूँ और उनके खर्च का प्रबन्ध करना मेरा कर्त्तव्य है।

उन दिनों मिडल पास के लिये नौकरी मिल जाना सम्भव था, परन्तु ऐसे निःसहाय लड़के के लिये कठिन अवश्य था। और दूसरी ओर उस को उसके कर्त्तव्य बाधित करते थे, कि वह अपनी माता जी और अपने भाई के गुजारे के लिये कुछ न कुछ पैदा करे। इसी चिन्ता में आप ने लेखनकला की ओर ध्यान दिया और दिन रात मेहनत करके थोड़े समय दिनों में ही उस में सफल होगये और अत्यन्त श्रम से कुच्छ तक कितावत से ही अपने सारे घर का निर्वाह करते रहे।

सब से पहली पुस्तक जो उन्हों ने लिखी, वह "सँस्कार विधि" का सब से पहला उर्दु तर्जुमा था और सबसे पहले जिस अखबार की उन्होंने कितावत की, वह "सर्व दुःख निवारण" नामक एक साप्ताहिक वैद्यक का पत्र था, जो कि देर का निकला करता है।

पहली मुलाज़मत

आप अधिक परिश्रम करने और पर्याप्त भोजन न मिलने

के कारण सदा ही जुकाम से ग्रसित रहते थे। आप के निर्बल स्वास्थ्य ने आप को किताबत का काम छोड़ देने के लिये मजबूर किया। अकस्मात् हकीम फ़तहचन्द साहब अमृतसर के पास एक जगह खाली थी। आप वहाँ स्यात् बारह रुपये मासिक पर नौकर होगये और स्वभाव के अनुसार दिन रात के परिश्रम और दयानतदारी से हकीम साहब को ऐसा प्रसन्न किया, कि वह आज तक उनकी प्रशंसा करते हैं।

आप मेहनती होने के अतिरिक्त गंभीर भी थे। आप इन दिनों भी सहायता के विचार से कुछ न कुछ किताबत का काम करते रहे।

आरम्भ ही से आप को लेख लिखने का भी शौक़ था। जब हकीम साहब ने अख़बार "मुहक्क़क" साप्ताहिक अमृतसर से जारी किया, तो आप प्रायः में लेख लिखा करते थे, जो रोचक समझे जाते थे और जब हकीम साहब ने औषधियों के अतिरिक्त सामाजिक पुस्तकों की दुकान "कर्म्म ड्योढ़ी" में निकाली, तो इस पर भी आप ने बहुत दयानतदारी से काम करके साबत कर दिया, कि आप व्यापार में भी एक कामयाब व्यक्ति हो सकते हैं।

आप महात्मा मुन्शीराम जी के भक्त थे। जब उन पर मास्टर आत्माराम अमृतसरी ने कुछ आक्षेप किये, तो आप ने महात्मा जी के हक़ में बहुत कुछ "सत्यधर्म प्रचारक" में लिखा।

उस समय आप आर्य्य सामाजिक विचार के थे और आपकी दयानतदारी, मेहनत और सदाचार के कारण सब लोग आपको "अपना अज़ीज़" समझते थे।

आप को सामाजिक भजन गाने का भी शौक़ था। आप कई वार नगर कीर्त्तनों में भजन गाया करते थे। आप का भजन—

"बन्द न करियो खीर जी, कुछ तरस भी करियो।"

लोग इस रुचि से सुना करते थे। कि एक ग्रामो फोन वाले ने इसका "रैकार्ड" भी भर लिया था।

जालन्धर में

१६०६ ई० में आप जालन्धर "सत्यधर्म प्रचारक" पत्र में क्लार्क होकर गये। वहाँ शायद आप पचीस रुपये मासिक वेतन लेते थे। चौधरी ठाकुर दास और ला० वस्तीराम के आधीन आप ने इस प्रकार काम किया कि वह आप के काम से बहुत प्रसन्न हुए। अतिरिक्त इस के आपका रसूख और मेल जोल वहाँ से बहुत अच्छा था। आप ने हँसमुख और मज़ाकिया तबीयत पाई थी, और सदा प्रसन्न वदन और पुलकित-शरीर रहा करते थे।

उन दिनों आप का आर्य्य समाजी लोगों से और भी रसूख बढ़ गया। महात्मा मुन्शीराम जी के आधीन होने के कारण आप को प्रायः लोग अच्छी तरह जानने लगे। आप उन दिनों बहुत सादा रहते थे और समय मिलने पर थोड़ा बहुत कितावत का भी काम करते थे। और इस थोड़े वेतन में से बहुत थोड़ी रक़म अपने गुज़ारे के लिये रख कर बाकी माता और भाई के निर्वाह के लिये अमृतसर भेज दिया करते थे।

"सत्यधर्म प्रचारक" उन दिनों उर्दु में था। परन्तु १६०६ ई० के अन्त में महात्मा जी ने उसे हिन्दी में कर दिया।

सत्यधर्म प्रचारक हिन्दी में हो जाने के कारण आप फिर अमृतसर आ गये और उन्हीं हकीम साहब के पास कुछ काल नौकर रहे। परन्तु हकीम साहब से मिलने वाले वेतन पर गुज़ारा न कर सकते थे।

लाहौर में

दैवयोग से शायद लाहौर आर्य्य समाज के उत्सव पर आप की महाशय कृष्ण जी से भेंट हुई। वह उन दिनों साप्ताहिक "प्रकाश" निकालते थे और उन को एक क्लार्क की आवश्यकता थी। इस लिये आप उनके पास मैनेजर के रूप में बीस रुपये वेतन पर नौकर होकर लाहौर चले आये।

आप में दयानतदारी और मेहनत करने का स्वभाव बहुत अधिक था, इस लिये आप ने थोड़े ही दिनों में मालिक को प्रसन्न कर लिया।

उन दिनों "प्रकाश" आरम्भ की दशा में था और "बाँस मण्डी" के एक छोटे से मकान में उसका दफ़्तर था। "प्रकाश" के स्टाफ़ में सम्पादक महोदय के अतिरिक्त आप और एक चपड़ासी था।

आप इतने मेहनती और सरल स्वभाव थे, कि कभी २ चपड़ासी के अनुपस्थित अथवा न होने की दशा में स्वयँ ही प्रेस से फ़ार्म आदि भी ले आया करते थे और दफ़्तर में ही रहते हुए दिन रात "प्रकाश" की उन्नति में तत्पर रहते थे। और "प्रकाश" के सारे काम के अतिरिक्त "प्रकाश एजेंसी" के पुस्तकालय से पुस्तकें भी बाहर भेजने का काम करते थे। आप समय २ पर अपने हाथ से 'पार्सल' भी बनाया करते थे।

घसीटाराम से राजपाल

आप स्वामी दयानन्द के सच्चे भक्त और अनुयाई थे। आप के विचार बहुत शुद्ध और परिष्कृत थे। मित्रों के कहने पर आपने निश्चय किया, कि घसीटाराम की जगह अपना नाम कोई और रखें। दिसम्बर मास के अवकाश में आप अमृतसर गये, तो वहाँ विधिपूर्वक संस्कार करके आपने अपना नाम राजपाल रखवा लिया। तब से आप 'राजपाल' के नाम से पुकारे जाने लगे।

राजपाल नाम क्यूँ ?

आप ने अपना नाम राजपाल क्यूँ रखा। इस का भी एक विशेष कारण था।

ऊपर वर्णन किया गया है, कि आप ने जहाँ जहाँ काम किया, अपनी मेहनत और दयानतदारी के कारण मालिकों के दिलों में विशेष प्रेम और इज़्ज़त पैदा कर ली। हकीम फतह चन्द साहिब के एक लड़के का नाम "राजपाल" था, जिसका छोटी सी आयु में देहान्त होगया था। हकीम साहिब आपको बेटे की तरह चाहते थे और बेटे ही की तरह आपको प्यार करते थे। इसलिए जब आपने नाम बदलने का विचार प्रकट किया, तो हकीम साहब ने आप को राजपाल नाम रखने की प्रेरणा की और यह उसी इच्छा का परिणाम था, कि आप ने अपना नाम "राजपाल" रखाया।

विवाह

१९११ ई० में आप का विवाह हुआ। तत्पश्चात आप के उत्तरदायित्व बढ़ गये। दफ़्तर से आप को चालीस रुपये के

लगभग वेतन मिलने लगा, तो भी आप पर घर के खर्च का अधिक बोझ था, और प्रायः थोड़ी आय के होने से चिन्तित रहते थे।

सहानुभूति

आप ऐसा सहृदय हृदय रखते थे, कि थोड़ी आय होने पर भी अपनी मासी जी को भी मदद देते रहे और वह भी प्रायः आप ही के पास रहती थीं। इसके अतिरिक्त जो भी कोई अपना पराया आपके पास आता आप अपनी मीठी वाणी से और हर तरह से उसका सत्कार करते और उसे सदा के लिये अपना भक्त बना लेते थे।

'प्रकाश' से विशेष प्रेम

"प्रकाश" को जिस मेहनत और दयानतदारी से आपने उन्नति के शिखर पर पहुंचाया, इसके कारण मालिक आप पर बहुत प्रसन्न रहते थे। अन्ततः आपने अपने काम से उनको ऐसा प्रसन्न किया, कि नौकर से बढ़ कर आप का सम्बन्ध मालिक से भाई की तरह होगया।

आप में कार्यकुशलता और गंभीरता इतनी थी कि आप "प्रकाश" के प्रबन्ध के अतिरिक्त रिपोर्ट आदि लेने का काम भी बहुत अच्छी तरह से किया करते थे।

महात्मा मुन्शीराम जी का सब से पहला राजनैतिक व्याख्यान जो लाहौर आर्य्य समाज के उत्सव पर १९०८ ई० में हुआ था, आप ने ऐसी खूबी से आदि से अन्त तक अक्षरशः लिख लिया, कि जैसे किसी वार्तालाप को ग्रामोफ़ोन में भर लिया जाता है।

१९१९ ई० में जब हिन्दु मुसलिम मेल था, और उन्हीं

दिनों में महाशय कृष्ण जी जब राजनैतिक अपराधी समझे जाकर "मार्शल ला" के न्यायालय से कारागार में डाल दिये गये, तो आपने उनकी अनुपस्थिति में "प्रकाश" डगमगाने नहीं दिया, अपितु उनकी अनुपस्थिति में इस को उसी तरह जारी रखा।

आप की मेहनत से प्रकाश की पर्याप्त उन्नति हुई और आपकी सहायता के लिये एक और क्लर्क की आवश्यकता समझी गई और आप का वेतन भी कुछ बढ़ा दिया गया, जिस पर आप अपनी माता जी और छोटे भाई को भी लाहौर ले आए, और यहीं रहना प्रारम्भ कर दिया।

पुस्तकालय

आवश्यकताओं के बढ़ जाने के कारण आपने निश्चय किया कि सारा दिन दफ़्तर में काम करने के अतिरिक्त रात्रि के समय कुछ किताबों का काम किया जावे। मेहनत और दयानत में बरकत होती है। ईश्वर ने आप को उत्साह दिया और आपने सब से पहले दो पुस्तकें छपवाईं "प्राचीन सभ्यता" और स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की "सत्योपदेशमाला"।

पहले पहल तो आप को बहुत मेहनत करनी पड़ी। जुकाम ने अब तक आप का पीछा न छोड़ा। परन्तु आप ने भी हिम्मत को हाथ से न जाने दिया, जिसके कारण आप का काम कुछ २ चल निकला, और आपने "सरस्वती-आश्रम" के नाम से एक पुस्तकालय जारी कर दिया।

पुस्तकालय का नाम "सरस्वती-आश्रम" क्यों ?

पुस्तकालय का नाम सरस्वती-आश्रम क्यूं रखा ? इस का भी एक विशेष कारण था।

एक तो आप की पतिव्रता, पतिपरायणा और पतिभक्ता, धर्म्मपत्नी का शुभ नाम "सरस्वती देवी" था। दूसरे, महाशय जी स्वयं "सदाचार" के पक्के पक्षपाती थे। परनारी को सदा बहन तथा माता की दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि सदा झुक जाती थी। स्त्री जाति के लिये आपके हृदय में प्रेम था। आपने स्त्री जाति के उपकारार्थ कई एक नवीन उत्तम पुस्तकें छपवाईं। इस लिए आप "सरस्वती" के उपासक थे।

कुछ काम आरम्भ हो जाने के बाद आप ने आधुनिक दुकान किराये पर ली और पुस्तकालय के काम को अपनी दयानतदारी, और कार्य्यकुशलता से इतनी उन्नति दी, कि लाहौर में आज आपके मुकाबले का कोई पुस्तक विक्रेता न था।

बच्चों से ममता—वैसे तो स्वाभाविक नियम है कि हर एक पिता अपने बच्चों को प्यार करते हैं, परन्तु मनुष्य २ के स्वभाव में फ़र्क़ होता हैं। आप बच्चों के साथ माता से बढ़ कर लाड़ प्रेम करते थे और हर समय उनको सुशिक्षा देते थे, और उन्हें अपनी आँखों से एक दिन के लिए भी दूर नहीं करते थे। उन्हीं बच्चों को पापी ने सदा के लिए आप की आँखों से दूर कर दिया।

लेन देन

आप लेन देन के विषय में ऐसे साफ़ थे, कि आप का कभी किसी से लेन देन के विषय में झगड़ा न हुआ, और जिन २ से आप का वास्ता पड़ा, वह सब आपकी मुक्त कण्ठ से सराहना करते थे। सैकड़ों और हज़ारों के लेन देन में आप का एक रुक्का काफ़ी था। प्रेसों का आप में विशेष विश्वास था।

दिनों में महाशय कृष्ण जी जब राजनैतिक अपराधी समझे जाकर "मार्शल ला" के न्यायालय से कारागार में डाल दिये गये, तो आपने उनकी अनुपस्थिति में "प्रकाश" डगमगाने नहीं दिया, अपितु उनकी अनुपस्थिति में इस को उसी तरह जारी रखा।

आप की मेहनत से प्रकाश की पर्याप्त उन्नति हुई और आपकी सहायता के लिये एक और क्लर्क की आवश्यकता समझी गई और आप का वेतन भी कुछ बढ़ा दिया गया, जिस पर आप अपनी माता जी और छोटे भाई को भी लाहौर ले आए, और यहीं रहना प्रारम्भ कर दिया।

पुस्तकालय

आवश्यकताओं के बढ़ जाने के कारण आपने निश्चय किया कि सारा दिन दफ़्तर में काम करने के अतिरिक्त रात्रि के समय कुछ किताबों का काम किया जावे। मेहनत और दयानत में बरकत होती है। ईश्वर ने आप को उत्साह दिया और आपने सब से पहले दो पुस्तकें छपवाईं "प्राचीन सभ्यता" और स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की "सत्योपदेशमाला"।

पहले पहल तो आप को बहुत मेहनत करनी पड़ी। ज़ुकाम ने अब तक आप का पीछा न छोड़ा। परन्तु आप ने भी हिम्मत को हाथ से न जाने दिया, जिसके कारण आप का काम कुछ २ चल निकला, और आपने "सरस्वती-आश्रम" के नाम से एक पुस्तकालय जारी कर दिया।

पुस्तकालय का नाम "सरस्वती-आश्रम" क्यों ?

पुस्तकालय का नाम सरस्वती-आश्रम क्यों रखा? इस का भी एक विशेष कारण था।

एक तो आप की पतिव्रता, पतिपरायणा और पतिभक्ता, धर्म्मपत्नी का शुभ नाम "सरस्वती देवी" था। दूसरे, महाशय जी स्वयं "सदाचार" के पक्के पक्षपाती थे। परनारी को सदा बहन तथा माता की दृष्टि से देखते थे। उनकी दृष्टि सदा झुक जाती थी। स्त्री जाति के लिये आपके हृदय में प्रेम था। आपने स्त्री जाति के उपकारार्थ कई एक नवीन उत्तम पुस्तकें छपवाईं। इस लिए आप "सरस्वती" के उपासक थे।

कुछ काम आरम्भ हो जाने के बाद आप ने आधुनिक दुकान किराये पर ली और पुस्तकालय के काम को अपनी दयानतदारी, और कार्य्यकुशलता से इतनी उन्नति दी, कि लाहौर में आज आपके मुकाबले का कोई पुस्तक विक्रेता न था।

बच्चों से ममता—वैसे तो स्वाभाविक नियम है कि हर एक पिता अपने बच्चों को प्यार करते हैं, परन्तु मनुष्य २ के स्वभाव में फ़र्क होता है। आप बच्चों के साथ माता से बढ़ कर लाड़ प्रेम करते थे और हर समय उनको सुशिक्षा देते थे, और उन्हें अपनी आँखों से एक दिन के लिए भी दूर नहीं करते थे। उन्हीं बच्चों को पापी ने सदा के लिए आप की आँखों से दूर कर दिया।

लेन देन

आप लेन देन के विषय में ऐसे साफ़ थे, कि आप का कभी किसी से लेन देन के विषय में झगड़ा न हुआ, और जिन २ से आप का वास्ता पड़ा, वह सब आपकी मुक्त कण्ठ से सराहना करते थे। सैकड़ों और हज़ारों के लेन देन में आप का एक रुक्का काफ़ी था। प्रेसों का आप में विशेष विश्वास था।

आप का काम सभी खुशी से छापते थे। कागज़ वाले हज़ारों का कागज़ संकेत पर देने के लिये तत्पर रहते थे।

अपने मुलाज़मों से उन का व्यवहार अच्छा था। जिस को एक बार नौकर रख लिया, उसको कभी निकालते न थे।

आप हर एक की ज़रूरत के वक्त मदद के लिये तय्यार रहते थे। अपने मुलाज़मों के अतिरिक्त भी यदि कोई आदमी उन से किसी प्रकार की सहायता का इच्छुक होता था, तो आप खुशी से उस की सहायता करते थे।

निर्धनता और निःसहाय की अवस्था से किस प्रकार एक आदमी सांसारिक ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति को प्राप्त कर सकता है, इसके आप जीवित उदाहरण थे। धन और यश आप के पांव चूमते थे।

आप ने जो इतनी उन्नति की इस का रहस्य आप की सराहणीय कार्यकुशलता और द्यानतदारी में था।

आपको प्रायः हर प्रकार के विषयों पर नई २ पुस्तकें लिखवाने और उन्हें सुन्दर छपवाने का शौक था। कई प्रकार की विद्या सम्बन्धी, राजनैतिक और धार्मिक पुस्तकें आपने प्रकाशित कीं। नित नये पुस्तक जनता की भेंट करके देश-सेवा कर रहे थे। परन्तु ईश्वर-इच्छा कुछ और ही थी। "रंगीला रसूल" नामक एक पुस्तक छापने पर यवन जाति का पारा ऊपर चढ़ गया। भारत सरकार ने अभियोग चलाया। उस में आप मुक्त होगये। पर मतान्ध मुसलमान आपका जीवन लेने पर उतारु हो गये थे। दिन रात आप पर वार करने की ताक में रहते थे। २६ सितम्बर १९२७ को खुदाबख्श नामक एक

मुसलमान ने आप पर वार किया। छुरे से छः ज़ख्म किये, परन्तु ईश्वर ने जान बचा ली। ९ अक्टूबर १९२७ को इसी दुकान पर "अब्दुल अज़ीज" ने हमला किया। वह भूल से स्वामी सत्यानन्द जी महाराज पर हो गया। आप बच गये, परन्तु यह मूर्ख, मतान्ध लोग कब गवारा कर सकते थे कि एक आर्यवीर देश, धर्म और जाति की सेवा कर सके। ६ अप्रैल १९२९ को दो बजे दिन के "इलमदीन" नामक तरखान नौजवान ने आप पर दुकान के अन्दर बैठे हुए आक्रमण किया। छुरा ऐसी तेज़ी और बल से छाती पर मारा, कि तत्क्षण प्राण पखेरु शरीर से उड़ गये और आप हमेशा के लिए हम से जुदा हो गये।

आप के पीछे आप की धर्मपत्नी और बहुत छोटे २ नन्हे बच्चे निःसहाय रह गए हैं। आप की माता बहुत निर्बल और वयोवृद्ध हैं, जो पुत्र के शोक में निमग्न हैं।

ओ३म्

सत्य-उपदेशमाला।

अर्थात्

ओंकार उपासना, भक्तियोग-ज्ञानयोग कर्मयोग [illegible]
राजयोग आदि आध्यात्मिक विषयों पर

पूज्यपाद श्री स्वामी
सत्यानन्द सरस्वती जी महाराज
के उपदेशों का संग्रह।

सम्पादक व प्रकाशक—
राजपाल ऐंड सन्ज़—अध्यक्ष
आर्य्य-पुस्तकालय, सरस्वती-आश्रम
अनारकली, लाहौर।

संवत् १९८६] दयानन्दाब्द १०५ [सन् १९२९

"हिन्दी प्रेस" मैकलेगनरोड, लाहौर।

चौथी बार] अक्तूबर [मूल्य १।) रुपया

विषय सूची ।

ॐ
उपहार

प्रारम्भिक वचन ।

प्रिय पाठक ! क्या आवश्यकता है कि मैं पूज्यपाद् श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज का आप से परिचय कराऊं ? मैं समझता हूं कि यदि मैं ऐसा करूं तो न केवल आपका अपमान करता हूं प्रत्युत सूर्य्य को दीपक दिखला कर अपनी भी धृष्टता का परिचय देता हूं, क्योंकि आज आर्य्यसमाज का प्रत्येक बालक भी श्री स्वामी जी के लिए प्रेम और श्रद्धा के भाव रखता है। स्वामी सत्यानन्द जी आर्य्यसमाज के उन गिने चुने भूषणों में से एक हैं जिनके उपदेशों और महान् व्यक्तित्व के कारण आर्य्यसमाज को इस कदर उन्नति प्राप्त हुई है। आर्य्यसमाज के उपदेशकों में निःसन्देह स्वामी जी का स्थान ऊंचा है । उनके सदाचार, त्याग, विद्वत्ता सरल जीवन और हास्यमयी सुन्दर मूर्त्ति को देख कर कौन ऐसा पुरुष होगा, जिसका एक बार श्रद्धा से सिर न झुक जाय। उनकी मधुरवाणी में वह रस है कि सहस्रों नर नारी उनके उपदेशों को सुन कर एक बार तो अवश्यमेव चित्र लिखित से हो जाते हैं । कड़वी से कड़वी सचाई को वह ऐसी मीठी वाणी में वर्णित करते हैं कि आर्य्यसमाज के कट्टर से कट्टर विरोधी भी उसे बुरा नहीं मानते। उनके भाषण में सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह वेदों, उपनिषदों वा अन्य-शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को ऐसी सरल भाषा और प्रचलित दृष्टान्तों से स्फुट करते हैं कि मूढ़ से मूढ़ भी समझ सके। उपनिषद् और रामायण तथा महाभारत की कथाएं हिन्दुओं में पहले भी होती थीं और अब भी कहीं २ होती हैं परन्तु जिस शैली पर स्वामी जी ने इन कथाओं को

आरम्भ किया है उससे एक नये युग का आरम्भ हुआ है। जिसने एक बार उनके मुखारविन्द से कथा सुन ली, फिर सम्भव नहीं कि किसी दूसरे की कथा में उसे आनन्द आए। रामायण की कथा हो रही है परन्तु आर्य्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार और विस्तार इसी में आ रहा है। महाभारत की कथा सामने है, महात्मा कृष्ण के पवित्र चरित्र का वर्णन हो रहा है परन्तु उसकी तुलना हो रही है योगीराज दयानन्द के जीवन से। महाभारत के युद्ध का वर्णन है परन्तु हानि बताई जारही है आर्य्यसमाज के घरेलू युद्ध की, अर्थात् जिस उत्तम रीति से वह काम कर रहे हैं वह उनका ही हिस्सा है।

आर्य्यसमाजों में उनके व्याख्यानों का नाम "अमृत वर्षा" रक्खा गया है। वस्तुतः उनके व्याख्यान जो आत्मविज्ञान से परिपूर्ण होते हैं संतप्त हृदयों को शान्त करते हैं।

जहां २ स्वामी जी के उपदेश होते हैं वहां के लोगों की यही इच्छा रहती है कि उनके अमृतमय उपदेशों को पुस्तकाकार में लाया जाय। इसी इच्छा का परिणाम यह पुस्तक है।

स्वामी जी का जीवन चरित्र।

मेरी इच्छा थी कि जिस प्रकार मद्रास की जी० नटेसन एण्ड कम्पनी महान् पुरुषों के विचार उनके जीवन चरित्र सहित जनता के सन्मुख प्रकाशित करती है उसी प्रकार मैं भी स्वामी जी के शुभ विचारों को उनके संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित आर्यजनता के भेंट करूं परन्तु मुझे इस कार्य में सफलता प्राप्त न हुई। एक संन्यासी की जीवन घटनाओं का पता लगाना कोई सुगम कार्य नहीं। ऋषि दयानन्द को स्वर्गवास हुए ४४ वर्ष व्यतीत होचुके, उस समय से लेकर आज तक लगातार उनके जीवन चरित्र को पूर्ण करने का यत्न होरहा है, तिस पर भी वह अभी अपूर्ण है, और प्रति दिन कोई न कोई नई घटना

ज्ञात होती ही रहती है। कारण यह कि बहुतसा प्रयत्न करने पर भी ऋषि ने पूर्णतया अपनी जीवन घटनाएं तथा पारिवारिक वृत्त नहीं बताया। स्वामी सत्यानन्द जी भी उसी आदर्श-गुरु के अनुयायी हैं। फिर कैसे सम्भव था कि उनका वृत्तान्त बिना किसी विशेष प्रयत्न के ज्ञात हो सकता? इस लिए उनके सविस्तार जीवन चरित्र के पुस्तक को किसी और समय के लिए छोड़ कर इस समय उनके आर्यसमाज में प्रविष्ट होने की मनोरंजक कथा पाठकों की भेंट की जाती है:—

विचारों में परिवर्तन।

आर्यसमाज में प्रवेश से पूर्व स्वामी जी महाराज जैन धर्म में गुरु की उच्च पदवी पर विराजमान थे, जैनी समुदाय में उनकी बहुत मान प्रतिष्ठा थी। एक दिन अध्यात्म-चिकित्सा नामी पुस्तक का यह अध्ययन कर रहे थे जिसमें योगाभ्यास और उसके साधनों का वर्णन था। जिज्ञासा का भाव पूर्वजन्म के संस्कारों और कुलीन ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने के कारण प्रबल था। पुस्तक के आत्मिक विचारों का मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, और उसी दिन से योग के सबसे पहले और आवश्यक अंग ईश्वर विश्वास के सम्बन्ध में स्वामी जी के विचारों में परिवर्तन होगया और उन्होंने अपने मन में यह संकल्प कर लिया कि वह पहले न्यून से न्यून ६ मास के लिये ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध तर्क वितर्क न करेंगे। इस अवसर में उन्होंने महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का भी अवलोकन किया, जिससे शनैः २ जैन-धर्म के प्रायः समस्त मूल सिद्धान्तों से उनका विश्वास उठ गया और वैदिक धर्म में श्रद्धा बढती गई। ६ मास के बाद उन्होंने कई विद्वानों के संमुख अपनी शङ्काओं को रक्खा परन्तु किसीने सन्तोषजनक उत्तर न दिया। जिन पुरुषों ने धर्म और केवल धर्म के लिये अपने प्रिय भाई बन्धुओं को छोड़ कर किसी मत में प्रवेश किया हो

उन्हें जब यह विश्वास हो जाय कि यह मेरे आत्मा को तृप्त नहीं कर सकता वह कब उस मत में रह सकता है।

स्वामी जी को जब यह विश्वास होगया कि जैनधर्म उनकी आत्मिक प्यास को बुझा नहीं सकता उन्होंने उस धर्म में प्राप्त सब प्रकार की मान प्रतिष्ठा को त्याग कर दिसम्बर १८६१ में मलेर कोटला में आर्यसमाज रूपी अमृत के सरोवर में स्नान करके सच्ची शांति को लाभ किया और जैनधर्म को अन्तिम नमस्कार किया।

आर्यसमाज के कार्यक्षेत्र में।

आर्यसमाज में दीक्षा लेने के बाद स्वामी जी का विचार था कि वह किसी वन या एकान्त स्थान में बैठ कर आध्यात्म ज्ञान के उच्च आदर्श तक पहुंचने का यत्न करें परन्तु महात्मा मुंशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्द जी, के सत्संग से उनकी प्रवृत्ति वैदिक धर्म की सेवा में होगई और उस दिन से आजतक दिन रात एक करके बुद्धधर्म के सच्चे भिक्षुओं के समान आप वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

अन्य उपदेशकों की अपेक्षा स्वामी जी में यह विशेषता है कि वह वर्ष में दो तीन मास एकान्त सेवन करके आत्मिक उन्नति करते हैं जन्मशताब्दी के बाद आपने डेढ़ वर्ष तक एकांत वास करके अपने आत्मिक जीवन को उन्नत किया। आर्यसमाज में इस पर चलने वाले बहुत थोड़े हैं।

चौथा संस्करण।

इस पुस्तक के तीन संस्करण पहले छप चुके हैं अब यह चौथा संस्करण बहुत से नये उपयोगी उपदेशों के साथ आप की भेंट किया जाता है। जिस प्रकार आप लोगों ने इस पुस्तक को पहले अपनाया है आशा है कि अब भी इसका वैसा ही प्रचार करेंगे।

—राजपाल

ओ३म्

सत्य उपदेश-माला।

१—ओंकार उपासना।

उपासना।

मनुष्य स्वभाव ही से किसी न किसीका उपासक है। इसमें उपासनावृत्ति नैसर्गिक है, कृत्रिम नहीं। विद्वानों ने जंगली जातियों में भी उनके बुद्धि विकाश के अनुसार उपासनावृत्ति का अस्तित्व देखा है। इतिहास के मन्दिर में प्रविष्ट होकर किसी जाति के यदि पुरातन से पुरातन वर्षपत्र को निकाला जाय, तो उसमें ऐसा एक भी दिन न मिलेगा, जबकि वह उपासना शून्य थी। ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य मण्डल को मर्त्यलोक में अवतार धारण करते समय ही उपासनावृत्ति के तार में परो दिया गया है, कि कहीं यह अमरलोक से विमुख न हो जाय, और इसका अनन्त के साथ सम्बन्ध बना रहे। सूर्य्यदेव जिस प्रकार अपने से बिछुड़े हुए ग्रहों को अपने आकर्षण द्वारा अपनी ओर आकृष्ट कर रहे हैं, इसी प्रकार परमात्मदेव अपनी अपार दया से परम पद से पतित मायाभिमुख प्राणी को अपनी ओर खींचते हैं, और यह आकर्षण परम सुख की

प्राप्ति की आकांक्षा के रूप में सब मनुष्यों में प्रत्यक्ष है। तीन गुणों से मिश्रित सृष्टि में धूप छाया की भान्ति परिवर्तनशील जगत में परम सुख की प्राप्ति मानना "मृगतृष्णा" है। क्योंकि दृश्य पदार्थ देश और काल से घिरे हुए हैं, इसलिए अल्प हैं, परम नहीं। जो वस्तु अल्प है उससे परम सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है? परम सुख की प्राप्ति और परमानन्द की उपलब्धि तो देश काल से ऊपर परम प्रभु परमात्मदेव ही के लाभ से हो सकती है अन्यथा नहीं। इस समझ को सन्त लोग 'आत्मिक विवेक' कहते हैं। आत्मिक विवेकयुक्त विवेकी भक्तजन परम सुख की प्राप्ति के लिए परमात्मदेव का जो ध्यान, आराधना और चिन्तन करते हैं, वही परम पाविनी 'उपासना' है॥

गुरु भक्ति।

आदि काल ही से सन्त लोग यह कहते आए हैं, कि आत्मिक लोक की यात्रा में सफलता बिना गुरुमुख हुए, और बिना गुरु सेवन किए नहीं उपलब्ध होती और जब तक गुरुदेव अपने द्वार के दीन भक्त पर दया न करें, उसको मार्ग पर न चलायें, और यात्रा में आने वाले विघ्न बाधाओं से न बचाएं, तब तक आत्मिक कल्याण की आशा दुराशा है। इसी लिए इस मार्ग के जिज्ञासु यात्री और प्रेमी सबसे पूर्व गुरुदेव की गवेषणा करते हैं। दूर दूर देशों में, पर्वतों पर, नदी नालों के किनारे, और गिरि

गुफाओं में गुरुदर्शन की अभिलाषा केलिए घूमते फिरते हैं, पर किसी भाग्यवाले ही को कदाचित् कहीं आत्मनिष्ठ महात्माओं का मिलाप होता है, नहीं तो बहुतेरे बेचारे भोले भाले भक्त व्यर्थ ही भटकते रहते हैं। मानुषी देहधारी गुरुका मिलाप दुर्लभ मान कर कोई मनुष्य अपने कल्याण से वञ्चित न रह जाय, इसलिए परम सन्त योगिराज श्रीपतञ्जलि ईश्वरभक्ति से समाधि सिद्धि बताते हुए उपदेश करते हैः—'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्' परमात्म-देव कालके घेरे से ऊपर होने से ब्रह्मा मनु आदि पूर्वज महात्माओंके भी गुरु हैं। इसका तात्पर्य यही है, कि परम पद का प्रेमी, परमात्मदेव ही को परम गुरु मान, आराधना काल में उसीकी दया और सहायता की याचना किया करे।

सनातन भक्ति धर्म में अपने गुरु में परम प्रेम और परा भक्ति उत्पन्न करने के लिए ओम् परम और चरम साधन है। इसी ओम् नामसे असंख्य भक्तजन सफल मनोरथ और सिद्ध-काम हो गए। इस समय भी सैंकड़ों सन्तजन इसी नाममें धुन लगा निमग्न रहते हैं। इस नामका जितना अधिक प्रभाव है, इससे जितनी शीघ्र सिद्धि और समाधि होती है, उसका अंश भी अन्य साधनामें मिलना दुर्लभ है।

ओ३म् का महत्व।

ओ३म् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है। इसमें ईश्वर के सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन है। इसमें ईश्वर के सब गुण आजाते

हैं। ऐसा पूर्ण ऐसा उत्तम ईश्वर सम्बन्धी दूसरा नाम नहीं मिलता। ओम् कहते समय किसी भी अन्य विशेषण की आवश्यकता नहीं पड़ती। सब भाषाओं के, ओम् से भिन्न ईश्वर सम्बन्धी नामों के साथ विशेषण लगाये बिना परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप का बोध नहीं होता।

ऐश्वर्य्यवान् होने से परमात्मा का नाम ईश्वर है। परन्तु इस नाम से ईश्वर की सर्वज्ञता सर्वशक्तिमत्ता और पूर्णानन्दता सिद्ध नहीं होती। यह नाम राजा महाराजों केलिए भी साहित्य में उपयुक्त हुआ है। परमात्मा कहने से 'सबसे बड़ा आत्मा' इसी अर्थ का बोध होता है, न कि सर्वज्ञान, सर्वशक्ति, आदि गुणों का। सर्वज्ञ कहने से ईश्वर सर्वज्ञानी है, सर्वशक्तिमान् कहने से ईश्वर सर्व-शक्तियुक्त है, इन्हीं गुणों का बोध होता है, शेष गुणों का नहीं। जिस प्रकार पण्डित लोग ईश्वर अथवा परमात्मा आदि शब्दों के साथ अनन्त ज्ञान, जीवन शक्ति और आनन्द आदि विशेषण लगाते हैं, इसी प्रकार मौलवी और पादरी लोग भी खुदा, अल्लाह और गाड आदि ईश्वर के नामों के साथ अनेक विशेषण लगा कर ही अपने भावको प्रकाशित करते हैं। जैसे परमेश्वर, खुदा अथवा गाड सर्व-शक्तिमान्, अविनाशी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और परमानन्द है, यह कहा जाता है, वैसे ओम् के साथ सर्वशक्तिमान् आदि विशेषण जोड़कर ओम् का वर्णन करना अनावश्यक

है । ओम् कहना ही भक्त के लिए पर्याप्त है, क्योंकि बीज में पेड़ की भांति सब विशेषण इसी में समाये हुए हैं ॥

ओ३म् के विशेषण ।

भक्ति धर्म ईश्वर पवित्र, प्रेम अतुल तथा दोषरहित है उसे सर्वशक्तिमान् कहा गया है इसलिए कि सब शक्तियां परमात्मदेव में हैं ।

महात्मा लोग कहते हैं कि जैसे 'अ' वर्ण में अन्य सब वर्ण और शब्दजन्य सारा ज्ञान है इसी प्रकार 'अ' (ईश्वर) में सम्पूर्ण ज्ञान है । 'अ' (परमात्मा) सर्वज्ञ सर्वदेशी है । 'अ' 'उ' और 'म्' से ओ३म् का प्रकाश होता है । मुनिलोग इस नाम रचना से सिद्ध करते हैं कि हवन की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' वर्ण से हैं, ऐसे ही सृष्टि की उत्पत्ति तथा आदि 'अ' परमात्मा से हैं । जैसे ध्वनि के मध्य में मध्य पूर्ण प्रतिनिधि 'उ' वर्ण है, तथा सृष्टिके मध्य में भी इसका आधार और पालन पोषण कर्त्ता 'उ' (परमात्मा) है जैसे ध्वनिकी पूर्णतासे समाप्ति 'म्' वर्ण में है, एवमेव सृष्टि का अन्त सृष्टि का लय 'म्' (परमात्मा) ही में है । सारांश आदि में ओम् है, मध्य में ओम् है और अन्त में भी ओम् ही है । ओम् से रचना ओम् से पालना और ओम् ही से लय है ॥

जैसे 'अ' सब वर्णों में रमा हुआ है, अन्य वर्णों के उच्चारणका आधार आश्रय और जीवन 'अ' है, वह स्वयं

स्वतंत्र है। अन्य सब वर्ण परतंत्र है, 'अ' के आधीन हैं। ऐसे ही 'अ' (ओम्) सर्वान्तर्यामी है, सब में रमा हुआ है और स्वतंत्र है। अन्य सारे पदार्थ इसके समीप ऐसे ही हैं, जैसे अवर्ण के समीप सम्पूर्ण वर्ण। अतएव 'ओम्' सब पदार्थों का आधार आश्रय और जीवन है। सत्ताएं परतंत्र है, और 'ओम्' के अधीन हैं। सबका अन्तरात्मा 'ओम्' है॥

वर्णों में अ वर्णवत् ओ३म् सब पदार्थों में व्यापक है सब से महान् है। जो वस्तु पूर्ण और महान् हो वही आनन्दमय हो सकती है अतएव आनन्दस्वरूप है॥

ध्वनि का उच्चारण ही 'ओ३म्' है, आकृति नहीं, आकृति केवल संकेतमात्र है। इसीलिए सभी पंडित शब्द को निराकार और नित्य मानते हैं॥

ओ३म् से भिन्न परमात्मदेव के सारे नामों के एकवचन, द्विवचन और बहुवचन होते हैं अन्य भाषाओं में भी ईश्वर सम्बन्धी नामों में ऐसा ही परिवर्तन होता है, परन्तु 'ओ३म्' अव्यय है, अव्यय एकसा रहता है उसका एक ही वचन रहता है, क्योंकि 'ओ३म्' एक ही है। किसी बात के स्वीकार करने के अर्थ में भी 'ओ३म्' आता है। संकेत में 'ओ३म्' सर्वत्र पाया जाता है। वेद के आदि और अन्त में ओ३म् है। विद्वानों का मत है कि 'ओ३म्' सब धर्म्मों में किसी न किसी शकल में पाया जाता है॥

ओम् स्मर ।

जिस वेदसे सारे ज्ञानोंका जन्म हुआ है और जो सारे धर्मों का आदि स्रोत है, उस वेद में किसी ईश्वर नाम के स्मरण का आदेश हैं तो वह 'ओम्' ही है। 'ओम् क्रतो स्मर' हे कर्मशील मनुष्य ! ओम् का स्मरण कर। 'ओम् खं ब्रह्म' (यजु० ४०—१७) ओम् अकारवत् निराकार सर्वत्र परिपूर्ण और ब्रह्म है ।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्ताद्विदुस्त इमे समासते ॥

(ऋ० मं० १ सू०—१६४—मंत्र ३९)

जिस ऋग्वेदके सार परम अक्षरमें सारे लोक और इन्द्रियां स्थित हैं, जो उसको नहीं जानता वह ऋग्वेद (के पाठ) से क्या करेगा। (और) जो उस अक्षरको जानते हैं वे ही संसारमें भलीभांति रहते हैं। इससे अधिक ओम् नामकी महत्ता, इससे अधिक ओम्का गौरव, और इससे अधिक ओम्का महत्त्व गायन शब्दोंमें और कोई क्या करेगा ! वास्तवमें वेद पवित्रने जो पदवी ओम् को दी है वह परम है।

वैदिक ग्रन्थोंमें वार वार ओम्का गायन किया गया है। और जिन महाभाग भक्तोंको उपनिषद्रूपी ब्रह्ममन्दिर में प्रवेश करनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआहै, वे मुक्तकण्ठसे कहेंगे कि उपनिषद् ओम्ही का यश गाती हैं, और ओम् अक्षरही

की उपासना बताती है। उपनिषदोंके पाठसे तो प्रतीत होता है कि वह ब्रह्मविद्या की निर्मल गंगा ऋषियोंके मस्तकरूप शिखरों ही से उतरकर संसार को पावन करती हुई अन्तमें ओम् सागरमें समा रही है ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ (कठ २-१५)।

आत्मज्ञानी गुरु शिष्यको उपदेश करते हुए कहते हैं कि सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सारे तप जिसको गा रहे हैं, और जिस पद (प्राप्ति) की इच्छा करते हुए (तपी अथवा ब्रह्मचारी गण) ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, उस पदका संक्षेपसे मैं तुम्हें कहता हूं (वह पद) 'ओम्' यह पद है। 'ओमित्येव ध्यायथ आत्मानं स्वस्तिवः पाराय तमसः परस्तात्' (मुण्डकोपनिषद्)। महात्मा उपदेश देते हैं, कि हे उपसको! अन्धकार से पार होने के लिए परमात्माको 'ओम्' ऐसा लक्ष्य अथवा ध्येय बनाकर चिन्तन करो, तुम्हारा कल्याण हो। सारे माण्डूक्योपनिषद्में ओम् हीका यश गायन किया है। इस उपनिषद्कार महात्माने त्रिलोकी का समावेश ओम्में सिद्ध किया है, "ओमिति ब्रह्म, ओमिदं सर्वम्" तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है, ओम् ब्रह्म है, ओम् ही यह सारा विश्व है। उपनिषदोंके सम्बन्धमें शेष इतना कथन पर्याप्त है कि छान्दोग्य और बृहदारण्यके उपासना भागों में

'ओ३म्' उपासनाका बड़े विस्तारसे वर्णन है। उपनिषदोंमें वर्णन हुए सब सन्तोंकी सम्मतिमें ओम् ही ब्रह्म, ओम्ही विश्व, ओम् ही प्राण आत्मा और ओम् ही परम ध्येय है। इस लोक और परलोकमें सफल बनाने वाला भी ओम् ही है, और वही परम अवलम्बन, सहारा और भरोसा है ॥

सब सन्तोंमें ओम्की उपासना।

ब्राह्मणग्रन्थों से आरम्भ करके पुराणों पर्यन्त साहित्यमें जितने महात्माओं का वर्णन आया है, वे सब ओम् केही उपासक थे। मनु महाराज तो 'ओम्' को तीन वेदोंका सार बताते हैं, और इसको "एकाक्षरं परं ब्रह्म" परब्रह्म कहते हैं। इन्हीं महाराजने बताया है कि 'जप्येनैव तु संसिद्धेत् ब्राह्मणो नात्र संशयः' इसमें कोई संशय नहीं कि ब्राह्मण जप ही से सिद्ध हो जाता है। ब्रह्मासे जैमिनि पर्यन्त महर्षि मण्डल ओम् ही का उपासक था। रामायणमें वर्णन आता है कि सिद्धाश्रम को जाते हुए गंगा के किनारे प्रातःकाल परम, कर्मयोगी, मंगल नाम श्रीराम ने अपने छोटे भाई लक्ष्मण समेत स्नानादि करके "जेपतुः परमं जपम्" गायत्री सहित 'ओम्' परमको जपा ॥

एक दिन श्रीयुधिष्ठिर महाराज प्रातःकाल स्नान सन्ध्या आदिसे निवृत्त होकर वस्त्र धारण और परिष्कार आदि करके अखण्ड ब्रह्मचारी शरशय्याशायी श्रीभीष्म के दर्शनार्थ जानेकी आकांक्षासे प्रथम भगवान् श्रीकृष्णके

पास गया। युधिष्ठिरजी ने देखा कि श्रीकृष्ण अकम्प और अचल भावसे "ध्यानमेवापद्यत" ध्यानारूढ़ हैं। उस दिन युधिष्ठिरजी श्रीकृष्ण महाराजको संग लेकर भीष्मजीके पास गए और प्रश्न पूछनेकी आज्ञा लेकर सायं समय हस्तिनापुर लौट आए। श्रीकृष्ण, राजा युधिष्ठिरसे पृथक् होकर अपने शयनागारमें प्रविष्ट हुए। निर्दोष नीन्द लेते हुए जब चार घड़ी रात्रि शेष रही महाराज उठकर बैठ गए, और अपनी सारी इन्द्रियों और चित्तवृत्तियों को एकाग्र करके श्रीकृष्णदेवने उस समय "दध्यौ ब्रह्म सनातनम्" सनातन ब्रह्म 'ओम्' का चिर तक ध्यान किया।

श्रीकृष्णजीने ओम्को "एकाक्षरं परं ब्रह्म" एकाक्षर ब्रह्म कहा है, और गीतामें यह भी बताया है कि "वेद्यं पवित्रमोंकारः" पवित्र ओंकार जानने योग्य है। गीताके पाठसे यह बात निश्चित प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण महाराजके समय ब्रह्मज्ञानी और सारे वैदिकधर्मी लोग प्रत्येक शुभकर्मके प्रारम्भमें 'ओम् तत्सत्' का पाठ पढ़ा करते थे। क्योंकि श्रीकृष्ण कहते हैं:—

'ओम् तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः'

(गीता १७-२३)।

'ओम् तत्सत्' इन तीन पदोंको ब्रह्मनिर्देश कहा गया है "इसलिए ब्रह्मवादियोंके यज्ञ दान तप आदि शास्त्रोक्त कर्म सदा 'ओम्' उच्चारण करके ही किए जाते हैं"। ध्यानमें

निपुण बौद्धभिक्षु भी एक अक्षर ओम् ही में अपने आपको निर्वाण करते हैं। श्री शंकराचार्य्य आदि आचार्य्य इसको प्रतीक मानकर उपासना करना बताते हैं। देशी भाषाओंमें अपने भावोंको प्रकाशित करनेवाले भक्ति धर्मके अनुयायी दादु, कबीर, चेतन, चरणदास, श्रीनानक जी आदि सन्त जन सीधे अथवा प्रकारान्तर से ओम् ही के भक्त थे। सन्तराज स्वामी दयानन्द जी नियम से नित्य बड़ी देर तक ओमके ध्यानमें लीन हुआ करते थे। महाराज ने संन्यासियोंको ओम्का जप करनेकी प्रबल प्रेरणा की।

इस समय भी सैकड़ों साधु, संन्यासी, सूफ़ी, फ़कीर, और सज्जन गृहस्थ अपने मनमें ओम् नाम की माला जपते हैं, और परमानन्दकी प्राप्तिका सर्वोत्तम साधन इसी शब्दको समझते हैं ॥

ओम् सोहम् ।

बहुतसे महात्माजन 'ओम् सोहम्' का श्वास प्रश्वासके साथ जप करते हैं। कईयोंको केवल 'सोहम्' का जाप करते भी देखा है। गोरक्षापद्धति, हठयोगप्रदीप, आदि योग ग्रन्थों और चरणदास आदि महात्माओंकी वाणियोंमें 'सोहं' जापका विधान भी किया गया है। इस 'सोहम्' संतजापका अर्थ 'वह (ब्रह्म) मैं हूं' लोग करने लग गए हैं। पर महात्माओंके मतमें इस अर्थका आदर नहीं है। ध्यान-विद्याके भेदोंको जाननेवाले मुनिजन 'सोहम्' को ओम्

रहा बताते हैं। जैसे व्याकरणशास्त्र में प्रत्ययोंके विधान करते हुए सुगमतार्थ कई अक्षर जोड़े जाते हैं, ऐसे ही श्वास प्रश्वासके साथ जप करते समय सुगमता हो, यह सोच कर नवीन संतोंने 'ओम्' के साथ 'स' और 'ह' यह दो अक्षर जोड़ दिए हैं। भीतरको सांस खींचें तो 'सो' की लम्बीं ध्वनि प्रतीत होगी, और यदि नाकसे धीरे २ बाहर सांस छोड़ते जायं तो 'हम्' की गूंज ज्ञात होगी। इसी क्रमको और स्वाभाविक क्रमको सोच कर सज्जनोंने 'ओम्' में 'स' और 'ह' मिलाए हैं। यदि व्याकरणके व्यर्थ प्रत्यय अक्षरोंकी भांति 'स' 'ह' का बोध कर दिया जाए तो शेष 'ओम्' ही रह जायगा। ओ३म् का उच्चारण सुगम और कोमल है ॥

जातकर्म संस्कार और ओ३म्।

संस्कारपद्धति के अनुसार, जब बालकका जन्म हो तभी उसका पिता सुवर्ण शलाकाको घृत और मधु लगाकर नवजात बालककी जीभ पर बड़े कोमल हाथसे 'ओम्' लिखे और उस दूजके चांदके दर्शनोंसे प्राप्त हुई प्रसन्नताका प्रकाश "अंगादंगात्सम्भवसि" इत्यादि पाठ पढ़ करके करें। उसी समय उसके कानमें "वेदोऽसि" तू वेद है, यह शब्द कहें ॥

जन्म से ही बालक की जीभ पर ओम् लिखकर वैदिक पिता स्वसंन्तान को इस भावसे प्रभावित करता है। उसपर

यह भाव प्रकाशित करता है, कि मेरे चित्त के चांद तेरी जीभ पर पहले पहिल विराजने वाला शब्द ओम् है तेरी जीभ पर सदा रहने योग्य कोई नाम है तो यह "ओम्" है ॥

पुत्र पुत्री की जिह्वा पर सबसे प्रथम 'ओम्' लिखने का यह भी तात्पर्य्य समझना चाहिये कि बच्चे को सब से पहिले 'ओ३म्' शब्द ही सिखाना उचित है। ऐसा करना एक तो सन्तान पर शुभ संस्कार डालना है, दूसरे 'ओम्' अतीव कोमल होने से बच्चे को उच्चारण करना सुगम है, ओ ओ तो प्रत्येक बच्चा पुकारा करता ही है, केवल होंठ बन्द करना ही शेष रहता है, और वह भी बच्चे के लिए कोई कठिन काम नहीं उन माता पिताओं को अपना सौभाग्य समझना चाहिए, जिनकी सन्तान बाल्यकाल से ही आस्तिक भाव के संस्कारों के रंगमें रंगी जाय। वह सन्तान भी पुण्यवान् है जिसको पैतृक सम्पत्ति की भांति ईश्वर की भक्ति, ईश्वर का नाम माता पिता से प्राप्त हुआ है। माता पिता की ओर से इससे बढ़कर सन्तान को देने की कोई वस्तु नहीं, और यह पितृ ऋण का बड़ा भाग है, जिसे सन्तान ने आजन्म स्मरण रखना है ॥

अन्तकाल में ओ३म् स्मरण।

"ओम् क्रतो स्मर" वेद आज्ञा करता है, कि हे मनुष्य! तेरा आत्मा निकल जाने पर यह देह अन्त में भस्म है,

अतएव 'ओम्' का स्मरण कर। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा कि जो मनुष्य मरण समय भी 'ओम्' का स्मरण करता है, वह परम गति को लाभ कर लेता है। महाभारत में कहा है कि जब द्रोणाचार्य पर धृष्टद्युम्न ने प्रबल प्रहार किया तो आचार्य सम्भल न सके, तन पिंजर से उनके प्राण पखेरू उड़ने लगे, उसी समय, समर भूमि में ज्ञानी ब्राह्मण ने ओम् में ध्यान लगाना आरम्भ किया और अन्त में मरण धर्म देह को छोड़ कर उनका आत्मा 'ओम्' की सीढ़ी से स्वर्गारोहण कर गया॥

जिस मनुष्य का अन्त सुधर गया, उसका सब कुछ सुधर गया। महात्माओं के मत में जिसकी मति अन्त में भी 'ओम्' में लगजाय उसका नाश नहीं होता। परन्तु मोह माया में फंसे हुए मनुष्य के लिए अन्त के समय अपने आपको सुधारना कोई सुगम बात नहीं है। अन्त सुधारना सन्तान का काम है। पितरों के लिए अन्त समय में सन्तान सहारा है, स्वर्ग का द्वार है। जैसे डूबते हुए मनुष्य का आप ही आप किनारे आजाना बड़ा कठिन है, ऐसे ही मरण काल में मोह माया के सागर में डूबते जन का धर्म धरती पर आ लगना महा कठिन है। मृत्यु और मोह सागर में डूबते को बचानेवाला कोई और ही चाहिये॥

पितृऋण उतारना सुसन्तान का परम कर्म है। उसके उतारने के भी कई मार्ग हैं। सन्तान को सुयोग्य बनाना,

गृह धर्म का पालन करना, कुल धर्मों का निभाना, आदि सब कार्य पितृ ऋण उतारने के छोटे २ भाग हैं। पर सबसे बड़ा, सबसे उत्तम साधन पितरों को भगवान् का नाम स्मरण कराना है, उन्हें आत्मचिन्तन कराना है। सन्तान का जन्म होते ही पितरों ने जो 'ओम्' नाम का दान दिया था, सो उनके सदा के प्रस्थान समय यह 'ओम्' नाम बार २ उनकी जीभ पर रखना चाहिये, और उन्हें स्मरण कराना चाहिये। सन्त लोग सारे संसार को ओ३म् रूप समझते हैं ॥

ओम् स्मर।

जिस नामका कोई जप करता है उसमें उसका प्रेम अवश्य होता है और जिसका उत्कट प्रेम किसीके हृदयमें होता है उसके चित्तमें प्रेमीकी चितवन सदा बनी रहती है। चिन्तन शब्दका होता है, और शब्द नाम है इसलिये चिन्तन करने का अर्थ मानसजप है। यदि वाणीके साथ मन भी है, वाणीका जप बुरा नहीं है, अच्छा है, परन्तु फिर भी वाचिकजप की अपेक्षा भगवान् मनुकी आज्ञानुसार बिना हिलाए जो जप किया जाता है, वह 'उपांशु' जप है। और सौगुणा अधिक फलदाता है। मानसजप का महत्व सहस्रगुणा अधिक है। मानसजपमें जितना शीघ्र मन रुकता है उतना वाचिक और उपांशुमें नहीं। "तज्ज-पस्तदर्थभावनम्" इस पातञ्जलि सूत्रके अर्थमें व्यासदेव

कहते हैं, कि 'तदस्य योगिनः प्रणवं जपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तमेकाग्रं सम्पद्यते' प्रणवको जपते हुए, और प्रणव का अर्थ चिन्तन करते हुए इस योगीका चित्त एकाग्र हो जाता है। इस पर व्यासदेव ग्रन्थान्तर का प्रमाण देते हैं कि 'जपसे चिन्तन करे, और चिन्तन (ध्यान) के पश्चात् फिर जप करे, जप और ध्यानकी सिद्धि से परमात्माका प्रकाश होता है॥

सहजाभ्यास।

श्वास प्रश्वासके साथ अथवा विना सांसमें वृत्ति लगाए 'ओम् का जाप, चिन्तन और ध्यान "सहजाभ्यास" है। इस अभ्यासका करना, आबाल वृद्ध, सबल, निबल, सब नर नारियों के लिए सहज है, सुगम है। अन्य अभ्यास के मार्गोंमें बहुत कठिनाइयां हैं। आठ पहर चौबीस घण्टे संसारके काम धन्धोंमें फंसे हुए स्त्री पुरुषों, बुढ़ापेके बोझसे जर्जरीभूत जनों, दुर्बल, क्षीण, दीन हीन देहयुक्त मनुष्यों रोगके दारुण दुःखसे पीड़ित प्राणियों और कुसंगत कुसंस्कार तथा विषय वासनासे सदा चलायमान चित्त वाले गृहस्थियोंसे कठिनतायुक्त योगसाधन सिद्ध होने कितने दुष्कर हैं, इसका समझना सबके लिए सुगम है। अतएव संसार समुद्रमें जपयोगका जहाज़ एक ऐसा जहाज़ है कि जिसमें बैठकर राजा, रंक, मूर्ख, पंडित, लूला, लंगड़ा गूंगा, बहरा, दुर्बल, दुःखिया और बूढ़ा, बचा, सभी पार

जा सकते हैं। इस साधन के सभी अधिकारी हैं। इस साधनके साधनेसे अन्य सारे साधन आपसे आप सिद्ध होने लग जाते हैं। सारे गुण सम्पूर्ण कल्याण और सर्व सफलताएं इसके अभ्यासीमें ऐसे प्रवेश करने लग जाती हैं जैसे महासागरमें नदियां।

प्रणवके उपासक को चाहिए कि प्रातःकाल नींदसे जागते ही हृदयक्षेत्रमें विचारमात्र उत्पन्न होने से पहिले ओम् का जप करने लग जाय। तत्पश्चात् आवश्यक कार्य्यों से निवृत्त होकर सन्ध्या समय भी प्रणवका पाठ करे। प्रतिदिन नियमपूर्वक दो घड़ी पर्यन्त प्रणव पवित्र का पाठ करने वाले अभ्यासी को प्रभु प्रेमका परिणाम स्वयं प्रतीत होने लगेगा। प्रणव पाठ का सर्वोत्तम समय आधीरात, वन स्थान और प्रातःकाल है। पर परम प्रेम में समय की मर्य्यादा और नियम नहीं रहता, इस लिए चलते फिरते, उठते बैठते, जब अवसर हाथ आवे अपने मनके तीर को प्रणव के लक्ष्य में खींच २ कर चलाते रहना चाहिए। चारपाई पर पड़े २ जब तक नींद न आवे ओम् का ध्यान करते रहना बड़ा उपयोगी है। एक तो इससे शीघ्र नींद आजाती है, दूसरे स्वप्न अथवा कुस्वप्न कम आते हैं, और तीसरा सर्वोत्कृष्ट लाभ यह है, कि अभ्यासी जब तक सोता रहेगा, तब तक पवित्र प्रणव का संस्कार उसके मस्तिष्क में, उसके अन्तःकरण में, उनके

अन्तरात्मा (सबकॉन्शियस माइण्ड) में स्फुरित रहेगा, जिससे सारी काया शक्तिमती हो जाती है । सम्पूर्ण खोटे संस्कार मिट जाते हैं । यहां तक कि इस साधन के सिद्ध होने पर बिना प्रयत्न किए प्रणव पाठ निरन्तर होता रहता है, और शरीर योगमय बन जाता है ॥

प्रणव का बार २ पाठ ।

जो शब्द बार २ कहे जाते हैं, वे स्मरण-शक्ति के अङ्ग बन जाते हैं । जितनी प्रबल लग्न से कोई शब्द बार २ स्मरण किया जाय, उसका उतना ही प्रबल प्रभाव स्मृति पर पड़ेगा । रागविद्या सीखने वाले लोग चलते, फिरते, कार्य्य करते, सङ्गीत के सुरों को ही अलापते रहते हैं । लग्न वाले विद्यार्थी अपने पाठों को स्वप्न में भी दोहराते रहते हैं । मनुष्य की चित्त वृत्तियां कुएं के जल की भांति हैं । कुएँ में रहते पानी का कोई आकार नहीं, वह सम है, और एक ही स्वाद वाला है, पर ज्यों ही रहट की घड़ियों द्वारा खेतों की त्रिकोण, चतुष्कोण आदि क्यारियों में पड़ता है, तो तुरन्त तदाकार होजाता है । मिर्च, निम्ब, नींबू, जामन, आम, नारङ्गी और सङ्गतरा आदि पेड़ों की जड़ों में जाकर अपना स्वाद भी बदल डालता है । चित्त वृत्तियां भी जैसे अर्थों वाले शब्दों में ढलती हैं, वैसे ही उनके आकार बन जाते हैं, और उन शब्दों के अर्थों के भावों और प्रभावों से सर्वथा प्रभावित होजाती हैं ।

जिस रस रङ्ग के शब्द कोई गायगा, वही रस रङ्ग उसकी चित्त चादर पर अवश्यमेव चढ़ जायगा, इस लिए समझना चाहिए कि, जो भक्तजन पूर्ण प्रेम और प्रबल भावना से भगवान् के नाम प्रणव का स्मरण करते रहते हैं, कालान्तर में उनकी वृत्तियां प्रणवाकार होजाती हैं। उनकी स्मृति में न उतरने वाला प्रणव का रङ्ग और उनके मन में न फीका होने वाला प्रणव का रस बस जाता है।

नव सुत सिमरै सुरभि ज्यों, त्यों सुमिरो भगवान्।
पनहारी ज्यों कलश का, करो ओम् का ध्यान॥
सती विरह सन्तापिता, सुमिरे पति मन लाय।
ओम् नाम सिमरो सदा, संशय सकल मिटाय॥
भूखा भोजन को भजे, रङ्क भजे ज्यों दाम।
सदा प्रेम से सिमरिए, ओम् ईश का नाम॥
मीन हीन जल से यथा, जल ही में मन दे।
एक भावना से तथा, ओम नाम भज ले॥
आतुर सिमरे औषधि, ज्यों बंधुआ निस्तार।
ओम् नाम त्यों सिमरिये, तीन लोक का सार॥
मन मन्दिर में जगमगे, ओम् नाम जब जोत।
अघतम का तब नाश हो, बहे सुखों का स्रोत॥
रस है तीनों वेद का, ओम् नाम अभिराम।
भाव भक्ति से जो भजे, होवे पूरण काज॥

परमात्मा भीतर से प्रकाशित होता है ।

माना कि पानी २ कहने से प्यास नहीं बुझती, केवल रोटी के पाठ से भूख नहीं मिटती, और अग्नि शब्द के उच्चारण से मुख नहीं जलने लग जाता, परन्तु इस बात से किस बुद्धिमान् को इन्कार है, कि पानी २ आदि शब्दों की कोई तभी पुकार करता है, जब इन वस्तुओं के लिए उसके मन में महामांग होती है । कोई भी विचार से देखे तो उसे प्रतीत होगा कि जगत् में जातियों की भौतिक प्रभुता के मधुर फल इस महामांग ही की बेल से मिले हैं। इसी मानस मांग में सारी उन्नति निवास करती है, और इसी मनोरथ रूप मांग से प्रेरित होकर मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है ।

जो भक्त परमात्मदेव के परम पवित्र ओम् नाम में बार २ अपने मनको लगाते हैं वे परमात्मदेव की प्राप्ति की अपनी लग्न प्रकाशित करते हैं । बार २ नाम के पाठ से भक्त के चित्त में समाई हुई अनन्त चेतन की चाह प्रकट होती है । बहुत से दूर स्थित प्राकृत पदार्थों के नाम का पाठ फलसिद्धि रूप न हो, परन्तु फलसिद्धि का प्रबल निमित्तकारण और सिद्धि प्राप्तकर्त्ता की क्रिया का उपादान कारण अवश्यमेव है ॥

परमात्मा प्राप्ति की कथा भौतिक पदार्थों की प्राप्ति से सर्वथा भिन्न है । प्रकृति के स्थूल पदार्थ, कर्त्ता के मन से

प्रेरित, उसकी स्थूल इन्द्रियों की स्थूल क्रिया से प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्राप्तकर्त्ता व्यक्ति से बाहर के पदार्थ उसकी बाहर की क्रिया की अपेक्षा रखते हैं। परन्तु परमात्मा सूक्ष्मतम है, सबके भीतर परिपूर्ण है, इसलिए विवेक, विचार ज्ञान और भक्ति आदि साधनों ही से उसकी प्राप्ति होती है, यह सर्वशास्त्र सम्मत सिद्धान्त है।

उक्त विवेकादि साधन अन्तरङ्ग साधन हैं। ये साधन भक्त के अपने आत्मा का प्रकाश हैं। सच तो यह है कि सबका अन्तरात्मा, परमात्मा भक्त के आत्ममन्दिर में विराजमान है। उसकी प्राप्ति के लिए केवल प्रेम तैल से भरा हुआ ज्ञान का प्रदीप्त दीपक चाहिए। रोटी २ पुकारता हुआ भूखा भले ही भूखा रह जाय, क्योंकि उसका भोजन उससे दूर है, पर भक्तलोग तो जिस चित्त में ईश्वर का चिन्तन करते हैं, वहीं उनका आत्मिक भोजन है, और जिस रसना से सारे रसों के सार ओम् नाम को जपते हैं, उसी रसना में, उसी नाम में, परम तृप्तिकारक अमृतरस विद्यमान है। उस अमृतरस को अनुभव करनेके लिए केवल अभ्यास की आवश्यकता है, और मानस तथा वाचिक जप ही का नाम, यहां 'अभ्यास' है।

जैसे अपने आपको विस्मृत सिंह को अपनी सत्ता का ज्ञान, आत्मस्मरण से सम्भव है, और आत्मा को आत्म-बोध आत्मचिन्तन से अपने भीतर होता है, ऐसे ही अपने

अन्तरात्मा में व्यापक परमेश्वरदेव का ज्ञान उसके सच्चिदा-नन्द आदि गुणयुक्त ओम् नामके बार २ स्मरणाभ्यास से स्वात्मा ही में सम्भावित है। किसी शब्द का बार २ चिन्तन मानसजाप के लिए पर्य्यायवाची शब्दमात्र ही समझना चाहिए।

चिन्तन कर मम मना ओम् नाम अनमोल।
ज्योति जागती देख ले चित्त किवाड़े खोल॥
चिन्तन के प्रभाव से कायर वीर हो जाय।
स्यार सिंह समता गहे भय भीरु में न आय॥
ऊंच नीच अच्छा बुरा सज्जन दुर्जन पाप।
जैसी जिसकी भावना वैसा हो वह आप॥
चित्त में चिन्तन लग्न से जिसमें जिसका हो।
कोटि विघ्न को बाध के निश्चय पहुंचे सो॥

"तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु"

इस बात को सभी मनुष्य मानते हैं, कि अशुभसङ्कल्पों, अधम विचारों, नीचभावों और पवित्र चिन्तनों के उत्पन्न होने पर मनुष्य का मन मैला हो जाता है। शुभसङ्कल्पों और शुद्धभाव आदिकों के उत्पन्न होने से मनुष्य का मन निर्मलता और पवित्रता प्राप्त कर लेता है। किसी दुष्ट नर नारी के स्मरण से चित्तसागर में पापके तरङ्ग का उत्पन्न होना बहुत ही सम्भावित है, ऐसे ही किसी सन्त,

सज्जन, भगद्भक्त व्यक्ति के ध्यान से अपने भीतर शुभ भाव, शुभसङ्कल्प और सज्जनता की लहरों का उठना स्वाभाविक ही है . सभी गुणों के समूह पवित्र ओम् नाम के समान शुद्ध और निर्मल दूसरा कोई सङ्कल्प, कोई भाव, कोई चिन्तन और कोईविचार नहीं है। अन्तःकरणकी सम्पूर्ण वृत्तियों में सर्वोत्तमवृत्ति, परम पवित्र वृत्ति भक्ति-वृत्ति है। परम पवित्र परमात्मदेव है, अतएव ओम् पवित्र के चिन्तनमात्र से मनुष्य के मन में पवित्रता की धारा बहने लगती है। मन की मलिनता धुल २ कर दूर होने लग जाती है। ओम् नाम का प्रभाव सम्पूर्ण प्रभावों से प्रबल है।

विषूचिका आदि महारोगों के दिनों में सर्वसाधारण को वैद्यलोग शिक्षा दिया करते हैं कि महारोग का ध्यान व चिन्तन नहीं करना चाहिए। इसके ध्यान से हृदय दुर्बल होने लगता है। इसको रुचि रोग की ओर झुक पड़ती है, और अन्त में मनुष्य रोग के पंजे में पड़ जाता है। प्रसिद्ध वैद्यमण्डल में यह वाद माना गया है कि रोगों का बीज रोगों का ध्यान है।

जब रोग के ध्यान का इतना प्रभाव है कि उसका चिर तक ध्यान रहने से हमारी देह का सर्वनाश तक संभव हो सकता है तो क्या कोई भी ऐसा विश्वासी होगा, जो यह मानता हो कि ओम् के चिन्तन और ओम् नाम के ध्यान का प्रभाव हमारी काया, हमारे अन्तःकरण और

आत्मा पर कुछ भी नहीं पड़ता ? और यह ध्यान रोग के ध्यान से भी गया बीता है ? अहो ! जिस ओम् के ईक्षण (इच्छा) परमाणु २ तक प्रभावित हैं, और जो सब का अन्तरात्मा है, उसके चिन्तन और ध्यान के प्रभाव सदृश अन्य किस वस्तु का प्रभाव हो सकता है !

'ओम्' सचाइयों का केन्द्र, परमपवित्रताओं का प्रभाव और सकल शुभ संस्कारों का मूलकारण है, इस लिए जो पवित्रता, जो विमलता, जो शुभ, ओम् गान, ओम् जप, ओम् चिन्तन, ओम् आराधन और ओम् ध्यान से प्रभु प्रेमी को प्राप्त होता है, वह अतुल है; वर्णन से बाहर है; केवल अभ्यासी जन उसे जान सकते हैं।

ओम् उपासना का फल

सकल अदृश्य अमूर्त्त पदार्थों का ज्ञान शब्द द्वारा होता है, इसलिए ओम् नाम का स्मरण ईश्वर के ज्ञान की प्राप्ति का एक मात्र कारण है। यह स्मरण शुभ और पवित्रता प्रदान करता है। इस ओम् जपगङ्गा में स्नान करने से मनके सारे मल उतर जाते हैं। पूर्व जीवन में कितना ही कोई पापी क्यों न रहा हो, पर ओम् के निरन्तर पाठ से वह पवित्र हो जायगा। ओम् ध्यान से "प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च" अन्तरात्मा का ज्ञान, प्राप्ति और रोगादि विघ्नों का विनाश होगा। श्वेताश्वेतर उपनिषद् में कहा है "अपनी देह (हृदय) को अरणी

लकड़ी बनाकर ओम् नाम को दूसरी अरणी बनावे। इन दोनों को बार २ रगड़ने (हृदय से ओम् जपने) से परमात्मादेव के दर्शन करे।" इस नाम के अभ्यासी के नेत्र पलास के पत्ते की भांति विस्तृत और खिले हुए दिखाई देंगे। उनमें प्रेम परिपूर्ण होगा। ओम्-भक्त का मुख पद्म प्रफुल्लित सौम्य, और तेजोमय रहेगा। ओम् उपासक की वाणी मधुवर्षिणी और आकर्षिणी होगा और ओम् आश्रित का हृदय प्रसन्नता से भरपूर हो जायगा।

जैसे चुम्बक से मिल कर लोहा भी चुम्बक होजाता है, ऐसे ही ओम् की उपासना से उपासक परमात्मदेव के दिव्य गुणों को धारण करके परमानन्द को उपलब्ध कर लेता है।

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

ओम् प्रेम हो भक्त में, जैसे चांद चकोर।
एक तार देखे उसे, करे सायं से भोर॥
नीचे सुनके मेघ का, जैसे नाद मयूर।
सारे तनमें ओम् से, बढ़े प्रेम का पूर॥
आकर्षित होवे यथा, लोह चुम्बक को पा।
तथा ओम् के ध्यान में, खिंच जाइए मन ला॥
सांस बांस पर गमागम, करे गाड़ दिल बीच।
ओम् शृङ्खला बांध के, मन कर्ण आंखें मीच॥

तुला ध्यानकी धारिये, पलड़े प्राणापान ।
शब्द रत्न तोलो तहां, चित्त वृत्ति को तान ॥
बहती धारा चित्त की, उलटि यही प्रपात ।
प्रकट त्रिकुटी कुण्डमें, सौदामिनि संघात ॥
पुतली धनुको तानकर, मारिए नामका तीर ।
दर्शन सुन्दर ज्योतिका, हरे पापकी पीर ॥

—:०:—

२-भक्ति योग

भगवान् का आवाहन।

हे सर्वाधार! सर्वेश्वर! सर्वत्र परिपूर्ण परब्रह्म परमेश्वर! हम आपको नमस्कार करते हैं, और इस संसार में सर्व प्राणीमात्र परमात्मा से सुख की प्रार्थना करते हैं। प्रत्येक प्राणी दुःख से भयभीत होता और भागता है, कोई नहीं चाहता कि उसे भय प्राप्त हो। वेदों में भी अभय की प्राप्ति के लिये प्रार्थना आई है, अतः हम भी आपका आराधन करते हुए अभय प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं' हमारा निश्चय है कि आपकी मंगलकामना संसार को मंगलमय बनाती है। आपकी मंगलकामना ही परिवारों को सुखमय बनाती है। जिन सभाओं में आपकी मंगलकामना होती हैं उनमें सदैव आनन्द रहता है। अतः हे ईश्वर! हम आपसे मंगल कामना करते हैं कि हममें से कोई भी भय या पाप के कारण पतित न हो जाय, हम सब आपके समीप उपस्थित होकर आवाहन करते हैं कि आप आइये और हमको मंगल प्रदान कीजिये ॥

यह संसार अशान्ति से भरपूर है, चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति विस्तृत हो रही है। मनुष्य अशान्ति से निकलने के लिये नाना प्रकार के यत्न कर रहा है, परन्तु जब तक वह शान्ति के भण्डार परमात्मा की प्राप्ति के लिये यत्न

नहीं करता, तब तक उसके सर्व यत्न निष्फल जाते हैं और वह कदापि शान्ति लाभ नहीं कर सकता। प्रश्न यह है कि परमात्मा की प्राप्ति के लिये क्या २ साधन हैं?

भक्ति क्या है?

सब से प्रथम इस बात के जानने की आवश्यकता है कि भक्ति क्या वस्तु है? भक्ति 'भज' धातु से बना है इसके अर्थ हैं किसी वस्तु की पूजा करना, किसी पदार्थ की सेवा करना। इसी प्रकार योग का शब्द "यज्ञ" धातु से बना है अर्थात् योग के अर्थ हैं समाधि; अर्थात् अपने आपको भूल जाना, या दूसरे के ध्यान में लीन होजाना। ऐसी लीनता कि उसको इसके अतिरिक्त जिसका कि वह ध्यान कर रहा है, अपने अस्तित्व की भी खबर न रहे। ईश्वर प्राप्ति के लिये सब से पहली और आवश्यक बात भक्ति है। भक्ति के बिना संसार में कुछ भी नहीं हो सकता हमारे सर्व सम्बन्ध केवल भक्ति के द्वारा ही स्थिर हैं। भक्ति प्रेम का दूसरा नाम है, यदि भक्ति न हो, तो पिता और पुत्र में जो परस्पर प्रेम का मीठा बन्धन है, वह कट जाय। कितने ही पुत्र अपने पिता का घात करते देखे जाते हैं। कितने ही पुत्र माताओं को दुःखी करते देखे जाते हैं। इस दुःख की जड़ में प्रेम अर्थात् भक्ति का ही अभाव है; हमारे गृहस्थ की वर्त्तमान दुर्दशा क्यों है, हमारे गृहों में स्त्रीजाति क्यों दुःखित हो रही है, पति और पत्नी में परस्पर ईर्षा द्वेष

क्यों है और गृहस्थाश्रम जो कि सुख का देने वाला माना गया है दुःख का कारण क्यों बन रहा है? केवल इसीलिये कि वहांपर भक्ति के सुगन्धित पुष्प विराजमान नहीं, किन्तु भक्ति में ईर्षा द्वेष के कांटे बिखर रहे हैं। यदि राजा का राज स्थिर है तो केवल भक्ति के द्वारा ही। राजभक्ति के बिना संसार में कोई शासन स्थिर नहीं रह सकता। देश में जिस प्रकार अशान्ति है इसमें राजभक्ति की न्यूनता है। प्रजा के मन में राजा के लिये प्रेम हो, राजा के मनमें प्रजा के लिये प्रेम हो, दोनों में परस्पर भक्ति के सूत्र दृढ़ हों; तब ही किसी देश में राजा और प्रजा सुखी हो सकते हैं। जब एक छोटे से सांसारिक सुख को प्राप्त करने के लिये भी भक्ति अर्थात् प्रेम की आवश्यकता है तो विचार करना चाहिये कि शान्ति के भंडार परमात्मा को प्राप्त करने के लिये कितनी भक्ति की आवश्यकता हो सकती है। आजकल लोगों को यह कहते हुए सुना जाता है कि यह तो सत्य है कि भक्ति के बिना परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती परन्तु तुम जो वेदों की दुहाई देते हो उसमें भक्ति का उपदेश कहां है, भक्ति का उपदेश यदि मिलता है तो वह केवल सन्तों की वाणी में ही मिलता है।

वेदों में ईश्वरभक्ति।

परन्तु विचारने से पता लगता है कि वेदों में ईश्वर भक्ति के विषय में जो मंत्र विद्यमान हैं वह इतने सारगर्भित

और रस से भरे हुए हैं कि उनसे बढ़कर भक्ति का दृश्य किसी अन्य जगह मिलनाही कठिन है। वेद भगवान् कहते हैं-

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः। यस्येमा प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (यजु०-२५-१२)

पहाड़ अपने सिरको हिम की सफेद चादर से ढांपे हुए परमात्मा की भक्ति कर रहे हैं जैसे समाधि की अवस्था में ईश्वरभक्त बिलकुल चुपचाप और अपनी इन्द्रियों का निरोध किये हुए जड़ वस्तु की न्याई ईश्वर के ध्यान में लीन हो जाता है, वैसे ही पर्वत भी अपनी दृढ़ता के साथ इसी भक्ति में लीन हैं। पर्वतों की इस दृढ़ता का दृष्टांत लिया जाता है जैसे अनेक बार ईश्वरभक्तों के हृदय ईश्वर प्रेम में व्याकुल होकर प्रेम के आंसू बहाते देखे जाते हैं, इसी प्रकार पर्वतों के अंदर से जो नदियां चल रही हैं वह मानों इस बात का परिचय दे रही हैं कि पर्वतों के हृदय में ईश्वर प्रेम भर रहा है और यही प्रेम की धारा नदियों के रूप में बहकर समुद्र यात्रा कर रही हैं। वेद भगवान् कहते हैं कि समुद्र भी उसीकी भक्ति के गीत गा रहे हैं। जैसे ईश्वरभक्त का हृदय परमात्मा के अगाध प्रेम से उत्साहित होकर गद्गद होता है और इसमें ईश्वर प्रेम की नाना प्रकार की तरंगे उठती हैं, ठीक इसी प्रकार समुद्र इसी परमात्मा के प्रेम अर्थात् आकर्षणशक्ति के द्वारा जो इसने

समुद्र के सीने में डाल रक्खी हैं समुद्र में लहरें पैदा होती हैं, समुद्र का जल ऊपर उठता है, इसमें ज्वारभाटा पैदा होता है जैसे मनुष्य ईश्वर प्रेम से मस्त होकर अपने अस्तित्व को भूल जाता है और अनेकवार मनुष्यत्व से बाहर जाकर लहरें लेने लग जाता है और समझने लगता है कि वह केवल शरीर ही नहीं है प्रत्युत इसकी सीमा शरीर से बाहिर तक फैली हुई है, ठीक इसी प्रकार इसी ईश्वर प्रेम में मग्न होकर समुद्र में जब ज्वारभाटा आता है तो वह अपनी सीमा को भी उल्लंघन कर जाता है और इसका जल दूर तक फैल जाता है। समुद्र और चन्द्रमा के मध्य जो प्रेम है आकर्षणशक्ति है वह कहां से है ? यह प्रेम समुद्र के हृदय में किसने पैदा किया है ? क्योंकि पूर्णिमा की शक्तिको समुद्र का हृदय चन्द्रमा की ओर अधिक आकर्षित होता है इसलिये कि समुद्र ज्योतिर्मय चन्द्रमा के मुख को पूर्णरूप से साक्षात् देखता है ठीक इसी प्रकार ईश्वरभक्त जब परमात्मा के साक्षात् दर्शन करता है तो इसका हृदय गद्गद् होकर इसकी ओर आकर्षित होता है इस समय इस ईश्वरभक्त के लिये परमात्मा के दर्शन से बढ़कर कोई वस्तु भी अधिक प्यार की वस्तु नहीं रहती। फिर आगे चलकर वेद भगवान् कहता है कि दिशाएं अर्थात् पूर्व पश्चिम उत्तर दाक्षिण नीचे ऊपर क्या वस्तु है ? यह एक प्रकार के (Sign Board) अर्थात् चिन्ह है जो ईश्वर की

वर्स व्यापकता को चारों ओर दर्शा रहे हैं। जैसे ईश्वरभक्त श्वर के प्रेम में मुग्ध होकर सर्व दिशाओं में उसी का रूप देखता है अर्थात् सबमें उसीको देखता है और सबको उसीमें देखता है और ठीक इसी प्रकार वेद भगवान् कहता है कि दिशाएं चारों ओर उसी के प्रेम का दृश्य दिखा रही हैं और उसी के अस्तित्व का प्रमाण दे रही हैं। वेद भगवान् कहता है कि ईश्वर जिसकी महिमा यह सब जब पदार्थ गा रहे हैं जिसकी भक्ति का राग यह सकल ब्रह्मांड गा रहे हैं इसीकी भक्ति करके हम दुःखों से मुक्ति पा सकते है। इसी प्रकार आगे चलकर वेद भगवान् कहता है—

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने
अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधिसूर उदितो विभाति
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ (यजु० ३२-७)

यह प्रकाश देनेवाला सूर्य्य और प्रकाश लेनें वाली पृथ्वी इसी प्रकार नाना प्रकार के अन्य सूर्य्यमंडल जो अपने २ स्थानों पर स्थिर हैं, यह किसकी शक्ति से स्थिर हैं? वेद भगवान् कहता है कि यह सब परमात्मा की ही शक्ति से अपने २ स्थान पर स्थिर हैं यदि उसकी शक्ति विराजमान् न हो तो वह सब आपस में टकराकर छिन्न भिन्न होजावें। नास्तिकों का कथन है कि परमात्मा नहीं है, यह संसार सदा से ऐसा ही चला जाता है और सदैव

ऐसा ही रहेगा, और इसका कर्त्ता कोई नहीं परन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतनी बड़ी कला जो चल रही है, क्या वह स्वयं चल रही है ? हम देखते हैं कि मनुष्य छोटासा यन्त्र बनाता है और अपनी ओर से तो वह इसके सब अङ्ग ठीक २ बनाता है, किन्तु फिर भी वह बिगड़ता रहता है। दूर क्यों जाते हो, घड़ीका दृष्टांत ही ले लीजिये। मनुष्य ने अपनी बुद्धिमत्ता से समय को जानने के लिये परमात्मा की बनाई हुई घड़ी अर्थात् सूर्य्य की गति की नकल तो की परन्तु हम देखते हैं कि जितनी भी यहां पर हमारी जेबों में घड़ियां हैं उन सबमें कुछ न कुछ समय का भेद अवश्य होता है। परन्तु परमात्मा की शक्ति से सूर्यमंडल की जो घड़ी चल रही है, उसमें कदापि भेद नहीं आता। और न इसको चाबी की न तेल की, न बत्ती की और ना ही कमानी की आवश्यकता है।

इससे सिद्ध होता है कि जिस शक्ति ने इस सर्व ब्रह्माण्ड को रच कर एक नियम में बांध रक्खा है वह अति महान् और चैतन्य शक्ति है। इस महाप्रभु की कीर्ति यह सकल ब्रह्माण्ड गा रहा है। पृथिवी अपने नम्र भाव से इसके चरणों में लीन है, सूर्य्य अपने तेजोमयरूप से इसकी महानता को प्रगट कर रहा है, चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से इसी सौम्य परमेश्वर की कीर्ति गा रहा है।

उपनिषद् में आता है कि पृथिवी ध्यानरूप से

परमात्मा की भक्ति कर रही है, सूर्य ध्यानरूप से परमात्मा को अपनना हर्त्ता कर्त्ता समझ रहा है, यह सब ब्रह्माण्ड ध्यानरूप से इसकी भक्ति में लगा हुआ है। नदी नाले इसकी महिमा गाते हुए बहते चले जारहे हैं, समुद्र की लहरें इसकी महिमा के गीत गारही हैं, जल जन्तु इसकी महिमा गा रही हैं। वेद भगवान् कहता है कि मनुष्य के लिये यदि कोई उपास्य देव है तो वह केवल एक सर्वशक्तिमान् परब्रह्म सच्चिदानन्द परमात्मा है इसकी भक्ति से और इसके प्रेम में मग्न होकर मनुष्य अपने जीवन को सफल कर सकता है।

हम किसकी भक्ति करें।

परन्तु यहां पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम परमात्मा की भक्ति क्यों करें ? ईश्वरभक्ति की हमें क्या आवश्यक्ता है ? हम जड़ पदार्थों अथवा अल्प मनुष्यों की भक्ति क्यों न करें ? ईश्वर की भक्ति से हमें क्या लाभ हो सकता है ? यह प्रश्न वास्तव में बड़ा गम्भीर तथा विचारणीय है।

शास्त्र कहते हैं, कि जो जिसकी भक्ति करता है, वह तद्रूप हो जाता है। जो जिसका चिन्तन करता है वह उसीके रंग में रंगा जाता है, जो जिसका अधिक ध्यान करता है वह उसीका स्वभाव ग्रहण करता जाता है। जैसे लोहे का गोला अधिक काल तक अग्नि में रक्खे रहने से पहिले गर्म और फिर गर्म से लाल और फिर लाल

से तद्रूप अर्थात् अग्नि का रूप ग्रहण करता जाता है, इसी प्रकार जो मनुष्य जिस चीज या वस्तु का अधिक ध्यान करता है वह उसीके रंग में रंगा जाता है।

यदि हम मनुष्यों की भक्ति करते हैं तो इसमें सन्देह नहीं कि हममें उन उपास्य देवताओं के गुण आवेंगे। क्योंकि मनुष्य सारे के सारे ही अल्पज्ञानी होते हैं उनमें कमज़ोरियां होती हैं इसलिये यह स्वाभाविक है कि *मनुष्यों की पूजा और भक्ति करने से जहां हम उनके* गुणों को ग्रहण करते हैं वहां अवगुण भी हममें आजाते हैं। जड़ पदार्थों की पूजा करने से मनुष्य के अन्तरीय सूक्ष्म विचारों का नाश हो जाता है, और वह जड़ की न्याईं जड़ बन जाता है। इस लिये वेद भगवान् कहता है—

"अन्धं तमः प्रविशन्ति ये ऽविद्यामुपासते"

(यजु० ४०—६)

कई मनुष्य जो जड़ पदार्थों की पूजा करते हैं उनका हृदय जड़ पदार्थों के समान प्रकाशशून्य हो जाता है, और वह अन्धकार में ठोकरें खाते फिरते हैं। इस लिये पूजा का परिणाम यही है कि मनुष्य जिसकी पूजा करता है वह उसके रंग में रंगा जाता है। यदि जड़ पदार्थों की पूजा करने से मनुष्य को शांति मिल सकती तो इस संसार में जो सबसे ज्यादा जड़ पदार्थों की

पूजा करते हैं अर्थात् जो सबसे अधिक धनी हैं, जो सबसे अधिक यश रखते हैं, वह कदापि दुःखी न देखे जाते।

वेद में भक्ति।

परन्तु जिस अवस्था में जड़ पदार्थ प्रकाशशून्य हैं, शांति और शक्तिशून्य हैं, इस अवस्था में उनकी पूजा तथा भक्ति करने से मनुष्य को शान्ति क्यों कर मिल सकती है? पूजाके लिये आवश्यकता है एक महाशक्ति की, भक्ति के लिये आवश्यकता है एक सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान् पापनाशक शान्ति के भण्डार परमात्मा की, भक्तिके लिये आवश्यक है एक शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सच्चिदानन्द की। वेद भगवान् कहता है:—

"स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्म्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-र्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः"

(यजु० ४०—८)

परमात्मा शुक्र अर्थात् आनन्द है, वह दुःख आदि क्लेशों से रहित है, दुःख का नाशक है, सुख का दाता है, वह निराकार है, वह आवरण अर्थात् रोग रहित है, वह अस्नाविर अर्थात् नस नाड़ी के बन्धनों से मुक्त है, उसकी कोई मूर्ति नहीं है, वह शुद्ध पवित्र है, और पवित्र कर्त्ता है, वह पापाविद्ध अर्थात् पाप रहित और मनुष्य को पापों से मुक्ति देनेवाला है, वह कवि

अर्थात् अन्तर्यामी है, वह मनीषी अर्थात् मनुष्यों के मनोंको देखने वाला है, वह परिभूः अर्थात् सर्वव्यापक है वह स्वयंभूः अर्थात् अपनी सत्यता में उपस्थित है, वही इस सृष्टि का हर्त्ता कर्त्ता और धर्त्ता है। वेद भगवान् कहता है कि ऐसे ही परमात्मा की भक्ति और पूजा करके मनुष्य का जीवन सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं। यह एक साधारण नियम है कि एक महाशक्तिमान् की पूजा मनुष्य को स्वाभाविक शक्तिमान् बनाती है। जिस कदर हम इस सर्वशक्तिमान की पूजा करते हैं और हृदय से पूजा करते हैं अथवा प्रेम से भक्ति करते हैं उसी कदर हमारा आत्मा बलवान् होता जाता है और पुष्ट होता जाता है।

वेद भगवान् कहता है:—

"य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।" (यजु० २५-१३)

आत्मा का बल वही परमात्मा है। ऐसा क्यों है, इस लिये कि आत्मा एक चेतन वस्तु है, आत्मा जीवन है, एक चेतन वस्तु को जड़ वस्तु से बल नहीं मिला करता। जड़ पदार्थों की पूजा से आत्मा को कदापि बल प्राप्त नहीं हो सकता, प्रत्युत चेतन परमात्मा से ही बल पा सकता है। क्योंकि यह ईश्वरीय नियम है कि जहां

जीवन होता है वहाँसे ही दूसरों को जीवन मिला करता है, जहाँ शक्ति होती है वहाँ से ही दूसरों को शक्ति मिला करती है। जड़ पदार्थों में जब जीवन ही नहीं है तो उनकी पूजा करके एक चेतन आत्मा कैसे जीवन पा सकता है? इसको क्या बल या ढारस मिल सकता है? कुछ भी नहीं। इस लिये वेद भगवान् कहता है कि भक्ति के योग्य केवल एक परमात्मा ही है। अज्ञानी अज्ञानता के वश होकर जड़ पदार्थों की पूजा करते हैं परन्तु वह जो ज्ञानी है, वह जो देवता है वह जिनका हृदय ज्ञान से दीप्यमान है वह कदापि जड़ वस्तुओं की पूजा नहीं कर सकते, किन्तु वह रात दिन उसी परमपूज्य परमात्मा की भक्ति में मग्न रहते हैं। वेद भगवान् कहता है कि उसकी भक्ति में मग्न रहना मनुष्य को मृत्यु से बचा सकता है।

मृत्यु क्या है? साधारण शब्दों में हम आत्मा से शरीर की पृथक्ता का नाम 'मृत्यु' रखते हैं। यदि यह सत्य है कि आत्मा की पृथक्ता से शरीर की मृत्यु हो जाती है तो जब परमात्मा आत्मा के भी आत्मा हैं और वह आत्मा में इस तरह निवास करते हैं जिस तरह शरीर में आत्मा निवास करता है तो वह आत्मा चेतन होता हुआ भी मुर्दा नहीं होगा, जिसमें ईश्वर प्रेम नहीं है। ईश्वर ही तो आत्मा का जीवन है।
उपनिषद् कहता है:—

"श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचꣳ स उ प्राणस्य प्राणः ॥ (केनोप० १—२)

परमात्मा ही आत्मा के श्रोत्र का श्रोत्र है, परमात्मा ही आत्मा के मन का मन है, परमात्मा ही आत्मा की वाक्यशक्ति है और परमात्मा ही आत्मा का प्राणाधार है। इस लिये वेद भगवान् कहता है:—

"यस्य च्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः"

अर्थात् परमात्मा को अपने आत्मा में अनुभव करना और उसीको हर्त्ता कर्त्ता अनुभव करते हुए रात दिन उसीकी शरण में और उसीकी भक्ति में अपने आपको लीन रखना ही आत्मा का जीवन है, और उससे दूर होजाना अर्थात् उसकी भक्ति से शून्य होजाना उसके प्रेम से खाली होजाना मानो आत्मा से आत्मा का खाली होजाना है। इस आत्मिक मृत्यु से मनुष्य उसी अवस्था में बच सकता है जबकि वह अमर परमात्मा को प्राप्त हो। मनुष्य जोकि स्वयं मृत्यु के मुंह में फंसा हुआ है उसकी पूजा करने से आत्मा इस आत्मिक मृत्यु से नहीं बच सकता। जड़ पदार्थ जो कि स्वयं शून्य हैं, उनकी पूजा करने से भी आत्मा आत्मिक मृत्यु से नहीं बच सकता। आत्मा का जीवन परमात्मा है उसकी भक्ति करने से उसीकी शरण लेने से उसीके प्रेम में मग्न होने से

उसकी पनाह लेने से आत्मा जीवन पा सकता है, मुक्त हो सकता है। उपनिषद् कहती है:—

" एतदालम्बनꣳ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते "।

(कठो० २। १७)।

परमात्मा ही एक आत्मा का आधार है और परमात्मा ही आत्मा के लिये सबसे श्रेष्ठ और परम पवित्र आहार है, परमात्मा ही आत्मा के लिये पनाह है, वही इसके लिए मृत्यु के विरुद्ध एक सुरक्षित ढाल है जो इस आधार को अपना आधार बनाता है जो इस आहार को अपने आत्मा का आहार बनाता है, जो इस Asylum को अपने आत्मा के लिये मौत के विरुद्ध Asylum बनाता है, वही है जो मृत्यु से ऊपर होजाता है, अर्थात् ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है या दूसरे शब्दों में मुक्ति को प्राप्त होता है। मैंने कहा था कि लोग प्रश्न करते हैं कि ईश्वरभक्ति की क्या आवश्यकता है? क्यों आवश्यकता है यह अब पता लग गया कि यदि हम जड़ पदार्थों की भक्ति करते हैं तो हम जड़ की न्याई विचारशून्य, जीवनशून्य, उत्साहशून्य हो जाते हैं। यदि हम परमात्मा की भक्ति करते हैं तो हम में जीवन आता है, उत्साह आता है, तेज आता है, बल और पराक्रम आता है क्योंकि यह एक साधारण बात

है कि जितना हम अल्प वस्तुओं की भक्ति करेंगे उतना ही हमारा विचार, हमारा जीवन, हमारा तेज, हमारा बल भी अल्प होगा परन्तु जिस क़दर एक महान् और प्रभावशाली जीवन के आधार, आत्मा के आहार, सर्वशक्तिमान् तेजोमय परमात्मा की पूजा करेंगे उसी क़दर हम महान् होते जावेंगे। अपने ज्ञान के भण्डार वेद में ईश्वर हमें शिक्षा देते हैं कि हे मनुष्यो! पदार्थों की पूजा छोड़ कर नित्य प्रति तुम यह प्रार्थना किया करो—

"तेजो असि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ (यजु० १२-९)॥

अर्थात्-हे परमात्मन्! मैं तेरी भक्ति इस लिये करता हूं, क्योंकि तूं तेज है, तेरी भक्ति द्वारा तेरे तेज को प्राप्त कर सकूं। हे परमात्मन्! मैं तेरी भक्ति इस लिये करता हूं कि तू शक्ति है, मैं तेरी भक्ति के द्वारा इस शक्ति को प्राप्त कर सकूं। हे परमात्मन्! मैं तेरी भक्ति इस लिये करता हूं क्योंकि तू बलपुंज है, मैं तेरी भक्ति के द्वारा इस बल को प्राप्त कर सकूं। हे परमात्मन्! मैं तेरी भक्ति इस लिये करता हूं क्योंकि तू जीवनाधार है, मैं तेरी भक्ति के द्वारा इस आधार को प्राप्त कर सकूं। हे परमात्मन्! मैं तेरी भक्ति इस लिये करता हूं क्योंकि

तू सहनशील है, मैं तेरी भक्ति के द्वारा सहनशील बन सकूं। हे परमात्मन्! मैं तेरी भक्ति इस लिये करता हूं क्योंकि तू सबको यथावत् फल देने वाला है, मैं तेरी भक्ति के द्वारा इस न्यायशीलता को ग्रहण कर सकूं, इत्यादि।

ब्रह्म सम्बन्ध की आवश्यकता।

हमें इस बात का तो पता लग गया कि भक्ति क्या वस्तु है, और भक्ति की क्या और क्यों आवश्यकता है, और ईश्वरभक्ति की किस लिये आवश्यकता है। अब हमारे सामने दूसरी अवस्था आती है। वह यह है कि हम ईश्वरभक्ति क्योंकर कर सकते हैं? लोग कहते हैं कि हम नित्य प्रति सन्ध्या करते हैं, परन्तु संध्या में हमारा चित नहीं लगता। हम प्रणायाम करते हैं, परन्तु मन एकाग्र नहीं होता। हम प्रार्थना करते हैं, पर शान्ति नहीं मिलती, हम पाठ करते हैं, मगर हाथ पल्ले कुछ नहीं पड़ता। उनका यह कहना ठीक ही है क्योंकि जब तक यह पता न हो कि भक्ति की विधि क्या है, अथवा वह कौनसे साधन हैं, कि जिनके करने से अच्छा परिणाम निकल सकता है, तब तक केवल किसी क्रियामात्र से कुछ भी हाथ पल्ले नहीं पड़ सकता। जो बिना विधि के ईश्वर पूजा करते हैं, जो भक्ति और प्रेम की शर्तों को पूरा करने के बिना ईश्वर को हासिल करना चाहते हैं, वह कोल्हू के बैल की न्याईं हैं, जो रात दिन एक ही चक्र में

घूमता रहता है, वह समझता है कि आज मैं बहुत चला और शायद सैंकड़ों मील की दूरी पर आगया हूं परन्तु अब आंख पर से पट्टी खुलती है तब वह विचारा अपने आपको उसी स्थान पर देखता है जहां वह प्रातः काल खड़ा था। यही दशा हमारी सन्ध्या की है।

यही हाल पाठ और जप का है। जब तक विधि और नियमानुसार कोई काम न किया जाय, जब तक हम कितने ही घण्टे क्यों न आंखें बन्द किये बैठे रहें, परन्तु कोल्हू के बैल की न्याई हमारे जीवन की चाल उसी जगह रहेगी। आंखें बन्द करके कुछ काल बैठ जाना भक्ति या सन्ध्या नहीं है। बगुला भी तो पानी के किनारे पर आंखें बन्द किये वा टांग उठाये हुए घंटों तक खड़ा रहता है। मछली पकड़नेवाला घंटों तक पानी के किनारे टिकटिकी लगाये साधु बना बैठा रहता है, मगर केवल टिकटिकी लगा लेने से या आंखें बंद करके बैठ जाने से ईश्वर प्राप्ति नहीं हो सकती। ईश्वर प्राप्ति के लिये भक्ति की आवश्यकता है, और भक्ति की पहली शर्त ब्रह्म सम्बन्ध है। जब तक ब्रह्म के साथ आत्मा अपने सम्बन्ध को अनुभव नहीं करता, तब तक वह ब्रह्मयज्ञ कैसे कर सकता है। जब तक पिता और पुत्र के सम्बन्ध का निश्चय न हो, तब तक पितृभक्ति कैसे हो सकती है। जब तक राजा और प्रजा में कोई सम्बन्ध न हो, तब तक राजभक्ति कैसे हो सकती है। जब

तक स्त्री और पुरुष एक दूसरे के साथ अपने सम्बन्ध को अनुभव नहीं करते, तब तक उनमें पति और पत्नी-भक्ति का उदय कैसे हो सकता है और गृहस्थ-आश्रम क्योंकर आनन्द भवन बन सकता है। दुनियां में जिस क़दर क्लेश है, संसार में जिस क़दर दुःख है, हमारे इर्द गिर्द जिस क़दर हाहाकार है, जितनी चीख़ पुकार है, वह केवल परस्पर के सम्बन्धों में अनमेल के कारण है। सम्बन्ध तो है परन्तु यह पता नहीं है कि यह सम्बन्ध क्यों है और कैसे है, इसलिये दुःख होता है। छोटी आयु में बच्चे और बच्ची का विवाह कर दिया जाता है उनमें पति और पति का सम्बन्ध तो क़ायम कर दिया है, परन्तु न लड़के को पता है कि यह सम्बन्ध क्या है और क्यों है, और इस सम्बन्ध में बंधने के कर्त्तव्य क्या हैं अथवा उसकी ज़िम्मेवारियां क्या हैं। ना ही लड़की को पता है कि इस सम्बन्ध पर उसका उत्तरदायित्व है। दोनों ही अज्ञान की-अवस्था में जोड़ दिये जाते हैं। परिणाम यह होता है कि दोनों ही दुःख में पड़कर रोते देखे जाते हैं। उनमें न एक दूसरे के लिये प्रेम है न भक्ति। जहां प्रेम न हो, जहां भक्ति न हो वहां ईर्षा, द्वेष, परस्पर अविश्वास, परस्पर प्रहार की अग्नि-प्रचण्ड न हो तो क्या हो? सम्बन्ध में बंधने से पहले सम्बन्ध को जानने की आवश्यकता है। ईश्वरभक्ति करने से पहले ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को जानने की

आवश्यकता है। राजभक्ति से पहले राजा और राजा के कर्त्तव्य को जानने की आवश्यकता है। जिस राजा के आधीन हमारे जान माल सुरक्षित हों, जिस राजा के आधीन हम स्वतंत्रता से अपने धर्म कार्यों को कर रहे हों, शास्त्र आज्ञा देते हैं, कि उसके लिये प्रजा के चित्त में राजभक्ति हो। तब जिस महान् प्रभु के आश्रय समस्त ब्रह्माण्ड के राजा और प्रजा सुरक्षित अपने २ कार्यों को कर रहे हों, उस महान् प्रभु की भक्ति करने से, जैसा कि मैंने पहले कहा है आत्मा आत्मिक मृत्यु से ऊपर हो जाता है। उस महान् प्रभु के साथ ब्रह्म सम्बन्ध को जांचने और गाठने की किस क़दर आवश्यकता है।

आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध।

यह ब्रह्म सम्बन्ध क्या है, इसको उपनिषद् इस प्रकार वर्णन करता है।

"यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्याऽस्तं गच्छन्ति, भिद्येते चासां नामरूपे समुद्र इत्येव प्रोच्यते ॥ (प्रश्नोप० ६।५)।

अर्थात् जैसे नदी का सम्बन्ध सागर से है, इसी प्रकार आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से है। नाना प्रकार की नदियां रात दिन पर्वतों के शिखर से घने जंगलों और उजाड़ बियाबानों के अन्दर से प्रेम और भक्ति का गीत गाती हुई अपने नाम और रूप को छोड़ कर प्रेमसागर

में जाकर लीन हो रही है। सागर क्या है ? वेद में परमात्मा को सागर कहा गया है, इस आध्यात्मिक सागर के साथ हमारा वही सम्बन्ध है जो नदी का बाह्यिक सागर से साथ है। तात्पर्य्य यह है कि जैसे पर्वतों के शिखर पर से निकली हुई नदी समस्त पहाड़ों और घाटियों को चीरती हुई मैदानों और बियाबानों को तय करती हुई उस वक्त तक आराम नहीं लेती, जब तक कि वह सागर में जाकर लीन नहीं हो जाती, ठीक इसी प्रकार ईश्वरभक्ति और ईश्वर भक्तों का हाल है। जब वह समझ लेते हैं कि भक्ति क्या चीज़ है और ईश्वर के साथ इनका क्या सम्बन्ध है तो वह सम्बन्ध को सार्थक करने के लिये और ईश्वर में अपने आत्मा का आधार और आनन्द पाने के लिये उस वक्त तक बराबर यत्न किये जाते हैं जब तक कि वह इसको हासिल नहीं कर लेते। उनके रास्ते में रुकावटें आती हैं, विघ्न पड़ते हैं कठिन पहाड़ चीरने पड़ते हैं, संसार की वस्तुओं में फंसी हुई इन्द्रियों को दमन करना पड़ता है, लोहे के चने चबाने पड़ते हैं परन्तु वह यह सब कुछ किये जाते हैं यहां तक कि वह ब्रह्म में स्थिर हो जाते हैं, और उनकी यह अवस्था—

तदा द्रष्टुः स्वरूपे अवस्थानम् (योग)

के अनुसार होजाती है। वह इस ब्रह्मसूत्र के क़ायम होनेपर आत्मा और परमात्मा के साक्षात् दर्शन करते हैं। श्रुति कहती है—

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ (कठो० ५।१२) ॥

जब आत्मा इस सम्बन्ध का अनुभव कर लेता है कि इस सकल ब्रह्माण्ड में चारों ओर उसी एक सर्वव्यापक परमात्मा का दृश्य है, उसीकी ज्योति चारों ओर फैल रही है, वही सब आत्माओं में विराजमान है, यह नाना प्रकार की रचना उसीकी शक्ति को प्रगट कर रही है, वह एक है, परन्तु अनेक प्रकार की सृष्टि का रचनेवाला है और हर रंग में उसीकी दृश्य है उसीकी ज्योति है। परमात्मा के जो सच्चे भक्त हैं, या जिन्होंने यह जान लिया है कि ईश्वर की भक्ति ही मनुष्य को संसाररूपी दुःखसागर से पार उतार सकती है, वह सकल ब्रह्माण्ड में और प्रत्येक वस्तु में उसीका हाथ देखते हैं, उसीको सबमें देखते हैं, और सबको उसीमें देखते हैं, इसी प्रकार वह प्रत्येक प्रकार के ईर्षा द्वेष से ऊपर होकर परम सुखको प्राप्त होते हैं। ऐसे ही मनुष्यों को मुक्ति का आनन्द मिल सकता है उनको ही ईश्वरभक्त कहा जा सकता है, उनकी ही भक्ति पूर्ण होती है। क्योंकि वह ब्रह्म सम्बन्ध को अनुभव करने के पश्चात् होती है जब मनुष्य ब्रह्म सम्बन्ध को अनुभव कर लेता है तो फिर इसके और ब्रह्म के बीच में कोई वस्तु भी बाधा डालनेवाली नहीं

रहती, क्योंकि जब तक आत्मा और परमात्मा के दरम्यान कोई भी विघ्न डालनेवाली वस्तु उपस्थित रहती है तब तक ब्रह्म सम्बन्ध स्थिर नहीं रह सकता। यह मेरा है, यह तेरा है, यह मैं हूं, यह वह है—इस प्रकार के विचार और इस प्रकार की अवस्था रखी हुई कदापि आत्मा और परमात्मा में ब्रह्म सम्बन्ध क़ायम नहीं हो सकता। श्रुति कहती है—

"यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः" ॥
(यजु० ४०–७)

वह जो परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं, उनकी आंखों पर से मेरे और तेरे का पर्दा तक उठ जाता है, उनके लिये न मेरा बाक़ी रहता है न तेरा। उनको सब जगह और सबमें उसी परब्रह्म परमात्मा का दृश्य दिखाई देता है। उनके लिये मोह कहां और शोक किसका? क्योंकि जब उनके सामने, परमात्मा की भक्ति और परमात्मा के प्रेम के अतिरिक्त अनित्य और असार पदार्थों की भक्ति और प्रेम ही न रहा तो फिर मोह किससे और शोक किसका? उनके लिए न आये की खुशी और न गये का ग़म। ईश्वर प्रेम में डूबा हुआ आत्मा भक्ति और प्रेम का आनन्द लेता हुआ बेवश हो बोल उठता है:—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् (कठो०५।१६)

यह मेरा आत्मा नित्य है, परन्तु परमात्मा के प्रेम के बिना वह एक प्रकार से एक अनित्य वस्तु की न्याईं मुर्दा है। मैं कह चुका हूं कि ईश्वर प्रेम ही आत्मा का जीवन है। यदि आत्मा में ईश्वर प्रेम नहीं है तो वह चेतन होता हुआ भी अचेतन है। एक ईश्वरभक्त ने इस ईश्वर प्रेम के विषय में कहा है—

"जा घट प्रेम न संचरे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लोहार की, श्वांस लेत बिन प्राण" ॥

लोहार की खाल सांस लेती नज़र आती है, वायु को अन्दर ले जाती है और बाहर निकालती है। भट्टी जल रही है, लोहा पिघल रहा है, सभी काम होते नजर आते हैं, परन्तु अन्त में वह खाल, खाल ही है इसमें प्राण नहीं है। ठीक उसी प्रकार ईश्वर प्रेम के बिना मनुष्य नाना प्रकार के कर्म करते देखे जाते हैं। प्रातः से लेकर सन्ध्या पर्य्यन्त इधर उधर भागते रहते हैं, पूजा पाठ भी करते हैं परन्तु यह सब कुछ करके भी वह संध्या के समय देखते हैं कि उनका आत्मा शून्य है। उसमें कोई ऐसी त्रुटि है, जो बाह्य वस्तुओं और बाहिर के पदार्थों से पूर्ण नहीं की जा सकती। वह रोटी खाते हैं, पानी पीते हैं, सोते हैं, चलते

हैं, नाना प्रकार के भोग भोगते हैं, परन्तु फिर भी उनके अन्दर से यही आवाज़ आती है कि आत्मा शून्य है, तृप्ति नहीं हुई। तृप्ति कैसे हो और किससे हो ? मैंने कहा है कि आत्मा चैतन्य वस्तु है, चैतन्य की तृप्ति के लिये चैतन्य शक्ति की आवश्यकता है। वह चैतन्य शक्ति परमात्मा है। यह जो आत्मा के भीतर शून्यता प्रतीत होती है। आत्मा के अन्दर से बारंबार यही आवाज़ आ रही है, कि नाना प्रकार के भोगों के भोगने पर भी वह शून्य है, यह आवाज़ किस चीज़ की अभिलाषा रखती है ? शून्य स्थान किस वस्तु की अनुपस्थिति को प्रगट करता है ? यह ईश्वर प्रेम की अनुपस्थिति का चिन्ह है। अन्दर से आवाज़ आरही है कि मैं अशान्त हूँ, मनुष्य अन्दर की शान्ति के लिये मद्य पान करता है, धन एकत्र करता है, नाना प्रकार के भोग भोगता है, परन्तु फिर वही आवाज़ आती है "मैं अशान्त हूं, मुझे मेरा भोजन दो, मुझे मेरे सखा, मेरे बन्धु, मेरे प्रेमास्पद, मेरे प्यारे के दर्शन करवाओ, ताकि मुझे शान्ति मिले। वह प्रेमास्पद, वह आत्मा का प्यारा, वह आत्मा का सखा कौन है ? वेद भगवान् कहता है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते" ॥ (ऋ०)

आत्मा का सखा, आत्मा का मित्र, आत्मा का आनन्द परमात्मा है। वही इसका प्यारा है, वही इसका

प्रेमास्पद है, जब संसार के असार पदार्थ इन दोनों क बीच में आकर विघ्न डालते हैं, तभी आत्मा बिल-बिलाने लग जाता है, दुःखी होता है, और अशान्ति से भर ज़ाता है। क्योंकि यह एक साधारणसी बात है कि जो जिसका आहार हो, उससे उसके आहार को छीन लो, जो जिसका आधार हो, उससे उसके आधार को दूर करदो, तो स्वाभाविक दुःख और अशान्ति होती है। आत्मा का आहार परमात्मा है। वायु हमारे लिये कितनी कल्याणकारी है। यदि वायु न हो तो हम कुछ मिन्टों में मर जायें। परन्तु जब इसी वायु में मछली को पानी से बाहिर निकाल कर रख दिया जाता है तो यही वायु जो हमारे लिये प्राण का आधार है, मछली की मौत का कारण होती है। इस लिये कि मछली का आधार पानी है।

आत्मा का आधार परमात्मा है, आत्मा परमात्मा से दूर होकर कदापि शान्ति उपलब्ध नहीं कर सकता, आत्मा का परमात्मा के साथ वही सम्बन्ध है, जो नेत्र का रूप के साथ है, यदि रूप न हो तो नेत्र किसी काम के नहीं। नेत्र उसी समय तक नेत्र हैं, जब तक कि उनके साथ रूप विद्यमान है। रूप को नेत्रों से दूर कर दो चारों ओर अन्धकार छा जायगा। अमावस की अन्धेरी रात्रि में नेत्र तो मौजूद होते हैं, परन्तु रूप लोप हो

जाता है। यही कारण है कि कुछ दिखाई नहीं देता। आत्मा नेत्र हैं और परमात्मा उनके लिये रूप है यदि आत्मिक नेत्रों के लिये पारमार्थिक रूप उपस्थित नहीं है, तो अमावस की रात्रि की न्याईं आत्मा होता हुआ भी अंधेरे में ठोकरें खाता फिरता है और अशांत रहता है। आत्मा और परमात्मा का वही परस्पर सम्बन्ध है जो सुगन्धि का पुष्प के साथ है, या रंग का पुष्प के साथ है। यदि पुष्प में सुगन्धि नहीं है, रंग नहीं है, कोमलता नहीं है तो वह पुष्प नहीं है। प्रत्युत एक सूखा हुआ कंटक प्रतीत होता है। आत्मा पुष्प है, परन्तु परमात्मा उसकी सुगन्धि है। यदि आत्मा में यह सुगन्धि नहीं है, तो इसमें क्या संदेह है कि आत्मा पुष्प होता हुआ भी मधु मक्खियों और भंवरों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकेगा। जिस आत्मा में परमात्मारूपी, सुगंधि विद्यमान है, जिस आत्मा पर परमात्मा की भक्ति का रंग चढ़ा हुआ है, वह स्वाभाविक ही मनुष्यों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। मधु मक्खी को पुष्प की ओर आकर्षण करनेवाली कौनसी वस्तु है? वह उसकी सुगन्धि और रूप ही है। पुष्प से सुगंधि को पृथक् कर दो, पुष्प किस काम का? फूल से इसकी कोमलता को दूर कर दो, फूल सूखा कंटक रह जायगा। स्त्री की शोभा उसकी लज्जा है। यदि स्त्री में लज्जा नहीं है तो वह पतिव्रता

नहीं है वह द्वार २ पर ठोकरें खाती फिरेगी, इसी प्रकार जिस आत्मा में ईश्वर प्रेम नहीं है, अथवा जो ब्रह्म के साथ ब्रह्म सम्बंध को अनुभव नहीं करता, वह उससे विमुख होकर एक निर्लज्ज स्त्री की न्याईं पदार्थों अथवा अन्य मनुष्यों को ही अपना उपास्यदेव समझ कर ठोकरें खाता फिरता है, और इसके आत्मा को कदापि शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। जब आत्मा को इस ब्रह्म सम्बन्ध का पता लग जाता है तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिसकी हमको भक्ति करनी है वह क्या है और कहां है। श्रुति बताती हैं—

"तदेजति तन्नेजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥(यजु०४०-५)

वह परब्रह्म इस सर्व ब्रह्माण्ड में ओत प्रोत है, उसी की शक्ति से यह ब्रह्माण्ड चक्कर खा रहा है। सूर्य्य चंद्रमा पृथ्वी और सर्व नक्षत्रों को वही गति दे रहा है, वह दूर से दूर और समीप से समीप है। अर्थात् जिस आत्मा में इसका प्रेम नहीं है, जो इसकी भक्ति से शून्य है, जो चक्षुहीन हैं, उसके लिये परमात्मा बहुत दूर की वस्तु है। वह उसको उपलब्ध नहीं कर सकता। परन्तु जिस आत्मा में ईश्वर प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा है, जिसकी आंखें खुल गई हैं, जो उसकी भक्ति के रंग में रंगा जा चुका है, परमात्मा स्वतः उसके अन्दर अपने आप बस रहा है। उसे आवश्यकता

नहीं कि वह उसे बाहिर की वस्तुओं में ढूंढे। उसको आवश्यकता नहीं कि वह उसको जड़ पदार्थों में ढूंढता फिरे। उसका प्रेमास्पद उसके अपने अन्दर ही विद्यमान है। श्रुति कहती है, वह परमात्मा हमारे आत्मा में विद्यमान है, वह इसके अन्दर और बाहिर व्याप्त है। यहां पर प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब वह हमारे अन्दर ही विद्यमान है, जब वह हमारे आत्मा में ही ओत प्रोत हो रहा है तो फिर हमें उसकी भक्ति करने की क्या आवश्यकता है, और उसके साथ ब्रह्म सम्बन्ध स्थित करने की क्या आवश्यकता है।

मैं कहता हूं कि जब तक आत्मा और परमात्मा में यह ब्रह्म सम्बन्ध स्थित नहीं होता, जब तक आत्मा इस बात का अनुभव नहीं कर लेता, कि इसका ब्रह्मके साथ वास्तव में ऐसा ही सम्बन्ध है, और जब तक वह सम्बन्ध के द्वारा परमात्मा से अपना आत्मिक भोजन प्राप्त नहीं करने लगजाता, तब तक इसकी अवस्था बिल्कुल शुष्क और शून्य रहती है। यदि नदियों में जल नहीं रहा है तो केवल इसलिये कि नदी का सम्बन्ध सागर के साथ है, नदी का जल सागर में गिरता है, सागर इस जल को सूर्य्य की किरणों द्वारा ऊपर उठता है, और बादलों के रूप में नदी के मुख में डालता है। यदि समुद्र न हो, अथवा नदी का समुद्र के साथ सम्बन्ध न हो तो नदी सूख जाय, समुद्र ही तो इसके मुख में जल डालता है और उसको जीवित

रखता है, जिन तालाबों या छप्पड़ों का समुद्र या किसी नदी के साथ सम्बन्ध नहीं होता उनका पानी खराब हो जाता है, और वे सूख जाया करते हैं।

हिन्दूमात्र गङ्गा की पूजा करते हैं, उसके जल को पवित्र समझते हैं। परन्तु यदि गङ्गा का समुद्र के साथ सम्बन्ध न हो, समुद्र अपने सम्बन्ध के द्वारा गंगा के मुख में पवित्र जल न पहुंचाये तो गंगा गंगा नहीं रह सकती, इसका शुद्ध जल नहीं रह सकता। वह सूख जाय, और छप्पड़ के पानी की तरह विकृत हो जाय। यही दशा आत्मा की है। आत्मा को आवश्यकता है कि वह अपने से महान् की शरण ले, क्योंकि जब तक वह अपने से महान् शक्ति की शरण नहीं लेता तब तक वह शक्ति नहीं पा सकता। वह जीवन लाभ नहीं कर सकता। मैंने कहा है कि वेदों में परमात्मा को समुद्र कहा गया है, श्रुति ने आत्मा को नदी बताया है। आत्मा रूपी नदी का यदि परमात्मा रूपी समुद्र के साथ सम्बन्ध नहीं है तो यह नदी सूख जायगी। बस! आत्मिक शक्ति के लिये, आत्मा को सरस रखने के लिये ईश्वरप्रेम और ईश्वरभक्ति की आवश्यकता है और ईश्वर भक्ति के लिये सबसे पहली शर्त ब्रह्म सम्बन्ध का कायम होना है।

श्रवण, मनन और कीर्तन।

केवल ब्रह्म सम्बन्ध को उपलब्ध करने मात्र से ही

ईश्वरभक्ति या ईश्वरप्रेम की अवस्था आरम्भ नहीं हो जाया करती। यह सम्बन्ध दिन प्रतिदिन गूढ़ और दृढ़ करने के लिये तीन चीज़ों की आवश्यकता है अर्थात् श्रवण, मनन और कीर्तन।

यह तीन साधन इस सम्बन्ध को दृढ़ करने के लिय अति आवश्यक हैं। श्रवण क्या है? जहां ईश्वर की भक्ति का वर्णन हो रहा हो, जहां ईश्वर प्रेम की कथा हो रही हो, जहां ईश्वरभक्त बैठे हुए ईश्वर की भक्ति के विषय में कुछ विचार कर रहे हों, वहां श्रद्धापूर्वक जाकर बैठना, और जो कुछ ये कहं रहे हों, उसको ध्यानपूर्वक सुनना ही ईश्वर का 'श्रवण' करना है। सुनने के पश्चात् मनन करने की आवश्यकता है अर्थात् जो कुछ हमनें सुना है उस पर विचार किया जाय, चिंतन किया जाय और उसको अपने आत्मा में धारण किया जाय। जितना हम विचार करते हैं, उतना ही हम पर उसका रंग चढ़ता जाता है और यह एक स्वाभाविक ही बात है कि जिस चीज़ का आत्मा अधिक जाप करता है अर्थात् जिस चीज का इस पर अधिक रंग चढ़ा होता है वह उठते बैठते इसीका अधिक कीर्तन करता है। यदि हम कुसंगत में जाते हैं, अथवा अश्लील बात सुनते हैं, तो हमारे मनमें भी अपवित्र ही भाव उठते हैं। सोते समय भी हमें अपवित्र ही स्वप्न आते हैं, क्योंकि जो कुछ हम श्रवण या

मनन करते हैं उसका हमारे सूक्ष्म शरीर पर प्रभाव पड़ता रहता है, प्रत्युत हमारा सूक्ष्म शरीर बनता ही हमारे विचारों से है। हम अपने विचारों से अपने सूक्ष्म शरीर को जिस प्रकार का भी चाहें बना सकते हैं, और इस पर जो भी रंग चढ़ाना चाहें, चढ़ा सकते हैं, जैसे हमारा बाहिर का स्थूल शरीर जिस प्रकार का हम भोजन पाते हैं, उसी प्रकार का बनता जाता है। यदि हम खराब भोजन पाते है, तो हमारा शरीर भी दुर्बल शक्तिहीन तथा रोगों का घर बनता जाता है। इसी प्रकार यदि हम अपने आत्मा को अशुद्ध भोजन देते हैं, हम बुरी बातें सुनते हैं, बुरा ही चिन्तन करते हैं, तो हमारा सूक्ष्म शरीर भी वैसा ही बुरा बनता जाता है। शास्त्र कहते हैं—

"यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति। यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति। यत् कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते।

जिस प्रकार के विचारों में मन मग्न रहता है, उसी प्रकार के शब्द भी उसके मुख से निकलते हैं और जिस प्रकार के शब्द उसके मुख से निकलते हैं, उसी प्रकार के वह कर्म भी करता है। और जिस प्रकार के वह कर्म करता है, उसी प्रकार का उसको फल मिलता है। यदि मन में अच्छा चिन्तन हो तो वाणी से भी अच्छे ही शब्द निकलते हैं। परन्तु मन वही कुछ मनन करता है जो कुछ

वह श्रवण करता है। इसलिये श्रवण की महिमा सबसे पहले की गई है। तुलसीदास जी ने कहा है—

धन दारा सुत लक्ष्मी, पापी के भी होए।
सन्त समागम हरि कथा, तुलसी दुर्लभ दोए॥

अर्थात् धन, दौलत, स्त्री, सन्तान सांसारिक ऐश्वर्य्य यह तो एक पापी से पापी मनुष्य को भी प्राप्त हैं। उनको पाकर कोई मनुष्य भी शान्ति नहीं पा सकता। शान्ति का उपाय केवलमात्र ईश्वर का प्रेम और ईश्वरभक्ति है। वह कहां से प्राप्त होता है, और क्यों कर मिलती है? ईश्वर भक्तों की संगति करने से और उनके वचनों को श्रवण करने से। उपनिषद् में लिखा है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥ (कठो० ३। १४)

अरे! संसार के सुखों में और संसार के विषयों में उन्मत्त होने वाले आत्मा! उठ, जाग, और ईश्वरभक्तों की संगति में बैठ। ईश्वर कथा का श्रवण कर। संगति में बैठने और ईश्वर कथा का श्रवण करने की क्या आवश्यकता है। क्यों न हम नाच रंग सुने, क्यों न हम खेल तमाशों में सम्मिलित हों? क्यों न हम संसार के आनन्द भोगें? यह ईश्वर प्रेम की पुकार, ईश्वरभक्ति का जंजाल कौन सहे? बात ठीक है। ईश्वरप्रेम एक कठिन

बाट हैं, ईश्वरभक्ति एक दुर्लभ वस्तु है, सांसारिक सुखों में और संसार के खेलों में फंसा हुआ आत्मा इस ओर ध्यान नहीं देता। उपनिषद् कहती है कि ईश्वर प्रेम एक छुरे की धार है। जो इस पर पग रखता है, वही कट जाता है। कटने से यह प्रयोजन नहीं कि वह मर जाता है, प्रत्युत उसके अन्दर जो मैल होती है, वह दूर जाती है। जैसे सुनार की भट्टी में सुवर्ण को जलाने और पिघलाने से उसकी मैल दूर होजाती है, ठीक उसी प्रकार ईश्वर प्रेम की अग्नि में आत्मा को जलाने से उसकी मैल दूर होजाती है। परन्तु प्रेम का प्याला कौन पी सकता है, इस प्रेम की अग्नि में कौन जल सकता है? एक ईश्वरभक्त ने कहा है—

"प्रेम प्याला जो पिये, सीस दक्षिणा दे।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेमका ले॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह में फंसा हुआ मनुष्य क्या सीस दे सकता है। वह ईश्वर प्रेम का आनन्द क्या ले सकता है। आत्मा एक समय में एक ही पदार्थ का आनन्द ले सकता है। जो मनुष्य सांसारिक सुखों अथवा सांसारिक भोगों के आनन्द में ही डूब रहा है, वह इस सुख के मार्ग को छोड़ कर ईश्वर प्रेम के शुष्क मार्ग पर कैसे चल सकता है? इसी लिये उपनिषद् में लिखा है कि ईश्वरप्रेम या ईश्वर प्राप्ति का मार्ग छुरे की धार है और यह अतिसंकुचित है अतिकठिन है। इस पर चलना

किसी विरले का ही काम है। परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि एक बार आत्मा में ईश्वरप्रेम की लहर उठे, आत्मा में ईश्वरभक्ति का स्रोत जारी हो जाय फिर इससे अधिक आनन्द देनेवाली कोई दूसरी वस्तु नहीं रहती। मनुष्य को एक बार ईश्वरप्रेम का चसका पड़ जाय, फिर वह बारंबार उसी की ओर जायगा। उसीका श्रवण करके उसको आनन्द आता है, उसीका मनन करके उसको सुख मिलता है, और वह रात दिन उसीका कीर्तन करता रहता है। इसी प्रकार इसके सूक्ष्म शरीर में एक परिवर्तन होता जाता है यहां तक कि धीरे २ उसका कुल शरीर ही ऐसा बन जाता है कि वह ईश्वरप्रेम ईश्वरभक्ति में तद्रूप हो जाता है।

उपनिषद् में लिखा है:—

"यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम। (कठो० ४।१५)

जैसे साफ़ और शुद्ध जल शुद्ध और पवित्र जल में डालने से उसके साथ मिलकर तद्रूप हो जाता है, अर्थात् उसके साथ ही मिल जाता है, इसी प्रकार ईश्वर भक्त का आत्मा तमाम मैल से पवित्र शुद्ध और निर्भय होकर ईश्वरप्रेम में तद्रूप हो जाता है। परंतु ऐसा कब होता है, जब कि आत्मा के ऊपर से मैल के पर्दे दूर हो जाते हैं। यह मैल ईश्वरप्रेम की अग्नि में जलाने से ही

दूर हो सकती है, और यह ईश्वरप्रेम तब ही उत्पन्न हुआ करता है जब कि मनुष्य ईश्वर के विषय में श्रद्धापूर्वक श्रवण करता रहे और जो कुछ श्रवण करे उस पर विचार करे और जो विचार करे उसीका फिर कीर्तन करे अर्थात् जहां जाये उसका यश गाये, उसकी महिमा कीर्तन करे। यदि इसने श्रवण और मनन के द्वारा अपने आत्मा को ईश्वर प्रेम में दृढ़ कर लिया है तो फिर उसको हरि यश कीर्तन के लिये अधिक यत्न नहीं करना पड़ता, आनन्द की धारा इसके अंदर बहने लगती है, प्रेम का सागर इसके अन्दर लहरें मारने लगता है और वह हर समय ही ईश्वर प्रेम में मग्न रहता है।

तन, मन, धन का समर्पण।

श्रवण, मनन और कीर्तन इन तीन साधनों के पश्चात् समर्पण की अवस्था आती है। जब ईश्वरभक्त में ईश्वर प्रेम का उदय होता है तो वह अपना सब कुछ उसीके समर्पण कर देता है, परंतु समर्पण की मंज़िल अति कठिन है, यह अत्यंत कठिन घाटी है। परंतु सत्य यह है कि जब तक यह तीन प्रकार का समर्पण नहीं होता, तबतक ईश्वर भक्ति पूर्ण नहीं होती। समर्पण के बिना यह तो सम्भव है कि ईश्वर भक्त के मन में परमात्मा के प्रेम की तरंगे उठती हों, परंतु वह चिरस्थाई नहीं हो सकतीं। वह देखता है कि एक समय वह ईश्वर के प्रेममें मतवाला

हो जाता है, पर दूसरे समय में उसका आत्मा बिल्कुल शून्य और शुष्क रह जाता है। इसका कारण क्या है? जैसे मैंने पहले कहा है, आत्मा चेतन है चेतन आत्माके लिये चेतन शक्ति की आवश्यकता है। चेतन आत्मा चाहता है कि वह अपने चेतन सखा, चेतन बंधु परमात्मा के संग रहे। वह इसके समीप जाता भी है, परंतु इसने अभी तक तन, मन, धन का समर्पण नहीं किया। इस लिये इस समीपस्थ अवस्था में इसको जब ही अपने तन, मन या धन का ख्याल आता है वह अपने सखासे दूर होजाता है और प्रेम में विघ्न पड़ जाता है। यदि इन सर्व वस्तुओं का परमात्मा में स्वाहा कर दिया जाय तो फिर इसके पीछे आत्मा नहीं भटकेगा। हमको यह देखना है कि इनका समर्पण कैसे हो सकता है? तन का समर्पण बड़ा सहज है, धन का समर्पण भी बड़ा सहज है, परन्तु मन का समर्पण बड़ा कठिन है। मन बड़ा ही चंचल और शीघ्रगामी है। ईश्वर भक्त अपने तन और धन को समर्पण करके मन को भी समर्पण करना चाहता है।

किन्तु वह देखता है कि मन उसके वश में नहीं आता। वह सोचता है कि इसको क्योंकर वश में करे और कैसे इसको ईश्वर प्रेम की वेदी पर चढ़ाये? हम स्थूल वस्तुओं का समर्पण बहुत जल्दी और सुगमता से कर सकते हैं। मगर जो चीज़ जितनी ज्यादा सूक्ष्म होती है,

उसी कदर हमारे लिये इसका पकड़ना और समर्पण करना कठिन होता है। मन जो अति सूक्ष्म और शीघ्रगामी है, उसका वश करना बड़ा ही दुष्कर है। परन्तु मन के समर्पण से पहले तन का समर्पण आवश्यक है, क्योंकि मन तनके सहारे पर ही कल्लोल करता है। यदि तन का पहले ईश्वर प्रेमकी वेदी पर न्योछावर कर दिया जाय तो फिर मन का समर्पण कर देना बड़ा सुगम होजाता है। प्राचीन काल में जो यज्ञ रचाये जाते थे, तो उनमें ऋषि मुनि इसी प्रकार का बलिदान किया करते थे। उनमें पशुवध नहीं होता था, प्रत्युत वह अपनी पशु इन्द्रियों को उनमें बलिदान किया करते थे। वह अपने तन को ईश्वर प्रेम की वेदी पर स्वाहा करते थे। वह एक तप का समय था, पशु इन्द्रियों को मार कर तन, मन धन को परमात्मा के समर्पण करके ईश्वर प्रेम की अग्नि में स्वाहा कर देने का जमाना था। जब मनुष्यों की अवस्था पतित हो गई, और वह तप के अधिकारी न रहे, सांसारिक विषयों में फंस गये, इन्द्रियों को न्योछावर करने की बजाय उनको मोटा करने लग गये तो उन्होंने बजाय इन पशु इन्द्रियों की कुर्बानी के पशुओं का वध करके यज्ञ में डालना शुरू कर दिया और पशु इन्द्रियों की कुर्बानी पशुओं की कुर्बानी में परिवर्तन कर दी गई। कृष्ण भगवान् ने कहा है कि यज्ञ कई प्रकार के हैं। सबसे उत्तम यज्ञ पशु

इन्द्रियों का बलिदान है। आवश्यकता है कि मनुष्य आंख की कुर्बानी करे, कान की कुर्बानी करे, नाक की कुर्बानी करे, और हाथ पांव की कुर्बानी करे। इन सर्व अंगों को एक २ करके ईश्वर के लिये न्योछावर करें। यह जो कहा जाता है कि हमारे प्राचीन ऋषि मुनि पशुओं के अंग काट २ कर यज्ञ में डाला करते थे, मिथ्या है। वह पशुओं के अंग काट कर यज्ञ में आहुति नहीं देते थे प्रत्युत वह अपने अंगों को एक २ करके ईश्वर के समर्पण करते थे, वह पांव की कुर्बानी करते थे। आंख की कुर्बानी क्या है? आंख का विषय रूप है। जहां वह सुंदर वस्तु देखती है वहां ही वह इसके पीछे हो लेती है, चाहे इसमें पाप हो अथवा पुण्य। इस प्रकार रूप के पीछे भागने वाली आंख अनेक वार मनुष्य को गिराने का कारण बनती है। कितने ही ऋषियों मुनियों का तप केवल आंख की कुर्बानी न होने से भङ्ग हो गया। सुंदर स्त्री को देखा, आंख इसके पीछे हो ली। सुन्दर वस्तुओं को देखा, आंख उनके पीछे भाग निकली, तो मन भी उधर चल पड़ा। जब मन चल पड़ा तो फिर तन की क्या शक्ति थी जो उसका साथ न देता। परिणाम यह हुआ कि आंख ने उनके सारे यज्ञ को भस्म कर डाला और उनका सारा तप मिट्टी में मिल गया। इसी लिये ऋषि लोग इस बात पर जोर देते थे, कि अपने एक २ अंग को

परमात्मा के सामने समर्पण किया जाय। इसी प्रकार कान का विषय क्या है? जब वह मीठी आवाज़ या शब्द को सुनता है, तो झट उधर भाग निकलता है, उसके साथ मन भी दौड़ने लगता है। मनके साथ तन भी गति में आजाता है। परिणाम फिर वही होता है कि यज्ञ में विघ्न पड़ जाता है ऋषियों को आवश्यकता प्रतीत हुई कि कान का भी इस यज्ञ में बलिदान कर देना चाहिये। इसी तरह नाक का विषय है सूंघना। जब वह किसी सुगन्धि वाली वस्तु को सूंघता है, तो उसमें लिप्त होजाता है, उसके लिप्त होने से मन भी उसी ओर जाता है। मन के हिलने से यज्ञ में फिर विघ्न पड़ता है।

इसी लिये ऋषियों ने देखा कि यज्ञ को सफल करने के लिये और इसको सम्पूर्ण विघ्नों से बचाने के लिये नाक का भी समर्पण करना आवश्यक है। जिह्वा का विषय रस है। जिह्वा किसी स्वादवाली वस्तु को चखती है और उसी में फंस जाती है। दिल चाहता है कि वही स्वादवाली वस्तु फिर मिले तो अच्छा है। मन उसी चीज़ के लिये भागने लगता है। मन के भागने से यज्ञ में फिर विघ्न पड़ता है। ऋषियों ने देखा कि जिह्वा भी यज्ञ में विघ्न डालती है उसको भी समर्पण करने की आवश्यकता है। इसी प्रकार वह एक २ अङ्ग को जो ईश्वरभक्ति के यज्ञ में बाधा वा विघ्न डालता था बलिदान कर देते थे।

परन्तु बलिदान का तात्पर्य यह नहीं था कि वह उन अङ्गों को काट २ कर अग्नि में आहुति देते थे। नहीं बल्कि वह उनको इनके विषयों से रोकते थे। वह उन सारे मार्गों को रोक देते थे कि जिनके द्वारा चंचल मन बाहर को भाग जाता है उनका सारा यत्न इस मन को वशीभूत करने के लिये होता था, क्योंकि "मन जीते जग जीत है, मन हारे जग हार" इन्द्रियों को इनके विषयों से रोकना अति कठिन कार्य्य है, क्योंकि यह इन्द्रिएं ही हैं कि जिनके द्वारा मन इधर उधर डावांडोल हो रहा है और वश में नहीं आता। यदि उनका निरोध हो जाय तो फिर मनका वश कर लेना सहज है।

पातञ्जलि मुनि योगशास्त्र में कहते हैं :—

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ॥ (यो० १।२)

अर्थात् योग क्या है, चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही महायज्ञ है, इस महायज्ञ में इन सब इन्द्रियों की बलि की आवश्यकता है।

भगवान् बुद्ध ने इसी यज्ञ की महिमा प्रकट करने के लिये अपने भिक्षुकों से कहा था कि यज्ञ का तात्पर्य्य पशु बध नहीं है। भगवान् बुद्ध के समय में पशु हिंसा बहुत होती थी, मूर्ख और अज्ञानी जन पशु इन्द्रियों की कुर्बानी को छोड़ कर पशुओं की कुर्बानी करते देखे जाते थे। परन्तु भगवान् बुद्ध ने इनको समझाया कि कुर्बानी का तात्पर्य्य

पशुओं का बलिदान नहीं है, बल्कि अपनी इन्द्रियों का बलिदान है। भगवान् बुद्ध अपने भिक्षुओं को उपदेश करते हैं, "भिक्षुओ! यह एक आश्चर्य्यजनक दृश्य है कि इस महायज्ञ में जब तक आंख को नहीं जलाया जाता, जब तक नाक को नहीं जलाया जाता, जब तक हाथ पांव को नहीं जलाया जाता, जब तक मन को नहीं जलाया जाता, तब तक यज्ञ की पूर्ति कठिन है। मैं देखता हूं कि इस अग्नि में आंखें जल रही हैं, कान जल रहे हैं, नाक जल रही है, हाथ जल रहे हैं, मन भी जल रहा है अर्थात् सब पशु इन्द्रिएं जल कर भस्म होरही हैं। यह यज्ञ तप का यज्ञ है। जब तक कोई मनुष्य तप के यज्ञ में अपनी सर्व इच्छाओं को बलिदान नहीं कर देता, तब तक उसका यह यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता। तात्पर्य्य यह है कि ईश्वर प्राप्ति के लिये एक यज्ञ की ज़रूरत है, ईश्वरप्रेमरूपी अग्नि की आवश्यकता है जिसमें मनुष्य अपनी सर्व इन्द्रियों, अपनी सर्व इच्छाओं को भस्म कर दे। ऐसा किये बिना वह शुद्ध और पवित्र कैसे हो सकता है। इन्द्रियों की क़ुर्बानी यही है कि उनको उनके विषयों से रोका जाय।

एक राजा की कहानी मशहूर है, कि उसने अपनी तमाम उम्र विषय भोग में बरबाद की। उसने अपनी युवावस्था के दिनों में कभी तप नहीं किया बल्कि रात दिन विषय भोग में लगा रहा था। जब इसकी इन्द्रियों ने जवाब

देना शुरू किया और उसकी हालत बहुत ही खराब होने लगी, तो उसको बहुत दुःख हुआ और वह तीर कमान लेकर जंगल में चला गया, और सोचने लगा कि आंख ने ही मेरा नाश किया है क्योंकि इसी के द्वारा मैं एक सुन्दर स्त्री या वस्तु को देखकर उसकी तरफ भागा, आंख ही मुझे इस तरफ ले गई। बस! आंख ही मेरी दुश्मन है सब से पहले मैं इसीके तीर मारूंगा। उसने फिर सोचा कि आंख का क्या दोष? बड़ा दोष तो मेरे कानों का है वह मुझे मधुर आवाज़ की तरफ लेगये, बस! क्यों न पहले इस कान पर ही तीर मारूं। राजा तीर कमान में रखता है मगर फिर सोचता है कि कान का भी क्या दोष है। जिह्वा ने सबसे बड़ा काम किया है, जिह्वा के वश होकर मैंने कितने ही पशुओं का वध किया है, और कितने ही अभक्ष्य पदार्थ खाये, जिह्वा ने मेरी पशु इन्द्रियों को उत्तेजित्त किया, बस! जिह्वा सबसे ज्यादा पापी है, पहले जिह्वा के तीर लगाना चाहिये। वह तीर कस लेता है, और करीब है कि छोड़दे कि उसको ख्याल आता है कि जिह्वा का क्या दोष है।

सबसे बड़ा पापी तो मन है। इस दिल में कोई ऐसी वस्तु विद्यमान है जो यह सब काम करवाती है, और इसीने मुझे नाश किया है, पहले इसको ही मारना चाहिये यह कहकर वह दिल की ओर तीर सीधा करता है

कि इतनेमें ही भगवान् बुद्ध उसके सामने आते हैं और कहते हैं-'राजन् ! किसको मार रहे हो, राजा उत्तर देता है कि भगवन् ! मेरी इन्द्रियों ने मेरा नाश कर दिया है, मैं चाहता हूं कि उन्हें एक २ करके तीर से मार डालूं। भगवान् बुद्ध उत्तर देते हैं-'राजन् ! इन्द्रियों ने क्या दोष किया है, इन्द्रियों को तीर से मार कर तेरा कल्याण नहीं होगा। उस चीज को मार जो तेरी इन्द्रियों को चला रही है अर्थात् इन्द्रियों का स्वामी जो मन है, जब तक तू उसको वश में नहीं करता, तब तक तेरा कुछ भी नहीं बनेगा, राजा की आंखें खुलती हैं, और वह तप में लग जाता है, तात्पर्य्ये यह है कि जब तक पशु इन्द्रियों को वेदी पर नहीं चढ़ाया जाता, जब तक कि उनके पशु धर्म्म का त्याग नहीं किया जाता, तब तक मन का वश में होना भी कठिन है । इन्द्रियों का त्याग यही है, कि वह डावांडोल इधर उधर न भटकती फिरें। आंख की कुर्बानी यह है कि इसको इसके विषय से रोक कर वश में किया जाय, कान की कुर्बानी यह है कि उसको सुनने से रोक कर वश में किया जाय। यह न हो कि आंख जिस तरफ़ चाहे भागती फिरे या कान जो आवाज़ सुनना चाहें, वह शरीर को उसी तरफ खैंच कर ले जाय । नहीं, इन सबको परमात्मा के समर्पण करने की आवश्यकता है। हिन्दुओं का ख्याल है कि जो पशु यज्ञ में बलि किये

जाते हैं वह दूसरे लोक में जाकर जिन्दा हो जाते हैं। यह ख्याल मिथ्या हो अथवा सत्य, परन्तु इसमें सन्देह नहीं है जो इन्द्रियां परमात्मा की शक्ति में बलि की जाती हैं, जो इस वेदी पर चढ़ा दी जाती हैं, वह अवश्य ही जिन्दा हो जाती हैं उनकी तमाम मैल धुल जाती है, उनमें जो पाप के मार्ग पर चलने की शक्ति है वह पुण्य के मार्ग पर चलने लगती है। पाप ही मृत्यु है, जब इन्द्रियां पाप के मार्ग से हट गई तो मन भी उस तरफ़ नहीं जायगा जब मन और इन्द्रिएं दोनों ही पाप के मार्ग से हट गये, तो फिर दुःख काहे का, और डर किससे? आत्मा की मैल धुलने लगती है और वह अधिक से अधिक ईश्वरभक्ति के प्रेम में रंगा जाने लगता है। यहां तक कि वह तद्रूप होजाता है। उपनिषद् कहता है:—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः। सतु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥ (कठो० ३। ८)॥

अर्थात् जब ही मन के संकल्प विकल्प शुद्ध हो जाते हैं, आत्मा के अन्दर ईश्वर प्रेम की ज्योति उत्पन्न हो जाती है और वह मृत्यु से ऊपर हो जाता है अर्थात् वह एक जीवन मुक्त आत्मा हो जाता है। परन्तु प्रश्न फिर वही है, कि मन को कैसे वश में किया जाय। यह जो ईश्वर प्रेम की ज्योति का स्थान है, यह जो ईश्वर भक्ति का केन्द्रस्थान

मन है उस को कैसे वश में किया जाय उसको क्योंकर समर्पण किया जाय । तन को तो समर्पण कर दिया क्योंकि इन्द्रियों के समर्पण कर देने से तन स्वयं ही समर्पण हो जाता है । परन्तु मन को समर्पण करने के लिये क्या उपाय है, इसके लिये एक ही साधन है, कि मन में संकल्प किया जाय, कि मैं समर्पण कर दिया गया हूं । मन को कहा जाय कि तू मेरा नहीं रहा, प्रत्युत तुझे किसी दूसरे को दे दिया गया है, इसको बराबर यही कहा जाय इससे मन में यह भाव उत्पन्न होगा, कि जब वह अपना नहीं है, तो इसमें मन माने भाव भी पैदा नहीं होने चाहियें प्रत्युत उसीकी इच्छानुसार इसमें भाव पैदा हो जिसे इसको समर्पण कर दिया गया है ।

जब मन को ईश्वर के समपर्ण कर दिया जायगा, तो इसमें भाव भी ईश्वर भक्ति के ही उत्पन्न होंगे । मन के समपर्ण के विषय में एक कथा आती है—एक बार राजा जनक, याज्ञवल्क्य ऋषि के पास पधारे, और उन्होंने उनसे प्रार्थना की, कि हे भगवन् ! मैं कौन सा उपाय करूं कि जिससे मेरा मन वश में हो और वह ईश्वर भक्ति में लगे । ऋषि ने कहा कि हम इसका साधन आपको बता देंगे, परन्तु पहले आप हमको दक्षिणा दें । राजा ने कहा कि यदि मैं चाहूं तो सारा राजपाट आपको दक्षिणा में दे सकता हूं ! ऋषि उत्तर देता है कि राजपाट तेरा नहीं है

यह तो एक चलती फिरती माया है, यही राज है जो तेरे पिता और पितामह के पास था, अब तेरे पास है जब यह तेरे पिता आदि के पास न ठहरा, तो तेरे पास कैसे ठहरेगा । बस ! राज तेरी वस्तु नहीं । किसी ऐसी वस्तु का दान दे जो तेरी अपनी हो । राजा ने कहा कि मैं अपना तमाम धन आपके अर्पण करता हूं । ऋषि ने कहा कि धन भी तेरा नहीं, क्योंकि इसका बहुत सा हिस्सा तेरे पूर्वजों ने जमा किया है और वह भी प्रजा से मांग कर एकत्रित किया, जो प्रजा का माल है वह तेरा माल नहीं है । प्रजा का माल प्रजा का ही है, वह उसकी भलाई में ही व्यय होना चाहिये तेरा इसपर क्या अधिकार है । तू तो इसकी रक्षा के लिये परमात्मा की तरफ़ से भेजा गया है । रक्षक को कदापि भक्षक नहीं होना चाहिये । अस्तु ! तू जो धन की दक्षिणा देता है, वह तेरी अपनी वस्तु नहीं है, कोई ऐसी दक्षिणा दे जो तेरी अपनी हो । राजा बोलता है कि महाराज ! यह घोड़े गाड़ियां हाथी बैल इत्यादि तो मेरे हैं, आप इनको दक्षिणा में ग्रहण कीजिये । ऋषि उत्तर देता है कि यह भी तेरी वस्तु नहीं है, यह भी तूने बाहर से पकड़ कर अपने पास जमा कर रक्खे हैं । आज तेरे पास हैं, कल किसी दूसरे के पास चले जायेंगे, राजा की आंखें खुलती हैं और उसको सारे पदार्थ अपने से जुदा प्रतीत

होते हैं अन्त में वह बोलता है कि भगवन् ! मैं अपने तन को आपके अर्पण करता हूं।

ऋषि उत्तर देता है कि तन अर्पण करने से भी कुछ नहीं बनता। तन तो केवल एकमात्र मुर्दा वस्तु है इसके अर्पण से भी ईश्वरप्राप्ति नहीं हो सकती। राजन् ! अगर दक्षिणा देना चाहते हो तो मन की दक्षिणा दो। राजा प्रसन्न होकर बोला, भगवन् ! मैं मन को आप के अर्पण करता हूं। ऋषि ने कहा 'अच्छा जाओ अब तुमको ईश्वर प्राप्ति होगी।' राजा जनक चले गये और ईश्वर के ध्यान में लग गये, मगर उन्होंने देखा कि मन वैसे का वैसा ही डावांडोल है और ईश्वर की तरफ से विमुख है। वह फिर ऋषि के पास आये और कहने लगे, भगवन् ! अब भी ईश्वर प्राप्ति नहीं हुई, मन वैसे का वैसा ही चंचल है। ऋषि ने उत्तर दिया, राजन् ! तूने मन का समर्पण नहीं किया, इसी लिये तुझे ईश्वरप्राप्ति नहीं हुई, यदि तूने मन समर्पण कर दिया था तो फिर तेरे मन में यह ख्याल ही कैसे पैदा हुआ कि परमेश्वर की प्राप्ति नहीं हुई। राजन् ! यदि तूने मन को दे दिया होता तो इस में यह ख्याल कदापि पैदा न होता। क्योंकि जो वस्तु अपनी नहीं रहता या दूसरे को दे दी जाती है, तो फिर उसमें अपनी भावना रखना पाप है। जब मन समर्पण कर दिया गया, तो फिर उसमें अपनी तरफ से कोई भी ख्याल पैदा

नहीं होना चाहिये। तात्पर्य्य यह है कि जब तक मन को हर एक प्रकार के विचारों और हर एक प्रकार के तरंगों से खाली नहीं किया जाता तब तक वह ईश्वर के प्रेममें मग्न नहीं हो सकता। मन का स्वभाव है कि एक वक्त में एक ही चीज़ का चिन्तन कर सकता है, एक समय में इसके अन्दर एक ही लहर उठ सकती है। यदि इस में सांसारिक पदार्थों के ख्याल उठ रहे हैं, यदि वह संसार के भोगों के ख्याल में उलझा हुआ है, यदि उस में सांसारिक सम्बन्धों की लहरें उठ रही हैं, तो इसमें ईश्वर का चिन्तन कैसे हो सकता है ? मन बहुत ही दूर तक गमन करने वाली शक्ति है, वह बहुत ही विशाल है, उस में बड़े से बड़ा ख्याल समा सकता है परन्तु एक समय में वह एक ही का चिन्तन कर सकता है, दो का नहीं। ईश्वर की लीला न्यारी है। एक ईश्वरभक्त ने कहा है:—

जब मैं था तब हरि नहीं, जब हरि तब मैं नांहि।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समांहि ॥

अर्थात् जब तक मेरे मन में मेरे ही विचार उत्पन्न हो रहे थे, तब तक मैं यह समझ रहा था कि मैं बड़ा बुद्धिमान् हूं, मैं बड़ा चतुर हूं, मैं बड़ा धनी हूं, मैं बड़ा बलवान् हूं, मैं बड़ा सुन्दर हूं, मेरे पास यह धन है, यह दौलत है, इतने बेटे हैं-इत्यादि ।

तब तक मेरा मन इन्हीं चीजों में फंसा हुआ था

और इसमें परमात्मा का चिन्तन होना अति कठिन था, परन्तु जब मैंने इन चीजों को अपने मन के अन्दर से निकाल दिया, जब मैंने अपनी "मैं" को मार दिया, जब अहंकार दूर हो गया तो ईश्वर प्रेम का दृश्य मुझे नजर आया, इसके प्रेम की चिंगारी ने मेरी तमाम "मैं" को जला करे ख़ाक स्याह कर दिया और मुझे पता लगा, कि मैं तो कुछ भी नहीं था, यह सारी चीजें जिनको मैं अपनी समझता था और जिनके पीछे मेरा मन दिन रात चलायमान रहता था वह सबकी सब प्रेमरस से शुष्क और शून्य साबित हुईं।

अब वह ईश्वर के प्रेम में इतना मग्न हो जाता है कि वह अपने आपको भी भूल जाता है। ईश्वरभक्त कहता है प्रेम की गली बहुत ही तंग है, इसमें दो नहीं समा सकते। जब तक मन में दो का ख्याल रहता है तब तक प्रेम उत्पन्न नहीं हो सकता। मसीह ने कहा है कि तुम ईश्वर और प्रकृति की एक साथ पूजा नहीं कर सकते। इसका यह भी तात्पर्य्य है कि ईश्वरभक्ति और ईश्वरप्रेम के लिये मन को ईश्वर के समर्पण कर देना सबसे पहली शर्त है जब तक मन में प्राकृतिक पदार्थों के ख्याल उठते रहते हैं, तब तक मन उनके समर्पण रहता है, लेकिन जब ईश्वर प्रेम का उसमें उदय होता है तब प्राकृतिक पदार्थों का प्रेम धीरे २ कम होने लगता है। परन्तु प्रश्न फिर वही है कि

मन को क्योंकर ईश्वर के समर्पण किया जाय । इसका साधन, जैसा कि मैंने पहले कहा है केवल यही है कि मन को कहा जाय, कि मैंने तुझको दे दिया, तू अब मेरा नहीं है, तू ईश्वर का है, ईश्वर ही तेरा प्राणाधार है, ईश्वर ही तेरा सहायक है, ईश्वर ही तेरा कर्तव्य है । अरे मन ! ईश्वर इच्छा को पालन कर, ईश्वर तेरे साथ हो, ईश्वर का साया तुझ पर हो, तू ईश्वर इच्छा से बाहर मत जा, तू ईश्वर का है, ईश्वर तेरा है, इस प्रकार बार बार मनको कहा जाय और इसमें एक लहर पैदा कर दी जाय, तो फिर वह भी समझने लगता है कि वह ईश्वर के अधीन है, ईश्वर इच्छा का पालन करना इसका कर्तव्य है ।

ईश्वर प्रेम में मग्न होना, ईश्वरभक्ति का आनन्द उठाना इसका एकमात्र साधन है, इसी तरह बार २ इस को ईश्वर के समर्पण करने से बार २ इसको यही कहने से कि तू ईश्वर का है, मन एक दिन उसका हो जाता है, और वह स्वाभाविक ही इस तरफ जाने लगता है । क्योंकि मन में यह शक्ति है कि इसको जिस तरफ लगाओ वह लग जाता है । मन के लगने से इन्द्रियां भी उसी तरफ लग जाती है । उपनिषद् कहती है—

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा । तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः । (कठो० ३–६) ॥

जब मन यह समझने लग जाता है कि वह ईश्वर का है, तो वाह्य पदार्थों के पीछे भागने से रुक जाता है, उनके पीछे भागने से ही वह मलीन होता है, मलीन मन पर ईश्वर प्रेम का रंग कैसे चढ़ सकता है। यह सत्य ही कहा है:—

"सूरदास! इस कारी कमरिया पर चढ़त न दूजो रंग

मलीन मन पर ईश्वर प्रेम का रंग नहीं चढ़ता, परन्तु जब वह उधर से हट जाता है, तो इसमें एक प्रकार की ज्योति पैदा होती है, एक प्रकार की लहर उत्पन्न होती है। इस अवस्था में मन अपनी चंचलता को छोड़ देता है, और तमाम इन्द्रियां भी उसके आधीन हो जाती हैं, वह एक सधे हुए घोड़े की तरह हो जाता है। जहां चंचल अवस्था में वह नाना प्रकार की कल्लोल करके, नाना प्रकार के नाच नाच कर, इन्द्रियों को भी खराब रास्ते पर ले जाता था और शरीररूपी गाड़ी को दुलत्ते मार २ कर तोड़ रहा था वहां अब उनके वश में हो जाने से केवल यही नहीं कि इन्द्रियां ही वश में हो जाती हैं बल्कि उसके साथ शरीर भी सुरक्षित हो जाता है, इसकी बुद्धि उज्ज्वल होने लगती है, उसमें स्वयं ही एक प्रकार का प्रकाश होने लगता है। उपनिषद् कहती है—

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥ (कठो० ३।९)

चंचल मन के काबू होने से बुद्धि उज्ज्वल होती है, और वह विज्ञानरूपी लगाम से मन को ईश्वर की तरफ़ ले जाती है, यहां तक कि मन में ईश्वर प्रेम की तरंगें उठने लगती हैं और वह इसके प्रेम में मग्न हो जाता है। ईश्वर प्रेम के ही द्वारा वह परम पद को प्राप्त होता है। परन्तु जब तक मन स्थिर नहीं होता, जब तक मन ईश्वर के समर्पण नहीं किया जाता, तब तक वह इधर उधर ही भटकता रहता है। मन से बढ़कर कोई भी अवारागर्द नहीं है। सोते जागते चलते फिरते, यह अवारागर्दी करता रहता है, खाते वक्त मुंह हिल रहा है। हाथ हिल रहे हैं, दांत काम कर रहे हैं, जिह्वा काम कर रही है, परन्तु मन किसी और ही जगह की सैर कर रहा है। किताब सामने रक्खी है, आंखें अक्षरों को देख रही हैं, किताब पढ़ी जा रही है, परन्तु मन किसी और जगह की ही सैर करने में लगा होता है परन्तु अपनी इच्छा शक्ति पर ज़ोर देकर, उसी मन को रात को सोते समय कह दो कि आज तीन बजे जागना है। सम्भव है कि पहले दिन वह तीन बजे न जाग सके परन्तु दूसरे दिन दृढ़ता से कह दो कि आज ३ बजे अवश्य ही जागना है, आप देखेंगे कि वही अवारागर्द मन जो दिन भर इधर उधर भटकता रहा था, किस प्रकार आपकी आज्ञा को पालन करता है। ठीक तीन बजे के करीब वह आपको जगा देगा, आपकी आंख खुल

जायगी। अगर आपमें से इस बात का किसीने अनुभव न किया हो, तो वह कर सकता है। तात्पर्य्य यह है कि मन जहां चंचल है, वहां वह आज्ञाकारी भी है आप इसको जिस तरफ़ लगाना चाहें, लगा सकते हैं।

जैसा रात को सोते समय आप इसको कह देते हैं, कि इतने बजे जागना होगा, वह ठीक उसी वक्त आपको जगा देता है, हालांकि न आपके पास आवाज़ देने वाला कोई नौकर है, न अलार्मवाली घड़ी, न कोई दूसरा जगानेवाला है। यदि उसी मनको कहा जाय, कि तुझे ईश्वर के समर्पण कर दिया गया तो जब वह एक हालत में तुम्हारी आज्ञाको पालन करता है, तो दूसरी हालत में क्यों नहीं करेगा? अवश्य ही करेगा। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि इसको बार २ कहा जाय कि तुझे दे दिया, तुझे दे दिया, तुझे ईश्वर के समर्पण कर दिया, सम्भव है कि आप यहां पर यह शंका करें कि रात के समय जो हममें जागनेवाली शक्ति है वह मन नहीं है, बल्कि सबका (Conscience) है। परन्तु ऐसा नहीं है। जिसको सबका (Conscience) कहा जाता है वह मन से कोई पृथक् वस्तु नहीं है। यह मन ही है जो जागते समय भी जागता रहता है और सोते समय भी जागता रहता है। वेद भगवान् कहता हैः—

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।

दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु ॥ (यजु० अ० ३४-१) ॥

मन जागते समय तो दूर २ भागता ही रहता है परन्तु सोते समय वह इससे भी दूर २ जाता है। मन ही आत्मा में दीपक है। यदि मन के संकल्प विकल्प शुद्ध हैं, मन परमात्मा के आधीन हो गया है, मन में ईश्वर प्रेम की लहर उठ रही है, तो इस दीपक में ईश्वर प्रेम की ज्योति स्वयं ही देदीप्यमान होजाती है। वेद में बार २ परमात्मा से यही प्रार्थना की गई है। कि परमात्मा ! मेरे मन को शुद्ध करो, इसमें शुद्ध संकल्प उत्पन्न हों। यदि मन शुद्ध होगया है, मन परमात्मा के समर्पण होगया है तो इसमें हर समय उसी का ख्याल पैदा होगा, उसी के प्रेम का जलवा होगा मन उसी तरफ़ भागेगा, यहां तक कि सोते समय भी मन ईश्वर की भक्ति में ही मग्न रहेगा, क्योंकि यह स्वाभाविक है कि मन जिस चीज़ या जिन चीज़ों का अधिक चिन्तन करता रहता है, जिन चीज़ों का ख्याल जागते समय उसको घेरे रहता है, वही चीज़ें और वही ख्यालात सोते समय भी इसको आ दबाते हैं। यदि जागते समय मन की अवस्था ठीक हो वह ईश्वर प्रेम में मग्न रहता हो तो इसके लिये सम्भव नहीं कि वह सोते समय इधर उधर चलायमान हो सके। इस प्रकार जब मन ईश्वर के समर्पण हो जाता है तो वह भक्ति के रंग में रंगा जाता है।

इसमें एक नया जीवन उत्पन्न होता है, इसमें नया तेज और बल उत्पन्न होता है इसकी कमज़ोरी दूर होने लगती है। जो मन पहले ज़रा २ से प्रलाभनों मे फंस कर गिर जाता था, अब ईश्वर के समर्पण होने से वह ऐसा बल प्राप्त करता है कि कोई भी प्रलोभन इसको गिरा नहीं सकता, उसकी सोई हुई ताक़तें जागने लगती हैं, ईश्वरप्रेम के गुप्तभेद उसपर खुलने लगते हैं और वह अनेक वार ऐसे दृश्य देखता है कि जिनको देख कर वह प्रभु के प्रेम में नाचने लग जाता है, मस्त हो जाता है, अपनी हस्ती को भूल जाता है, सब तरफ़ उसीका जलवा देखता है। मन की यह अवस्था आदरणीय है। इस को शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। एक ईश्वरभक्त ने मन की उसी अवस्था के विषय में कहा है।

"मरहम हो सो जाने साधो ऐसा लोक हमारा।
विना बादरी बूंदें बरसें विन सूरज उजियारा" ॥

ईश्वरप्रेम के राज्य में बादल और सूर्य्य का क्या दख़ल हो सकता है। उपनिषद् कहती है:—

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं बिभाति ॥

(कठो० ५। १५)।

यह बाहर का सूर्य्य अपनी ज्योति से बाहर की

चीजों को ज्योतिर्मय कर सकता है, किन्तु वह आत्मा में इस ज्योति का प्रकाश नहीं कर सकता, जो कि ईश्वरीय ज्योति है। चन्द्रमा अपनी शीतल चांदनी से वनस्पति को रस दे सकता है, हमारे शरीरों में तेज और शान्ति उत्पन्न कर सकता है, परन्तु चन्द्रमा अपनी सारी शीतलता के साथ परमात्मा से वेमुख हो कर तड़फने वाले आत्मा को कदापि शान्ति नहीं दे सकता। चन्द्रमा की ज्योति अमावस की रात के अंधेरे को दूर कर सकती है, परन्तु वह आत्मा के अंधेरे को दूर नहीं कर सकती। यह अंधेरी रात चमकने वाले सितारे बहुत से अंधेरे को दूर कर सकते हैं, बहुत से भूले भटके पथिक रात्रिके समय इन सितारों की सहायता से अपना रास्ता पा सकते हैं अथवा समुद्रों में सफ़र करने वाले जहाज़ ध्रुव तारों की सहायता से अपनी यात्रा निर्विघ्न रूप से पूरी कर सकते हैं परन्तु जो आत्मा संसार के भवसागर में डूब रहा है और ग़ोते खा रहा है, वह इन सितारों का सहायता से इस भवसागर से पार नहीं हो सकता। उसके जीवन के जहाज को यह सितारे किनारे पर नहीं लगा सकते। यह विद्युत अर्थात् बिजली नाना प्रकार से मनुष्य के लिये लाभदायक हो सकती है बड़े २ कारख़ाने इसके ज़रिये चलाये जा सकते हैं, अमावस की अंधेरी रात के अंधेरे को बिजली का लैम्प दूर कर सकता है परन्तु आत्मा के अंधेरे को यह बिजली

की शक्ति भी दूर नहीं कर सकती । अग्नि हमारे लिये कितनी ही लाभदायक क्यों न हो, अग्नि हमारी शारीरिक रक्षा के लिये एकमात्र बड़ा भारी सहारा है, यदि अग्नि न हो तो हमारा शरीर स्थिर नहीं रह सकता, यह अग्नि या ताप ही है जो हमारे शरीर को स्थिर रक्खे हुए है इस उष्णता के कम होने से हमारा शरीर दुर्बल होने लगता है। इसी अग्नि के अधिक हो जाने से हम रोगी हो जाते हैं, अग्नि हमारे शारीरिक जीवन की रक्षक है परन्तु जिस आत्मा में ईश्वरप्रेम की अग्नि नहीं जल रही वह मुर्दा है, इस मुर्दा आत्मा में यह शारीरिक अग्नि भी कोई तेज नहीं उत्पन्न कर सकती । ईश्वर ही आत्मा का सूर्य्य है । ईश्वर ही आत्मा का चन्द्रमा है। ईश्वर ही आत्मा के लिये ध्रुव तारा के सदृश है। ईश्वरप्रेम ही आत्मा के लिये विद्युत है। ईश्वरप्रेम ही आत्मा की अग्नि है, यह बाहर का सूर्य्य बाहर का चन्द्रमा बाहर के सितारे बिजुली और आग ईश्वर का प्रकाश नहीं दे सकते। यह प्रकाशमान होते हुए भी इसके प्रकाश के सामने प्रकाशहीन हैं। परन्तु जब मन ही परमात्मा के समर्पण कर दिया जाता है, अन्दर के किवाड़ खुल जाते हैं । पर्दे दूर हो जाते हैं । ईश्वरप्रेम का उदय होता है और फिर क्या होता है:—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्य्य, प्राजापत्य व्यूह। रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं—इत्यादि ॥

आत्मा के अन्दर इसीकी ज्योति का प्रकाश हो जाता है। चारों तरफ़ इसी का प्रकाश नज़र आता है। जड़ और चेतन में उसी का दृश्य नज़र आता है। ईश्वरप्रेम की तरङ्गें आत्मा के भीतर उठने लगती हैं। ईश्वरभक्ति का रङ्ग चढ़ने लगता है, मन इस रङ्ग से रङ्गा जाकर ईश्वरप्रेम में डूब जाता है, और वह एक मतवाले पुरुष की न्याई इस प्रभु के प्रेम में मस्त होकर गाता फिरता हैः—

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ॥ (कठो० ३।१) ॥

जैसे बाहर की गरमी से दग्ध हुआ २ मनुष्य शीतल जल को पीता और शान्ति प्राप्त करता है, इसी प्रकार इस संसार की दग्ध कर देने वाली अशान्ति इत्यादि हृदय दाहक अग्नि से जला हुआ आत्मा ईश्वरप्रेम के रस को पीता है। जिस क़दर यह इस प्रेम रस को पीता जाता है उसी क़दर यह अमर होता जाता है यहां तक कि वह इस शरीर में रहता हुआ ही जीवनमुक्त हो जाता है, अब उसके लिये ज़रूरत नहीं रहती कि वह सांसारिक भोगों में रस तलाश करे। सांसारिक भोगों के सम्पूर्ण रस उस ईश्वर के प्रेम रस के सामने फीके हो जाते हैं अब उसको आवश्यकता नहीं रहती कि वह मरने के पश्चात् किसी स्वर्ग की तलाश करे क्योंकि वह जीते जी इसी शरीर में रहता हुआ परमात्मा के प्रेम में डूबा हुआ

स्वर्ग में निवास कर रहा है। स्वर्ग क्या है? वह भोगों की जगह नहीं है। भोग रोग लाते हैं किन्तु ईश्वरप्रेम ही स्वर्ग है। उपनिषद् कहता है:—

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ (कठो० १।१२)॥

जिस अवस्था का नाम स्वर्ग की अवस्था है वह क्या है, वह अभय पद की प्राप्ति है। जब मन ही ईश्वरप्रेम में डूब गया तो फिर डर किसका रहा। मन ही तो था, अब जब कि मन परमात्मा के प्रेम में मग्न है, तो भय का लाने वाला कौन और भय किस का, फिर वह स्वर्ग क्या है? श्रुति कहती है कि वह ऐसी अवस्था है जहां मृत्यु का दखल नहीं है। जब आत्मा ईश्वरप्रेम में डूब गया जब आत्मारूपी नदी परमात्मरूपी समुद्र में मिल गई तो फिर उसका सड़ने गलने का क्या डर। जब तक पानी एक छप्पड़ में बन्द रहता है तब तक उसके सड़ने और शुष्क हो जाने का भय रहता है, किन्तु जब उसका मुख समुद्र के साथ मिल गया अथवा उसमें शुद्ध वा पवित्र जल की धारा बहने लग गई तो फिर इसके जलने सड़ने या खुश्क होने का क्या ख़तरा रहा। जब तक आत्मा एक बिन्दु की न्याई संसार को दग्ध कर देने वाली शिला पर गिरता रहता है वह ईश्वरप्रेम से

शून्य रहता है । किन्तु जब परमात्मारूपी समुद्र में गिर गया तो फिर इसके लिये खुश्क होने का क्या भय, वह तो स्वर्ग में पहुंच गया, अमर हो गया । स्वर्ग क्या है ? उपनिषद् कहता है कि इसमें तरोताज़गी है, मुरझाना या सूखना या बूढ़ा होना नहीं है । ईश्वरप्रेम क्या है । यही तो स्वर्ग है, ईश्वरप्रेम कभी बूढ़ा नहीं होता, इसको जिस क़दर बढ़ाते जाओगे उसी क़दर अधिक आनन्द आता है । जिस क़दर आत्मा ईश्वरप्रेम में डूब जाता है उसी क़दर वह दुनियां की भूख प्यास से ऊपर होता जाता है । दुनियां के पदार्थ, संसार के भोग इसके लिये रसहीन होते जाते हैं । जिस क़दर वह ईश्वरप्रेम में बढ़ता जाता है उसी क़दर वह दुःख से मुक्ति पा जाता है । उपनिषद् कहते हैं कि आत्मा की इसी अवस्था का नाम स्वर्ग है इसी का नाम बहिश्त है, यह स्वर्ग आत्मा के अन्दर मौजूद है और उसकी चाबी मन के समर्पण करने में है । मन को आत्मा के समर्पण कर दो इस स्वर्ग का दरवाज़ा खुल जायगा । जब तक मनको परमात्मा के समर्पण नहीं किया जाता है तब तक तन और धन के समर्पण करने से कुछ भी नहीं बनता । कितने ही मनुष्य हैं जो अपनी इन्द्रियों को स्वयं ही कठिन साधनों द्वारा निर-इन्द्रिय कर देते हैं कितने ही मनुष्य हैं जो अपने सर्वस्व धन का स्वाहा कर देते हैं, दान कर देते हैं अथवा जुए में हरा देते हैं परन्तु

क्योंकि उनका मन ईश्वर के समर्पण नहीं होता इस लिये तन और धन की कुर्बानी कर के भी वह ईश्वरप्रेम से वंचित रहते हैं। यदि मन की कुर्बानी हो जाए मन को परमात्मा के समर्पण कर दिया जाय तो फिर सब प्रकार की कुर्बानियां सफल हो जाती हैं, और मनुष्य जीते जी ईश्वरभक्ति में रंगा जा कर जीवनमुक्त हो जाता है।

ईश्वरोपासना।

जब तन मन और धन तीनों ही परमात्मा के अर्पण हो गये तब वह अवस्था आती है जब कि मनुष्य एक शिष्य भाव से परम गुरु परमात्मा के निकट होकर उससे याचना करता है कि हे गुरु! मेरा कुछ भी नहीं है और मैं कुछ भी नहीं हूं, जो कुछ है तू ही है। हे परमात्मन्! मेरी विद्या मेरी बुद्धि तुच्छ है, मेरा बल कुछ भी नहीं है। हे ज्ञान के भण्डार! तुम अपने ज्ञान से मेरे आत्मा को उज्ज्वल करो। इस प्रकार जब एक खाली और शुद्ध मन-से परमात्मा की उपासना की जाती है तो इसका अवश्य ही फल मिलता है। परन्तु शर्त यही है कि परमात्मा के पास मनुष्य शिष्यभाव से जाय। क्योंकि जो अपने आप को पहले ही भरा हुआ समझता है उसमें दूसरी वस्तु कहां से समा सकती है जो अपने आप को पहिले ही ज्ञान से भरपूर देखता है उसको ईश्वरीयज्ञान कहां से प्राप्त हो

सकता है। परमात्मा के दरबार में एक कोरी चादर की न्याई जाने की आवश्यकता है ताकि इस पर ईश्वरभक्ति का रङ्ग चढ़ सके। जिसका मन अशुद्ध है जिस पर दुनियां के रङ्ग चढ़े हुए हैं उसपर ईश्वरभक्ति और ईश्वरप्रेम का रङ्ग कैसे चढ़ सकता है। उपनिषद् कहते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥ (कठो० २।२२) ॥

ईश्वर प्राप्ति का साधन क्या है? अर्थात् हम ईश्वर को कैसे प्राप्त कर सकते हैं? श्रुति कहती है कि यदि हम चाहें कि इसके बारे में केवल सुनने मात्र से ही हम इस को हासिल कर सकते हैं तो ऐसा नहीं है। अगर हमको हमारी बुद्धि का भरोसा है कि हम बुद्धि के बल से परमात्मा को प्राप्त कर सकते हैं तो ऐसा भी नहीं हो सकता। तर्क वितर्क से भी हम उसके दर्शन नहीं कर सकते। उस के दर्शन करने का एक साधन है और वह है उस की उपासना। जैसे कि मैंने पहले कहा है कि ईश्वर के पास एक शिष्यरूप में जाना चाहिये। अपनी विद्या बुद्धि आदि पर कोई भरोसा नहीं करना चाहिये। बल्कि नम्र भाव से हम परमात्मा के दरबार में प्रार्थना करें ताकि उसकी हम पर कृपा हो और वह हमें अपने दर्शन का अभिलाषी

समझे क्योंकि परमात्मा की ही कृपा से हम उसके दर्शन कर सकते हैं। जब हमारा तन मन और धन सब ही कुछ उसके अर्पण हो गया तो निःसन्देह वह हम पर अपना आशीर्वाद करते हैं और उनकी भक्ति और प्रेम का रङ्ग हमारे ऊपर चढ़ने लगता है यहां तक कि हम उस रङ्ग में रङ्गे जाते हैं।

परा और अपरा भक्ति।

जिस भक्ति का जिक्र किया गया है वह दो प्रकार की है। एक परा भक्ति और दूसरी अपरा भक्ति। परा भक्ति केवल परमात्माके लिये है और अपरा भक्ति परमात्मा की प्राप्ति के लिये सांसारिक पदार्थों की भक्ति है। अपरा भक्ति भी दो प्रकार की है—प्रथम मनुष्य के चेतन सम्बन्धों के लिये भक्ति, दूसरे जड़ पदार्थों के लिये भक्ति। चेतन सम्बन्धों के लिये भक्ति क्या है? वह यह है कि माता पिता के साथ हमारा प्रेम हो, उनके लिये हमारे दिल में आदर हो, हम उनकी सेवा करें, उनकी आज्ञा पालन करें, उनको आनन्दित रक्खें। इसी तरह सन्तान के लिये हमारे दिल में प्रेम हो, हम उनकी अच्छी तरह पालना करें। भाइयों के लिये हमारे दिल में प्रेम और भक्ति हो। पति के दिल में स्त्री के लिये और स्त्री के मन में पति के लिये प्रेम और भक्ति हो। दोनों परस्पर प्रेम और प्रीति से रहें, एक दूसरे का आदर सत्कार करें, एक दूसरे का मान करें, गृहस्थ के

कामों का प्रीतिपूर्वक निर्वाह है। इसी तरह सेवक के दिल में स्वामी के लिये प्रेम और भक्ति हो, स्वामी के मन में सेवक के लिये प्रेम और भक्ति हो, इस भक्ति का घेरा खुला होता जाय। राजा के लिये भक्ति हो देश के लिये भक्ति हो, देश भाइयों के लिये भक्ति हो मनुष्यों से गुज़र कर पशुओं के लिये हमारे मन में प्रेम हो, दूसरे सांसारिक पदार्थों के लिये हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि हमारी कीर्ति फैले, हमारा यश बढ़े, हमारा तेज अधिक हो, हम ब्रह्मतेज को प्राप्त करें, हमारी भुजा में बल आए, हमारे पशु अधिक हों, हमारा भवन सुन्दर हो, साफ हो क्योंकि जब तक हमारे आस पास के यह तमाम सामान और सारे सम्बन्ध ठीक नहीं होते तब तक हम परमात्मा की भक्ति में कैसे मन लगा सकते हैं। यदि गृह साफ हो, सुथरा हो, उसका वायु अच्छी हो, एकान्त हो, किसी प्रकार का शोर शराबा न हो तो वहां ईश्वर का ध्यान करने से स्वयमेव आनन्द आता है।

यदि मकान मैला है, एक ओर गोबर पड़ा है, दूसरी तरफ़ कोई खराब चीज़ पड़ी है, शोर गुल हो रहा है तो वहां ईश्वर का ध्यान कैसे हो सकता है और क्योंकर हो सकता है इसी प्रकार यदि हमारे सम्बन्ध ठीक नहीं हैं घरमें लड़ाई दङ्गा रहता है, बाहर वालों के साथ लड़ाई है, झगड़े हैं, इधर बच्चे रो रहे हैं, उधर स्त्री नाराज़ है,

वहां पर हम ईश्वर का ध्यान कैसे कर सकते हैं ? शास्त्र बताते हैं कि मनुष्य जिस क़िसम की हालत में रहता है, उसी प्रकार का उस पर रङ्ग चढ़ता जाता है। यदि उसके आस पास शान्ति है, प्रेम और भक्ति का समुद्र मौज़ मार रहा है तो वह स्वयं शांत रहता है। यदि ऐसा नहीं है तो वह लाख यत्न कर के भी ईश्वर को प्राप्त नहीं हो सकता। मैंने कहा है कि भक्ति दो प्रकार की है—परा भक्ति अर्थात् मनुष्य का ईश्वर के साथ सम्बन्ध और दूसरे मनुष्य का इर्दगिर्द के पदार्थों या अन्य जीवों के साथ सम्बन्ध। यदि यह दोनों प्रकार की भक्ति हममें आजाय, तो फिर जीते जी मुक्ति का आनन्द पा सकते हैं, हमारे सारे क्लेश दूर हो सकते हैं, आत्मा के ऊपर से अज्ञानता के तमाम पर्दे दूर हो सकते हैं, ईश्वर का दर्शन साक्षात् हो जाता है। उपनिषद् कहता है:—

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये" ॥१५॥ (ई०उ०)

जब तक केवल संसार और सांसारिक पदार्थों की भक्ति, सांसारिक पदार्थों की चमक दमक आत्मा को दबाये रखती है तब तक वह परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकता। मगर जब उसके ऊपर से यह पर्दे दूर हो जाते हैं तब उसको सत्य का पता लगता है, उसको मालूम हो जाता है कि इसका धर्म्म क्या है इसका कर्तव्य

क्या है, वह ईश्वरभक्ति को ईश्वरप्रेम को ही अपने जीवन का धर्म समझता है। ईश्वरप्रेम की तरंगें उसके अन्दर उठने लगती हैं, इर्षा और द्वेष के बादल उसके अन्दर से छिन्न भिन्न हो जाते हैं वह सबको मित्र की दृष्टि से देखने लगता है, उसके लिये न कोई मित्र रहता है न शत्रु। मनुष्य स्वयं ही ईश्वरभक्त की ओर खिंचने शुरू हो जाते हैं, ऐसे ही ईश्वर भक्त का जीवन संसार के लिये कल्यणकारी हुआ करता है और ऐसे ही ईश्वरभक्त जो रात दिन परमात्मा की भक्ति और प्रेम में मग्न रहते हैं, जीवन्मुक्त होते हैं। ईश्वरभक्ति या ईश्वर प्रेम अथवा भक्तियोग का यही परिणाम है, कि वह आत्मा का परमात्मा के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ कर इसको जीते जी मुक्ति तक पहुंचा देते हैं। इस जीवन मुक्ति को प्राप्त करना ही भक्तियोग है। परमात्मा हमपर आशीर्वाद करें कि हमपर उनकी भक्ति का अधिक से अधिक रंग चढ़ सके, हमारे हृदय में उनके लिये प्रेम उत्पन्न हो और हम अपने मनको तनको धनको और सारे जीवन को उनके समर्पण कर सकें।

ओं शान्तिः ३ ॥

—:०:—

३—कर्म्मयोग।

ईश्वर प्रार्थना।

हे परमेश्वर! आप सोम हैं, सबसे प्रिय हैं, इस संसार में जितनी वस्तुएं आकर्षण करने वाली हैं, उन सबका केन्द्र आप ही हैं, आप सदैव रहने वाले हमारे स्वामी हैं, इस प्रकार आपका मंगलमय हाथ हम पर रहता है परमात्मन्! आप भद्र हैं, आपकी शरण में जो पुरुष आते हैं, उनका कल्याण होता है, आप ही इस संसार के यज्ञेश्वर हैं। केवल आप ही धर्म्म की शिक्षा देने वाले हैं, इस संसार में जहां कि हमारे कानों को कठोर अथवा कठिन शब्द बिगाड़ते हैं, जहां हमारे हृदय को कठोर वाणियां दग्ध करती हैं, केवल आपकी ही वाणी है, जिससे शांति प्राप्त होती है, इस लिये हे देव! आप हमें अपना मंगलमय उपदेश दो, हमें इस संसार में अच्छा और श्रेष्ठ उपदेश दो जिससे हम सब का भला हो। इस प्रकार से संसार की सुख सम्पत्ति के स्वामी! आप हमें सम्पत्ति दो, ताकि आप के मार्ग पर चलकर हम हीन दीन और क्षीण अवस्था में न रहें और हमारी अवस्था उच्च हो।

प्रभु! यदि आप की इच्छा और सहायता हमारी सहकारी न हो तो हमें कभी भी हमारे कामों में सफलता न होगी। इस लिये हम निश्चयपूर्वक इस बात को जानते

हैं कि मानसिक, आत्मिक और सारे के सारे सुख आप ही से प्राप्त होते हैं, आप सुख के सागर हैं, आप सुख की एकमात्र खान हैं। इस लिये हे भगवन्! हम आपकी वन्दना और याचना करते हैं, आपको नमस्कार करते हैं, कि हे हमारे आत्मा की ज्योति! आप हमारे आत्मा को प्रकाशमान करें हमें अच्छा उपदेश दें, जिससे हमारा लाभ हो, हमें सुख प्राप्त हो और और धर्म्म के मार्ग से हमारा क़दम ज़रा भी न डगमगाये। भगवन्! यही प्रार्थना है, स्वीकार कीजिये।

कर्मयोग की महिमा।

कर्मयोग एक ऐसा सहल विषय है, जिसमें सम्भव है कि मैं आपके सामने कोई नई बात न रख सकूं। और मुमकिन है कि आपको यह विषय खुश्क दिखाई दे, क्योंकि कर्मयोग एक ऐसी बात है जो कि नित्य की जाती है, हमारे प्रतिदिन के कर्तव्य कर्मयोग में शामिल हैं। यज्ञों की क्रियाएं कर्मयोग हैं, हमारे शास्त्र बतलाते हैं कि जो यजमान है, जो यज्ञ करता है, वह स्वर्गलोक में जाता है, ऐसा स्वर्गलोक जहां दुःख का नामोनिशान भी दिखाई नहीं देता। हमारे यहां यज्ञशील और कर्मशील होने की बड़ी महिमा गाई गई है जो कोई इस संसार में धर्म्मानुकूल अपने कर्तव्य का पालन कर रहा है, वह एक यज्ञ कर रहा है, इस लिये वह यजमान है। यजमान

का दर्जा स्वर्ग से ऊंचा है, उसके आनन्द की सीमा नहीं, उसकी लड़की के हाथों में कङ्गण पड़ जांय, लड़के की अंगुलियों में मुन्द्रियां पहिना दी जांय, हज़ारों और लाखों की दौलत दी जाय उससे कोई आनन्द नहीं आता उस आनन्द की तुलना में जो उसे कर्तव्य के पालन में आता है।

हमारे शास्त्रों में निष्काम यज्ञ की प्रशंसा की गई है। बतलाया गया है कि देवताओं को पुष्ट करना चाहिये, हवन आदि यज्ञों से देवता पुष्ट होते हैं, निष्काम कर्मों से देवता प्रसन्न होते हैं। क्या हवन आदि यज्ञों में कुछ कम निष्कामता है? इसी तरह एक पुरुष दान देता है, और अपने लहु पसीना को एक करके पैदा की हुई कमाई में से धन बांट देता है। एक दश रुपया मासिक का नौकर इतनी थोड़ी आमदनी में से अपने सारे परिवार का गुजारा करता है, यह भी एक यज्ञ है, जिसमें वह यजमान का कर्तव्य पालन करता है। यजमान की प्रत्येक चीज संसार के लिये है, यजमान का प्रत्येक काम निष्कामभाव से होना चाहिये, इसी लिये वेद कहता है कि यजमान वह है जो स्वर्ग से ऊंचा रहता है और देवताओं को प्राप्त होता है। वेद बतलाता है कि ऐसे यजमान के लिये ऊपरसे घृत की आहुति होती है, नदियां ऐसे के खेतों को हरा भरा और तरोताजा करती हैं, वर्षा का पानी इसके खेतों और बागों को पुष्टि देता है, ठंडी और

शीत हवायें इसकी जिन्दगी का सहारा होती हैं, सांसारिक श्रम उसके आगे सिर झुकाता है, परमात्मा की तरफ़ से यजमान के लिये यह सांसारिक सुखों की दक्षिणा है।

वेद बारबार बतलाता है कि यजमान होना, कर्मकांडी बनना, कर्मयोगी होना बड़ा ही उत्तम है, यज़मान को इस लोक और परलोक में सदैव ही सुख मिलता है।

आर्य्यसमाज में जो स्त्रियें शामिल हैं, उनको भी यह वेद मन्त्र याद होगा कि "कुर्व्वन्नेव कर्माणि" इत्यादि इस मन्त्र में कर्म्मों को करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा की गई है। परमात्मा उपदेश करते हैं कि अगर किसी मनुष्य को जीने की इच्छा है तो वह कभी भी परोपकार से शून्य हो कर जिन्दगी बसर न करे उसका सारा जीवन धर्म्म परोपकार और पुरुषार्थ करते हुये व्यतीत हो। चारपाई पर बैठ कर ही जीवन व्यतीत न करदे। हर वक्त बेकार ब्राह्मणों की तरह मुंह से मक्खियां ही न उड़ाता रहे, प्रत्युत धार्म्मिक कामों में ऐसा फंसा हो कि उसे एक पल की भी फ़ुरसत न मिले, मगर सांसारिक झगड़ों में कदापि लिपटा हो। संसारी विषयभोग में बिल्कुल ही न फंस जावे। इसी लिये वेद में परमात्मा कहते हैं:—

हे मनुष्य! तेरी सफ़ेद चादर पर कभी धब्बा न लगे, तू हमेशा कर्म करता रहे, कहीं तुझे लपेट न लगेगा' इस उपदेश की व्याख्या करते हुए दृष्टान्त दिया गया है कि

जिस तरह कमल का फूल कीचड़ और पानी में उगता और रहता है मगर इसपर कीचड़ और पानी का लेप नहीं लगता बल्कि वह हमेशा ऐसा साफ और मनमोहन बना रहता है कि उसको देख कर प्रत्येक का दिल लुभायमान हो जाता है, इसी प्रकार वेद में शिक्षा दी है कि मनुष्य कर्मों को करता हुआ पापों से बचा रहे।

कर्मयोग क्या है ?

कर्मयोग शब्द का किसी विशेष क्रिया या कर्म पर प्रयोग नहीं होता, बल्कि सब नैत्तिक और नैमित्तिक कर्म यज्ञ और अन्य सब कर्त्तव्य कर्म्मयोग के सम्बन्ध में आते हैं। पूर्ण रीति से कर्त्तव्य का पालन करना कर्मयोग है, जैसे मनुष्य का प्रथम कर्त्तव्य है कि प्रातःकाल उठकर सन्ध्या करे, चाहे वह १० मिनट में सन्ध्या क्यों न समाप्त करता हो, किन्तु उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सन्ध्या के समय चाहे कैसा ही जरूरी से जरूरी काम क्यों न हो सन्ध्या को परित्याग न करे। मगर हम इस बात की जरा भी परवाह नहीं करते। यदि मित्र आगये और इधर सन्ध्या का समय होगया तो हम इस समय मित्रों से पृथक् होना कभी पसन्द न करेंगे, और उनके आने को गनीमत समझ कर सन्ध्या का पवित्र समय गपशप में गंवा देंगे, इसका नाम कर्मयोग नहीं है।

इसी तरह कोई मनुष्य सत्संग करता है। वह इस समय को किसी भी हालत में न गंवावे चाहे कैसी ज़ोर से बारिश हो रही हो, कैसी आंधी चल रही हो, किन्तु सत्संगी पुरुष भीगता हुआ समाजमन्दिर आरहा है, यह है कर्मयोग की भावना। ऐसे दृढ़ श्रद्धालु और सच्ची भक्ति के मनुष्य कर्मयोग की महिमा को समझ सकते है किन्तु वह मनुष्य कदापि कर्मयोग की फिलौसफी को नहीं समझ सकता जो मामूली मित्रों के सिर पर से अपने पवित्र कर्मों को कुर्बान कर देता है।

इस में सन्देह नहीं कि यह बातें आपको साधारण मालूम देंगी किन्तु यही बातें हैं जिनपर अमल करने से मनुष्य अपने जीवन को सफल कर सकता है। मैं आपको एक दृष्टान्त देता हूं, कि किस तरह इन साधारण बातों पर अमल करने से जीवन की काया पलट सकती है।

तीन अनुकरणीय बातें।

हम प्रतिदिन संध्या करते हैं, मगर हमने कभी उसके असली उद्देश्य पर विचार नहीं किया; ऐसी उदासीनता में एक मामूली बात का भी क्या फ़ायदा हो सकता है, संध्या करते समय हरेक मनुष्य को इन दो तीन बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

(१) मनुष्य ! तू अपने किये को याद रख। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्म्मों को याद रखना चाहिये,

क्योंकि कर्म ही हैं जो किसी मनुष्य को पार उतार सकते हैं। शुभ कर्म ही मनुष्य के वास्तविक तोशा हो सकते हैं, जिनके आश्रय पर उसको अपनी यात्रा को पूरा करना है, जब तक मनुष्य के पास धन दौलत है, सब उसके साथी हैं। किसी कवि ने क्या अच्छा कहा है—

बर पकियां दे अंग संग सारे।
कोई भुक्खयां दा नहीं यार बनदा॥

किन्तु जब मनुष्य अपने कुसंस्कारों के कारण धन मान को खो बैठता है, कोई मित्र या दोस्त उसका साथ नहीं देता। इसी भाव को लेकर एक महात्मा ने मनुष्यों को डांटा है, कि तू स्मरण करता है उन मनुष्यों को जो तेरी आत्मा को बिगाड़ते हैं। इस लिए पहली बात यह है कि हम अपने किए को याद करें।

हम हरेक दिन गुजरने पर अपने कर्मों की पड़ताल करें, हम विचार करें कि वह मनुष्य जो सड़क पर भूख से बिलबिला रहा था हमने उसके साथ क्या सहानुभूति की। अगर हमारी जेब में कुछ न था तो हमने अपनी वाणी की मधुरता से कहां तक उससे सहानुभूति प्रकट की और आंखों से किस दर्जे तक करुणा के अश्रुपात किए?

(२) हमने आज क्या २ पाप किए हैं, कितनी दफा मनुष्यों को दुःख दिया है।

(३) हमने क्या पुण्य किया है? कितने दुःखियों

को देख कर उनके लिए आंसू बहाये हैं, कितने भूखे और प्यासों को देख कर उनको शान्त किया है, पापियों को देख कर कितनी बार उनके लिए शुभकामना उत्पन्न हुई है। इसी प्रकार पुण्य और पाप की हर रोज तुलना करके पाप से बचने का प्राण किया जाय।

यही कर्मयोग का पहला गुरु मन्त्र है। इससे मनुष्य उन्नति के शिखर पर चढ़ सकता है। यद्यपि यह कोई गहरी फिलौसफी की बातें नहीं हैं, किन्तु वह मनुष्य जिसने क, ख नहीं सीखा, वह महर्षि कणाद की गहरी फिलौसफी को नहीं जान सकता। इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर लिखित बातें मोटी और क, ख की न्याईं हैं किन्तु विश्वास रक्खो कि इनमें सारी फिलौसफी बन्द है, यदि हमने मोटाई को नहीं समझा तो बारीकी कदापि हमारे अन्दर नहीं आ सकती।

बस, मैंने आपको इस वक्त तीन बातें बतलाई हैं।

(१) अपने कर्मों का चिन्तन करें।

(२) हमेशा अच्छे कर्म किए जाएं।

(३) पाप का त्याग किया जाए और पिछले के लिए प्रायश्चित्त किया जावे।

प्रायश्चित्त क्या है ?

जो पाप किया है, उनको देख कर पश्चात्ताप करना और भविष्यत् में उनसे बचने की प्रतिज्ञा करना प्राय-

श्चित है। प्रायश्चित का केवल यह अर्थ नहीं कि फ़ाक़ा करवा देना, सिर मुंडवा देना, प्रत्युत पाप से घृणा करना, और पिछले किये पर शोक करना ही सच्चा प्रायश्चित्त है। एक आदमी जो पाप करके पश्चात्ताप कर रहा है और अनुताप की अग्नि से अपने मन को जला रहा है, क्या यह उसके लिये कुछ कम दण्ड है। जो दुःख परमात्मा की ओर से मिलता है, सम्भव है कि उससे कुछ फ़ायदा न हो किन्तु जिस दुःख को हम स्वयं स्मरण कर २ के लाते हैं वह मन की मैल इस प्रकार धोकर साफ़ कर देगा, जिस प्रकार धोबी की भट्टी कपड़े से मैल को साफ़ कर देती है। पश्चात्ताप एक शक्ति है जिससे हमारे मानसिक कर्म्म शुद्ध हो जाते हैं। शास्त्र बतलाया है जिस तरह सोने की मैल स्वर्णकार भट्टी में चढ़ा कर उतार लेता है, इसी प्रकार हमारी मानसिक और आत्मिक मैल प्रायश्चित रूपी भट्टी में दग्ध हो कर हमारा आत्मा पवित्र और निर्मल हो जाता है। हमारे शास्त्र बतलाते हैं कि जैसा कोई कर्म्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है, जैसा कोई हाथ पांव हिलाता है, वैसा ही उसके आत्मा पर, उस पर असर पड़ता है। हमारे कर्मों का बहुत सा प्रतिबिम्ब हमारे आत्मा पर पड़ता है। जिस प्रकार श्वेत कपड़े को जिस रंग में रंगा जाय, वही रंग उसपर चढ़ जाता है, इसी प्रकार हम जिस क़िसम का काम करेंगे उसका

वैसा ही असर हमारे आत्मा पर होगा। पाप से आत्मा मलीन होगा, और पुण्य आत्मा को स्वच्छ और निर्मल बनावेगा।

पाप जब पहले छोटा होता है तो मालूम नहीं होता, किन्तु जब बड़ा होकर पर्वत सा बन जाता है तो फिर इससे सिर टूटता है, और मालूम होता है कि ओहो! हमने अच्छा कर्म क्यों नहीं किया ?।

हम स्वयं अपने प्रारब्ध को बनाते हैं।

प्रायः लोग रोया चिल्लाया करते हैं कि हमारी प्रारब्ध मे यह न था और वह न था, इसमें हमारा क्या दोष है। किन्तु मैं कहता हूं कि यह बात ठीक नहीं है हम स्वयं ही अपने प्रारब्ध को बिगाड़ने और बनाने वाले हैं। यदि हमारे कर्म्मों का मन्दिर साफ़ और सुथरा है तो जो कोई हमारे निकट आयेगा उसको भी आनन्द होगा, और हमें भी प्रसन्नता प्राप्त होगी किन्तु अगर कर्म्म अच्छे नहीं तो जो हमारे पास आयेगा, नाक मुँह चढ़ायगा। आप बतायें इसमें परमात्मा का क्या दोष है? क्या आप संसार में नहीं देखते कि जहां प्रतिदिन धर जा और मर जा की माला फिरती है, जहां सदैव ईर्ष्या की आग जलती है, वहां भस्म के अतिरिक्त और क्या रह सकता है। अतः अगर हमारे सारे कर्म्म अच्छे होंगे, तो हमारी किस्मत भी अच्छी होगी, हमारा दिल और दिमाग़ स्वच्छ और निर्मल रहेगा।

धर्म का तेज।

इसी प्रकार जो तस्वीर हो, वह अपने में पूरी हो। जैसे स्वामी दयानन्द की तस्वीर को देख कर हरेक आर्य्यसमाजी प्रसन्न होता है। कैसे वैराग्य की शान्त तस्वीर है! किन्तु जिनके मन में सदैव राग द्वेष रहता है, जिनका मन ईर्ष्या द्वेष की अग्नि से दग्ध रहता है, उनका मुख हर वक्त सुस्त और मुर्झाया रहता है। उनकी तस्वीर कभी पूर्ण नहीं हो सकती। आपने कई वार अनुभव किया होगा, कि धर्म्ममूर्ति भक्त को देख कर मन कैसा प्रसन्न होता है, किन्तु यदि उसी भक्त को एक साहिब बहादुर वाला टोप और पतलून पहिनाया जाय तो उनकी वह शोभा नहीं रहेगी, प्रत्युत इसके एक अंगरेज को टोप और पतलून शोभा देता है। एक हब्शी के शिर पर पगड़ी बुरी मालूम होती है किन्तु हम देशियों के लिये पगड़ी एक शोभा है। इसी प्रकार जो मनुष्य अपने कर्म्मों में पूरा है चाहे उसका शरीर कैसा भी भद्दा क्यों न हो, उसमें एक शक्ति होती है जिससे हरेक मनुष्य का दिल उससे मिलने को चाहता है। तो मैंने बतलाया कि रमणीय आचरण करने वाला मनुष्य उपकार का पुतला बन जाता है। जब वह बोलता है मानों पुष्पों की वर्षा होती है, जब उससे किसी की भेंट होती है तो दूसरे का चित्त प्रसन्न होता है; क्या यह कोई कम दर्जे की शक्ति है?

कर्मों का नाश नहीं हो सकता।

श्री कृष्णजी गीता में उपदेश देते हैं कि "जो मनुष्य कर्म करता हुआ अधूरा छोड़ जाता है उसका कर्म नष्ट नहीं होता और वह योगियों के घर जन्म लेता है"। महात्मा बुद्ध बतलाते हैं कि भगवान् के मार्ग पर एक भी पग उठाना मंगल और कल्याण का कारण है। जो बीज एक दफ़ा बोया गया वह कभी न कभी जरूर वृक्ष बन कर फल लायगा। इसी प्रकार एक और स्थान पर भी बतलाया है कि जो मनुष्य कर्म करता हुआ छोड़ कर चला जाता है वह योग भ्रष्ट (शुचि) कुल में पैदा होता है अर्थात् उसका जन्म ऐसे पवित्र योगियों के कुल में होता है जिसके नाम से दग्ध हृदयों को शांति प्राप्त होती है। मेरा मतलब उन योगियों से नहीं जो लड़के का जन्म होते ही उसके हाथ में ठीकरा देकर भिक्षा करने भेज देते हैं। इस तरह की शिक्षा को हमारे शास्त्रकार निन्दनीय बतलाते हैं। वे कहते हैं कि भूखा क्या २ पाप नहीं करता और वास्तव में यह है भी ठीक, जिसके पेट में रोटी नहीं, वह कर्मयोग क्या कर सकता है? इसी लिये एक कवि परमात्मा को मुख़ातिब कर के कहता है। हे प्रभु! आपने जिह्वा दी है इससे हम आप की स्तुति करते हैं, हाथ दिये है उनको परोपकार में लगाते हैं, पांव दिये है उनसे चल कर हरिकीर्त्तन में जाते

हैं, परंतु "पेट दियो पर पाप लगायो" एक पेट है जो पाप की तरफ़ ले जाता है। इस संसार में भूखे और निर्बल का कोई ठिकाना नहीं। वह कमज़ोर और दुर्बल पुरुष जो एक धक्के से तीन बल खाता है धर्म्म क्या कर सकता है? उसके शब्द में बल और शक्ति नहीं हो सकती, आत्म सन्मान का भाव उसमें रह नहीं सकता, उसकी हर एक बात से खुशामद और चापलूसी की बू आयगी, वह अपनी रक्षा के लिये कई तरह से झूठ बोलेगा। तो मैंने आपको बतलाया कि महात्मा कृष्ण गीता में उपदेश करते हैं कि काम को अधूरा छोड़ने वाला मनुष्य भी ऐसे घर में जन्म लेता है कि जो सदैव श्रीमान् और स्वच्छ है। जिन्हें धन की कुछ पर्वाह नहीं, अथवा यदि धनवान् नहीं तो वह ऐसे योगी और योगीश्वर हैं जिनके द्वार पर श्रीमान् धक्के खाते फिरते हैं।

कर्मयोग के ऐतिहासिक दृष्टान्त

यहां तक बतलाने के बाद मैं आपको कर्मयोग की महिमा के कुछ दृष्टान्त इतिहास में से सुनाता हूँ। इस वक्त तक इतिहास में तीन बड़े कर्मयोगी हुए हैं जिन को सारा संसार जानता हैं। उनमें से पहला कर्मयोगी श्रीराम है। श्रीरामचन्द्र जी ने कोई लंबे-चौड़े उपदेश नहीं किए। बाल्मीकि रामायण में शायद एक दो जगह उनका उपदेश है, वह भी लक्ष्मण और भरत जी को।

लेकिन आज दुनियां उनको अवतार मान रही है। श्री रामचन्द्र जी ने कोई ऐसा तप नहीं किया, उनको ख़ास वही भी नाज़िल नहीं हुई, क्योंकि आर्य्यों का ख्याल है कि पहली वही ही पूर्ण थी। किन्तु उन्होंने कर्मयोग के द्वारा अपने जीवन को ऐसा पवित्र बनाया था, जिससे हिन्दू नौजवान राम की तस्वीर आगे रख कर अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। परंतु यह तभी हो सकता है जब हम चित्रकार बनना सीखें, और राम की तस्वीर अपने जीवन में उतारें।

दूसरी मूर्ति जो हृदय में धारण करने योग्य है, वह महात्मा बुद्धदेव की है। उन्होंने भी कोई लम्बा उपदेश नहीं किया, प्रत्युत आचार्य्य बन कर दुनियां को बतलाया है कि कर्मयोग इस तरह किया जाता है। बुद्धदेव के बाद शङ्कराचार्य्य हुए, किन्तु वह ज्यादातर विज्ञानी थे। उनके बाद श्री आनन्दकन्द ऋषि दयानन्द आए जिन्होंने कर्मयोग का पूर्ण नमूना बन कर दिखलाया। आपने उनका जीवनचरित्र पढ़ा होगा, इस लिये आपको मालूम होगा कि किस प्रकार वह आदि से लेकर अपनी आयु के अन्तिम भाग तक संसार की भलाई में लगे रहे; उनका जीवन कर्मयोग की मूर्ति है। मैंने आपको कर्मयोग के तीन दृष्टान्त दिये हैं जिन्होंने अपने पीछे कुछ न कुछ स्थिति छोड़ी है।

मुझे हिमालय में एक पादरी मिला और उसने बतलाया कि वह एक बिरादरी बनाना चाहते हैं जिसम एक भी गरीब को दाख़ल नहीं किया जायगा। मैंने पूछा यह क्यों ? उत्तर मिला कि गरीब को रोटी की तृष्णा कोई भलाई नहीं करने देती, हम अपनी बिरादरी में उन लोगों को दाख़ल करना चाहते हैं जो सहस्रों की दौलत को लात मार कर स्वयं गरीबी अखत्यार करें। वास्तव में पादरी साहिब का यह कथन सत्य है। ऋषि दयानन्द के माता-पिता घर से अच्छे अमीर थे, किन्तु उन्होंने रुपये की कुछ परवाह न करके कर्मयोग को जीवन का उद्देश समझा, वैदिकधर्म का प्रचार करते हुए हज़ारों रुपयों की जायदाद और गद्दियां पेश की गईं, किन्तु महर्षि ने एक मिट्टी के ढेले से बढ़ कर उनका मूल्य नहीं समझा।

व्रत का महत्व

कर्मयोग में व्रत की क्या आवश्यकता है इसको संध्या के विषय के अन्तर्गत बतला चुका हूं। इसका एक दृष्टान्त आपको श्रीरामचन्द्र जी के जीवन में मिलता है। जब विश्वामित्र ऋषि की रक्षा का व्रत धारण करके राम और उनके छोटे भाई लक्ष्मण वन को गये, तो वे निरन्तर कई दिनों तक जागते रहे और व्रत का पालन किया। इसी प्रकार श्रीस्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने, जिनका नाम

लेने से रोम २ में प्रसन्नता होती है, व्रत धारण करके अपने आप को मार कर ऐसा पारा किया जिसको अग्नि पर रख दिया तो नहीं उड़ा। सख्त से सख्त सर्दी में जब अमीर लोग दोशाले ओढ़ा करते थे तपस्वी दयानन्द यमुना के किनारे बर्फ में तपस्या कर रहा था! क्या किसी के शरीर में इस प्रकार की शक्ति उत्पन्न हो सकती है? लोग कहा करते हैं कि पूर्ण ब्रह्मचारी के शरीर में यह शक्ति आजाती है किन्तु मेरा उनसे मतभेद है। इस क़दर सर्दी बड़े से बड़े बलवान् के रुधिर को जमा देती है। यह योग का ही बल है कि बर्फ़ में बैठ कर योगी लोग तपस्या करते हैं।

कर्मयोग की महानता को हम लोग क्या अनुभव कर सकते हैं, जिन्होंने एक व्रत भी धारण नहीं किया। इस का महत्व अगर देखना हो तो ऋषि दयानन्द के जीवन में देखो। वह आत्मा जिसका शरीर सख्त से सख्त गर्मियों और सर्दियों में नहीं कांपता, वह दिल जो किसी सांसारिक शक्ति से नहीं दहल सकता! जब एक बार कमरे में उसके सामने स्त्रियां आती हैं तो वह बैंत की तरह कांपने लग जाता है; उनकी ओर पीठ करके शोर मचा देता है कि यह क्यों आई हैं। यह है सच्चा व्रत। अगर ऋषि अपने जीवन से इस प्रकार की मिसालें क़ायम न करता तो आजकल के युवक जो स्वेच्छाचार के घोड़े

पर सवार हैं, न मालूम कहां तक वैदिक मर्य्यादा को विगाड़ कर आर्य्यसमाज का क्या कुछ बना देते।

ऋषि दयानन्द वहां से बहुत दूर थे जहां कि विषय इन्द्रियों की नदी बहती है। उन्होंने व्रत के महत्व को पूर्णतया अनुभव किया हुआ था, कर्मयोग की महिमा उन के रोम २ में रम रही थी; वह आजकल के प्रायः उन लोगों की तरह न थे, जो कहते हैं कि हम तो हर वक्त सन्ध्या पर लैक्चर देते हैं, किताबें छापते हैं, संध्या पर ही हर वक्त बातचीत करते हैं, हमें सन्ध्या करने की क्या आवश्यकता है! ऋषि दयानन्द शास्त्र के इस वाक्य को अपने कर्म द्वारा मानते थे कि साधारण लोग ऊंची पगड़ियों का अनुकरण करते हैं।

यदि उपदेशक, लैक्चरार, पुस्तकों के कर्त्ता ही धर्म-कर्म से शून्य हैं, यदि वह स्वयं ही सन्ध्या नहीं करते, तो उनका उपदेश लोगों पर क्या असर डाल सकता है और वह कर्म-योग की महिमा को क्या ख़ाक समझ सकते हैं? तो मैंने बतलाया कि जिन्होंने व्रत के महत्व को समझा है, जिन्हों ने कर्मयोग की महानता को अनुभव किया है उनके कर्म अच्छे हैं। शास्त्र ने बतलाया है कि तुम स्वयं ही अपने प्रारब्ध के निर्म्माता हो। चाहे अपने हृदय के दीपक को प्रज्वलित कर लो चाहे अन्धेरा, चाहे अपने दुःखों को बढ़ा लो चाहे उनको सुखों में परिवर्तित कर दो।

४-ज्ञानयोग।

भगवान् का आदेश

हे सर्वत्र परिपूर्ण परमेश्वर! हम आपके समीप उपस्थित होकर आप की वन्दना करते हैं। परमात्मन्! आपको अपने हृदयों में बिठा कर अपने संकल्पों से नमस्कार करते हैं। हे ईश्वर! जिस हृदय में आप विराजमान होते हैं अज्ञान और अविद्या का नाश हो जाता है। जिस हृदय में आपका प्रवेश होता है वहां सम्पत्ति और ऐश्वर्य अपने आप आते हैं। जिस हृदय मन्दिर में आप की विशाल मूर्ति पूजी जाती है संसार में उसको किसी से भय नहीं रहता। वही हृदय ईर्ष्या द्वेष से दग्ध रहते हैं, जिनके अन्दर आप की मूर्ति की पूजा नहीं होती, जिन में आप विराजमान नहीं। परमात्मन्! आप संसार की सम्पूर्ण ऋद्धियों और सिद्धियों का साधन हैं, आपसे हम प्रार्थना करते हैं, आइये भगवान्! हमारे हृदय में विराजमान हूजिये ताकि ईर्ष्या और द्वेष दूर हो जायें और हमारे हृदयों में शान्ति और प्रेम का राज्य हो। प्रभु! दया करो अपने भक्तों पर, ताकि कोई सांसारिक भय उनको कंपायमान न कर सके। इतनी शक्ति दो जिस से डावांडोल पांव अपनी जगह पर स्थिर हो जायें।

परमात्मन् ! हमें वह बल दो जिससे यह आत्मा बलवान् हो जाय और प्रत्येक सभासद् आप की आज्ञा का पालन कर सके। हमारे अंगों और उपांगों में आप ही रम रहे हो। परमेश्वर ! हम हर जगह आपको देखें, आपको सुनें और आप को समझें। परमात्मन् ! हम गद्गद् प्रसन्न होकर अपने हृदय-मन्दिर में आपको बुलाते हैं। परमेश्वर ! विराजमान हूजिये। भगवन् ! आइये और विराजमान हूजिये।

ज्ञानयोग क्या है ?

संसार में बहुत मनुष्य ऐसे होते हैं जिनको भक्ति ज्यादा प्रिय नहीं होती। कर्म के द्वारा उनसे लंबी चौड़ी प्रार्थनाएं भी नहीं हो सकती हैं, लेकिन उनका अन्तःकरण बड़ा स्वच्छ होता है। इस लिए वह परमेश्वर को ज्ञान से जानने का प्रयत्न करते हैं। परमात्मा कहते हैं, कि ऐसे पुरुषों के लिए भी मेरा द्वार खुला हुआ है, वह भी मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। अथवा वेद में बतलाया गया है कि आदमी को पुरुष क्यों कहा जाता है। कहते हैं, जो प्राणी परमेश्वर की नगरी को जानता है वही पुरुष है। जो पुरुष अमृत से परिपूर्ण ब्रह्म की नगरी को जानता है, जिसमें दुःख और क्लेश नहीं है, उसके आत्मिक चक्षु खुल जाते हैं, उसको विवेक हो जाता है। जीवन में उसको आनन्द प्राप्त होता है। कोई सांसारिक सुख उससे मुंह नहीं छिपाता, प्राण उसकी रक्षा करते हैं, बुढ़ापा

कभी उसके पास नहीं फड़कता, जो प्राणी परमेश्वर के नगर को जानता है, वही पुरुष को जानता है।

परमेश्वर की नगरी कैसी है ?

इस नगरी में पांच प्राण, आठ चक्र और नौ दरवाज़े हैं। वह अयोध्या है, जो किसीसे भी युद्ध करने के योग्य नहीं। संसार में कोई चाहे कितना ही बलवान् पहलवान क्यों न हो उससे युद्ध नहीं कर सकता। अयोध्या को सब हिन्दू जानते हैं। वह अयोध्या, जिसकी महिमा श्रीरामचंद्र जी की जन्म भूमि होने के कारण हो रही है। उसको कोई दुनियां का महान् से महान् बली जीत नहीं सकता था। अयोध्या का नाम यथा नाम तथा गुण था। क्योंकि दुनियावी शक्ति इसको जीत नहीं सकती थी।

इस लिये बतलाया है कि जहां भगवान् रहते हैं, वह "अयोध्या" है। शास्त्र बतलाते हैं कि "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" आत्मा को कोई शस्त्र नाश नहीं कर सकता; तोप, बन्दूक, तलवार, पानी और आग की मार का उसपर कुछ असर नहीं होता। वह अजर, अमर और अविनाशी है। अयोध्या के अन्दर तो राजा दशरथ का सिंहासन था किन्तु हमारे आत्मा के अन्दर उस भगवान् का सिंहासन है, जिस के दरबार में दुनियां का चक्रवर्ती राज्य कोई हकीकत नहीं रखता। मनु का यह वाक्य बड़ा ही सार्थक मालूम होता है कि आत्मा जिस नगरी में निवास करता है उसका नाम

अयोध्या है, क्योंकि इसको कोई खण्डन नहीं कर सकता। उपनिषद् ने बतलाया है कि इस नगरी में एक स्वर्ण का कोष है, जिसके चारों ओर हीरे और मोती जड़े हुए हैं। इस कोष में ज्योति है इस ज्योतिर्मय सिंहासन पर जो पूजनीय ज्योति विराजमान है वही परमात्मा है। परमेश्वर ने नदियों को रचा, हिमालय जैसे महापर्वतों को बना कर अपनी महानता का परिचय दिया, परन्तु उसने देखा कि मेरा शान्तिमय रूप, जिसके दर्शन से अशान्त आत्माओं को शांति मिलती है, अगर किसी जगह स्थिर हो सकता है तो वह स्थान हृदय है। तो मैंने बतलाया कि परमात्मा का निवास स्थान आत्मा है और वह अयोध्या है। अब प्रश्न यह है कि हम इसको कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

परमात्मा में देश और काल का भेद नहीं

प्राप्ति के साधन जानने से पहले हम परमात्मा के वास्तविक गुण और लक्षण मालूम होने चाहियें। वह राम, जो एक समय संसार की आंखों में रम रहा था आज हम उस राम को काल की दूरी के कारण देख नहीं सकते। परन्तु वेद बतलाता है कि परमात्मा पर काल का हाथ नहीं है। वह महिमा महान् काल के भेद से सर्वथा पृथक् है। यदि वह भी काल में आजाय तो सम्भव नहीं कि वह भी हमारे सदृश मृत्यु के बलवान् पंजे से बच निकले।

ऐसी अवस्था में हममें और उसमें कोई अन्तर नहीं रहेगा। किन्तु ऐसा नहीं है। यह परमात्मा की पहली महानता है, जो किसी दूसरे पदार्थ में नहीं पाई जाती।

इसकी दूसरी महानता यह है कि इसमें देशकृत भेद भी नहीं है; ऐसा नहीं है कि वह परमात्मा अमरीका या अफ्रीक़ा में हो या सातवें या छटे आसमान पर हो जहां हम पहुंच नहीं सकते। वेद फ़रमाते हैं कि यदि इसमें देशकृत भेद हो तो वह हमारे आत्मा को ज्योति न देसके।

अब एक बात रह गई और वह यह है कि परमात्मा से ज्ञानकृत दूरी है या नहीं। शास्त्रों का कथन है कि ज्ञानकृत दूरी आवश्यक है। जैसे किसी की जेब में पैसे हों और वह उसे भूल जाय कि मेरी जेब में पैसे नहीं हैं, किन्तु जैसे ही अकस्मात् वह जेब में हाथ डाले और पैसे निकल आवें। यही ज्ञानकृत दूरी है। मैं आपको एक दृष्टान्त देता हूँ, जिससे मालूम होगा कि किस प्रकार अविद्या का पर्दा हमारे और परमात्मा के बीच छा जाता है जो हाथों और आवाज़ों से हटाना कठिन हो जाता है। एक अंग्रेज़ी का विद्वान् जैन्टिलमैन जो हज़ारों मनुष्यों को अपनी वाणी से प्रसन्न करता है अवकाश के दिन एक मित्र के मकान पर गया, जहां पहले से उसने एक आदमी को न्योता दे रक्खा था। वहां जाकर क्या देखता है कि शराब और कबाब का दौर चल रहा है। वह मन

में घबराया और उसने अपने मित्र से कहा कि, मैं धार्मिक सभा में जाने वाला हूं और यहां खाने में आज बड़ी गड़बड़ है, अतः मुझे आज्ञा दो कि मैं जाऊं। वह मित्र भला कब मानता था। उसने पकड़ कर बिठा लिया और प्रार्थना की, कि वह भी मद्य का प्याला पिये। मगर उस भद्र पुरुष ने यह बात न मानी। अंत में उसके मित्र ने क्रोधित होकर कहाः—

"क्या तुम भी धर्मोपदेशकों की तरह जो लम्बी २ दाढ़ियां रखते और सिर मुंडवा कर फिरते हैं, मक्कार बन गये हो? खाने पीने का धर्म्म से क्या सम्बन्ध है? जिसकी इच्छा हो खाये और मौज उड़ाये, और दूसरे यह भी है कि जब तुम यहां आगये तो यह सभा के नियम (Manners and etiquette) के विरुद्ध है कि तुम बार २ अनुरोध करो। देखो, एक घूंट पानी में धर्म्म नहीं डूब जाता। इस उपदेश से वह भद्र पुरुष भी किसी प्रकार हलका हो जाता है। बस फिर क्या, जबरदस्ती पकड़ कर शराब उसके कंठ में ठोंसी जाती है। जब थोड़ी सी शराब कंठ से उतर गई तो वह भी समझ लेता है कि धर्म्म से पतित तो होगए, थोड़ी क्या और ज्यादा क्या, एक प्याला और पीता है; नशा चढ़ जाता है और वाही तबाही बोलने लग जाता है।

अब बताओ कि उसकी बुद्धि पर क्या पर्दा पड़ा जिससे उसका सारा ज्ञान दूर होगया? शराब के नशे ने उसके

होश व हवास को खो दिया। अज्ञान और अविद्या का भी इसी प्रकार का नशा है परन्तु अन्तःकरण के तत्वों पर इससे भी ज़बरदस्त अविद्या का पर्दा पड़ता है। लोग कहते हैं कि अमुक मनुष्य की अक़ल खोई गई, अक़ल खोई नहीं जाती बल्कि उस पर एक पर्दा पड़ जाता है।

मैंने इस दृष्टांत में आपको यह बतलाने की कोशिश की है कि अविद्या इस प्रकार की सूक्ष्म वस्तु है जो हाथों से टटोली नहीं जासकती। जब तक आत्मा पर अज्ञानता का पर्दा रहता है परमात्मा हमें दूर मालूम होता है, किन्तु जैसे ही वह पर्दा उठता है उस भगवान् के दर्शन हो जाते हैं। हमें महिमा महान् भगवान् का सिंहासन दिखाई देने लग जाता है, जो आवरण से ढंपा हुआ था।

अज्ञानता के तीन पर्दे

आत्मा पर अज्ञान के तीन प्रकार के पर्दे पड़ जाते हैं (१) आत्म-अज्ञान (२) परमात्मा-अज्ञान (३) अनात्म-अज्ञान, अर्थात् अपने स्वरूप से बेख़बरी, परमात्मा की असलियत से नावाक़फ़ियत और प्रकृति की महत्ता से अनभिज्ञता। मैं क्या हूं, मेरा आत्मा नाशवान् है, परमात्मा छटे या सातवें आसमान पर विराजमान है, जड़ पदार्थ शक्तिशाली हैं-यह अज्ञानता के पर्दे हैं। किन्तु इसके विरुद्ध अगर समझा जाय तो यह अज्ञानता विद्या

और ज्ञान में परिवर्तित हो जाती है। सबसे पहले यह समझना कि मेरा नाश नहीं हो सकता और मुझ में महान् शक्ति है। यदि मैं एक तुच्छ बिन्दु हूं तो समुद्र मेरे साथ है, यदि मैं एक चिंगाड़ी हूं तो सूर्य्य की ज्योति जिससे संसार प्रकाशमान हो रहा है मेरे अंग संग है, और किसी में शक्ति नहीं जो इस भट्टी में से निकाल कर मेरा नाश कर सके। मुझे कोई शक्ति, कोई ताकत और कोई बल इस सूर्य्य से पृथक् नहीं कर सकता। इसी तरह परमात्मा का ज्ञान कि वह प्रभु हर जगह मेरे दांयें और बांयें, नीचे और ऊपर मौजूद है; वह घर २ में परिपूर्ण है, एक पत्ता भी उसकी आज्ञा के बिना हिल नहीं सकता, मेरे आत्मा की बिन्दु के इर्द गिर्द लाखों मीलों का एक समुद्र है, जिसकी ऊपर और नीचे की तह का पता नहीं लगता, वह हिमालय विशाल है जिसका परमाणु मेरे अन्दर व्यापक है।

तीसरा अनात्म अज्ञान=अपने तईं जुदा समझना। प्राकृतिक शरीर के नाश से आत्मा का नाश न मानना और यह जानना कि आत्मा अमर है। मौत का शब्द वस्तुतः हमारे कोष में नहीं है, यह तो सांसारिक खेल है। जिस तरह जिस बालक का नाम उसकी माता ने यज्ञदत्त रख लिया वह यज्ञदत्त कहलाया, जिसका नाम देवदत्त रक्खा वह देवदत्त पुकारा गया। परन्तु वही माता यदि

उसका नाम कल्याणदत्त रख देती तो दुनियां में कल्याणदत्त हो जाता।

तो मैंने आपको बतलाया कि देवताओं की नगरी अयोध्या है, अनात्मा उससे जुदा है और परमात्मा उन सब में परिपूर्ण है। आत्मा का विवेक ज्ञानी पुरुष को होता है। इस प्रकार जब हम अपनी आत्मा, परमात्मा और प्रकृति को जान लें तो फिर निष्काम कर्म करें, जिसकी महिमा श्री कृष्णचन्द्र ने गीता में की है। पिछले सप्ताह कर्मयोग पर व्याख्यान देते हुए मैंने आर्य्यावर्त के इतिहास में से चन्द कर्मयोगियों के नाम गिनाये थे। आज एक दो ज्ञानयोगियों के नाम आपके सामने रखता हूं, जिन्हों ने ज्ञान से अपने जीवन को सफल किया।

इतिहास में ज्ञानयोगी

छान्दोग्य उपनिषद् में कथा आती है कि एक दिन सारे ब्राह्मण मिल कर अश्वपति राजा के पास गये, और उससे ब्रह्मविद्या के लिये याचना की। जैवलि के पास गौतम ऋषि ने जाकर कहा कि मुझे ब्रह्मज्ञान सिखाओ। उसने उत्तर दिया कि यह विद्या सिर्फ क्षत्रियों के पास थी, किन्तु आज मैं तुम को देता हूं।

इसी प्रकार राजा जनक के दरबार में बड़े २ ब्राह्मणों ने आकर ब्रह्मविद्या को प्राप्त किया, इसकी पुष्टि श्रीकृष्ण जी महाराज करते हैं। कृष्ण गीता में कहते हैं

"हे अर्जुन ! यह ज्ञान जो कभी नाश नहीं होता है पहले परमेश्वर ने वैवस्वत मनु को दिया, फिर उसने दूसरे मनु को सिखलाया। इस ज्ञान को राजर्षि लोग ही जानते थे, किन्तु कालचक्र से यह ज्ञान नष्ट हो गया है। चूंकि तू मेरा भक्त है इस लिये मैं तुझको सिखलाता हूँ। मैंने इन तीन चार मिसालों में बतलाया कि ज्ञान सिर्फ़ राजाओं के पास ही रहा करता था। अब मैं यह बतलाता हूँ कि यह ज्ञान सिर्फ़ राजाओं के पास ही क्यों रहता था।

राजा लोग दिन रात विद्या और ज्ञान में मग्न रहते हैं, क्योंकि उनको राज का कई प्रकार का प्रबन्ध करना होता है। ब्राह्मण उतना दिमाग़ नहीं लड़ाता जितनी भक्ति करता है, किन्तु राजा ज्ञान की उन्नति में इतना मग्न रहता है जितना कोई और शायद नहीं रह सकता। इसी लिये कहा गया है राजा घोड़े पर दौड़ते हुए भी भक्ति ही करता है अतः राजा लोग ही ज्यादा ज्ञानयोगी होते हैं, ज्ञानी का हर एक कर्म पुण्ययुक्त होता है, क्योंकि वह बिना सोचे समझे कोई ऐसा कर्म नहीं करता जिससे किसी की हिंसा हो या किसी को दुःख पहुंचे।

इसके मुतल्लिक़ जैनी लोगों ने एक बड़ा उमदा दृष्टान्त दिया है। इस प्रश्न को हल करने के लिये कि चलने फिरने से जो अपराध होता है उसका फल क्या है, वह बतलाते हैं कि हमारी हरेक गति परमात्मा की

प्राप्ति के लिये है, हमारा चलना फिरना भी इसके निमित्त है। इस लिये अगर हमारे इस उद्देश्य की पूर्ति में कोई साधारण हानि भी हो तो हमें इससे कुछ प्रयोजन नहीं। इस बात को एक दृष्टान्त से बतलाया जाता है—एक मारवाड़ी को जो पानी के एक लोटे से ही अपना शरीर तर कर रहा था, एक महात्मा ने उपदेश दिया कि ज़मीन खोद कर पानी निकाल ले। उसने उत्तर दिया कि ज़मीन खोदने से बहुत धूल उड़ेगी। महात्मा ने उपदेश दिया कि भाई! यह सत्य है, परन्तु इस क़दर पानी निकलेगा जिससे तुम्हारी अगली पिछली तमाम मैल धुल जायगी।

मारवाड़ी ने दो तीन हाथ ज़मीन खोदी और बड़ा शीतल जल निकल आया। इसी तरह जो मनुष्य भगवान् की ख़ातिर कष्ट उठाते हैं उनको भगवान् की विशाल मूर्ति के दर्शन होते हैं।

एक हिन्दू स्त्री जो सुबह उठ कर चक्की पीसती है (अफ़सोस! कि आजकल हिन्दू औरतों में चक्की पीसने का रिवाज नहीं रहा, इसी लिये उनकी शारीरिक अवस्था दिन प्रति दिन कमज़ोर हो रही है) वह इस क़दर कष्ट अपने लिये नहीं उठाती क्योंकि वह अकेली तो बिना चक्की पीसे भी अपना गुज़ारा कर सकती है, किन्तु वह इस कष्ट से अपने सारे परिवार का गुज़ारा करती

है। यहां निष्काम कर्म है कि एक कमाये और कुनबा खाये।

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि चार प्रकार के लोग हैं जो भगवान् का स्मरण करते हैं (१) वह लोग जो सुख में तो परमात्मा का नाम तक न लेते हैं, किन्तु जब विपद् पड़े तो लम्बी २ माला फेरते हैं (२) बड़ी २ ठोकरें खाकर परमात्मा की शरण में आना (३) केवल अपने मतलब के लिये परमात्मा का जप करना, बिना मतलब कभी उसका नाम न लेना, (४) चौथा दर्जा ज्ञानी लोगों का है, वही सबसे अच्छे हैं। ज्ञानी परमेश्वर की आत्मा है। परमेश्वर यूं तो सब की रक्षा करते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुष चूंकि उसकी आत्मा है इस लिये वह उसके प्रेम का हक़दार ज्यादा है, उसने अविद्या के पर्दे को उठा दिया है।

मुक्ति क्या वस्तु है ?

अब मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि मुक्ति क्या वस्तु है? महर्षि दयानन्द के शब्दों में जब आत्मा को परमात्मा का वास्तविक ज्ञान हो जाता है तो उसको सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, और वह दुःखों के कारागार से छूट जाता है। जिस प्रकार गंदी नालियां समुद्र में जाकर पवित्र हो जाती हैं, जिस तरह पृथ्वी की गंदगी यमुना और गङ्गा पर सवार होकर समुद्र में जा मिलती है और स्वच्छ हो जाती है, इसी प्रकार मनुष्य का आत्मा

परमात्मा में मिल कर ईर्ष्या और द्वेष से रहित हो जाता है, मलीन आत्मा जब पुरुषार्थ करते हुए परमात्मारूपी गङ्गा के सरोवर म गोता लगाते हैं तो उनकी सारी मैल धुल जाती है—उसी का नाम मुक्ति है।

मुक्ति दो प्रकार की है (१) जीवन मुक्ति और (२) विदेह मुक्ति, अर्थात् मरने के बाद। जीवन मुक्ति वह है जिससे इस जन्म में ही सुख नसीब हो जाय। जिसने इस जन्म में मुक्ति का मज़ा नहीं चक्खा वह मर कर क्या मुक्ति पायगा। जिसने इस जन्म में सुख नहीं पाया, वह मर कर क्या सुख प्राप्त करेगा। सुख से पहले दो दर्जे हैं जो सर्वप्राणियों में पाये जाते हैं अर्थात् प्रीति, और ज्ञान। सुख तीसरी मंजिल है। प्रीति, ज्ञान, और सुख यही तीन चीज़ें हैं, जिनकी ज़बरदस्त ज़ंजीर के साथ संसार जकड़ा हुआ है। दुनियां में एक छोटी से छोटी चिऊँटी से लेकर बड़े से बड़े मनुष्यों में प्रीति का अंकुर मौजूद है। आपने कई बार देखा होगा, जहां एक चिऊँटी को ज़रा सी मिठास नज़र आई, तुरन्त उसने दूसरी चिऊँटी को बतला दिया, दूसरी ने तीसरी को, और इसी प्रकार आन की आन में सैकड़ों चिऊँटियों को पता लग गया। यह क्या कोई कम प्रीति है? फिर वह तमाम चिऊँटियां सीधी सड़क पर एक दूसरी के पीछे चलेंगी। यह उनका ज्ञान है। प्रीति और ज्ञान के बाद मिठास को

पाकर उनको सुख मिलने लगा। इसी प्रकार एक हाथी को देखिये। किस तरह पांच सौ हथिनियों के आगे चीख़ता और दहाड़ मारता हुआ शेर के मुक़ाबिला को जाता है। हाथी में ज्ञान भी ग़ज़ब का है। किसी नदी में ले जाओ, पहले एक क़दम रक्खेगा फिर दूसरा। प्रीति और ज्ञान की सीमा को देखने के लिये और आगे बढ़िये; एक जङ्गली वहशी भील पर जब किसी आदमी ने आक्रमण किया हो तो एक चीख़ से तुरन्त सारे भीलों को इकट्ठा कर लेता है और सब उसकी सहायता करते हैं, क्योंकि इनमें भी ज्ञान प्रीति और सुख की आकांक्षा विद्यमान है। इससे आगे एक विद्वान् सन्यासी की अवस्था को लीजिये, जो हर एक प्राणीमात्र से प्रीति करता है। ऋषि दयानन्द की तरह सारी दुनिया ही जिसका कुटुम्ब है, जिसको दुनिया की हर एक वस्तु का ज्ञान है। मैंने आपके सामने एक चिऊँटी से लेकर एक धर्मात्मा सन्यासी तक के ज्ञान और प्रीति का वर्णन किया। आपने देखा कि ज्ञान के कितने दर्जे हैं, और अभी मालूम नहीं कि ज्ञान और प्रीति के कितने दर्जे और हैं।

ऊपर लिखित दृष्टान्तों में आपने देखा कि ज्यों २ पर्दा बारीक होता जाता है त्यों २ ज्ञान और प्रीति भी बढ़ती जाती हैं और अन्त में एक समय आता है कि जब ज्ञान और प्रीति का पर्दा अत्यन्त सूक्ष्म होकर मनुष्य

जीवन्मुक्त हो जाता है। विदेहमुक्ति और जीवन मुक्ति में केवल आयु का पर्दा है, फिर हम हैं और वह समुद्र जिसके हम बिन्दु थे; फिर हम हैं और वह सूर्य्य जिसके हम किरण थे। अविद्या के नाश हो जाने से कर्म अपने आप शुभ हो जाते हैं, फिर मन में ईर्ष्या और द्वेष नहीं रहता। अविद्या के कट जाने से सब दोष कट जाते हैं और दोष के कट जाने से बुराई नहीं रहती। इसी तरह जब प्रीति, ज्ञान और सुख पूर्ण हो जाय तब मनुष्य मुक्ति का भागी हो जाता है, फिर वह शक्तिशाली हो जाता है, उसका हृदय विशाल होजाता है, वह राम के सदृश रावण का मुकाबिला करता है वह कृष्ण की न्याईं दुर्योधन को रणक्षेत्र में पछाड़ता है। संसार की कोई शक्ति उसकी तुलना नहीं कर सकती। हे भगवान्! दया करो कि हम इस अवस्था को प्राप्त हों। प्रभु! कृपा करो कि हम इस अविद्या की शिला को अपने ऊपर से हटा कर दूर फेंक सकें। आपकी कृपा और अनुग्रह के बिना हम इस पर्दे को नहीं उठा सकते।

दयामय प्रभु! यही प्रार्थना है, यही याचना है। स्वीकार कीजिये! स्वीकार कीजिये!! और फिर स्वीकार कीजिये!!! ओ३म् शम्।

——:o:——

५—राजयोग।

प्रार्थना

हे सार्वधार ! आप हमारे एकमात्र आश्रय हैं, आपका आशीर्वाद सदैव हमारे साथ रहे। प्रभु ! आपकी परम दयालुता से जीवन में हम जीवनमुक्त हों और अन्त में तमाम सांसारिक बन्धनों को तोड़ कर मुक्ति को प्राप्त हों। परमात्मन् ! जिन आत्माओं के सिर पर आपका हाथ रहता है वह सदैव सुखी रहती हैं, इस लोक में कोई दुःख उनको सता नहीं सकता, परलोक के द्वार सदैव उनके लिये खुले रहते हैं; इस लिये हम आपको नमस्कार करते हुए बड़ी श्रद्धा और प्रेम से आपके पास आते और आपकी जय मनाते हैं। परमात्मन् ! संसार में आपकी जय हो, हमारे हृदयों में आपकी जय हो, हमारे कर्म और इन्द्रियों में जय हो जिससे हम लोग आपके दर्शाये हुए नियमों पर चलते हुए कभी भी पीड़ित और दुःखी न हों। हे कृपानिधे प्रभो ! दया करो अपने भक्तों पर, ताकि यह तन मन आपके अर्पण हो। प्रभु ! आशीर्वाद दो, कि हमारा जीवन प्राणीमात्र के लिये हितकारक हो, कोई दुःख और क्लेश जीवन भर में हमारे समीप फड़कने न पावे, और जीवन के पश्चात् हम अमर हो जावें। इसी याचना और प्रार्थना के पश्चात् हम आपके दरबार में अत्यन्त नम्रता से उपस्थित होते हैं। स्वीकार कीजिये !

पहले तीन व्याख्यानों का संक्षेप

भक्तियोग उन प्राणियों के लिये है जिनकी ज्यादा रुचि कर्मयोग की ओर नहीं, जिनमें पुरुषार्थ ज्यादा नहीं किन्तु उनमें भक्ति अधिक है, जिनका मन हर वक्त महिमा-महान् भगवान् के चरणकमल में रहता है, जो परमात्मा की प्रीति में इस कदर निमग्न रहते हैं कि उनको सांसारिक प्रेम इस प्रेम की तुलना में तुच्छ प्रतीत होता है ऐसे लोगों के लिये भक्तियोग है। दूसरे वह प्राणी मात्र, जिनके अन्दर भक्ति अधिक नहीं, प्रीति का भाव भी बहुत न्यून है, किन्तु वह कर्त्तव्य का पालन अधिक करते हैं। जो कर्त्तव्य किसी विद्वान् ने बतला दिया, बस! उसीमें लग गये। वह अपने कर्त्तव्य को पूरा तो करते हैं किन्तु प्रीति से नहीं, उन लोगों की बुद्धि गो आम तौर पर मोटी होती है, किन्तु इनमें अनुकरण का माद्दा बहुत होता है ऐसे लोग कर्मयोग के अधिकारी हैं। तीसरे वह पुरुष हैं, जो मनहीन हैं जिनमें भक्तिभाव नहीं होता, जो दुनियां में खुश्क प्रसिद्ध हैं, ऐसे पुरुष जो बाल की खाल उतारते हैं उनको उपदेश करो कि तुम भगवान् की भक्ति किया करो और सन्ध्या और अग्निहोत्र करो तो टका सा जवाब देते हैं कि हम क्यों भगवान् की भक्ति करें? क्यों भगवान् का स्मरण करने में अपना समय नष्ट करें? इससे क्या लाभ होगा? ऐसे पुरुष ज्ञानयोगी कहलाते हैं।

राजयोग क्या है ?

जो लोग भक्ति में अधिक रुचि नहीं रखते, इसी प्रकार कर्म भी ज्यादा नहीं करते और ज्ञान भी जिन्होंने ज्यादा नहीं सीखा, और वह ज्ञान के सीखने में मस्तिष्क भी नहीं रखते हैं, ऐसे लोगों के लिये राजयोग का विधान है, यम और नियम राजयोग का पहली सीढ़ी है।

सन्तकुमार नारद को कहते हैं, हे नारद ! जब कोई कर्म करता है तब उसको सुख मिलता है, जब उसे सुख मिलता है तब वह कर्म करता है। सारी उमर सिर मुंडवा कर देश विदेश में भ्रमण किया और पल्ले एक कौड़ी न पड़ी। हमेशा सन्ध्या की, परन्तु मन की सफ़ाई न हुई। उसको सिर मुंडवाने और सन्ध्या करने से क्या लाभ ? उसको ज़रा ठोकर लगी और वह सन्ध्या उपासना छोड़ देगा। यदि मनुष्य को उसके कर्म का ज़रा भी फल मिल जाय तो फिर उसकी तृष्णा बन जाती है और वह सारी उमर तक कर्म करता रहता है। राजयोग के अन्दर यह ख्याल होता है कि मुझे यहां ही फल मिलेगा, इस लिए वह बड़ी लालसा से कर्म को सम्पूर्ण करने का प्रयत्न करता है। महाराज पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र में राजयोग की व्याख्या की है। राजयोग का अर्थ ध्यानयोग अर्थात् Will Power अथवा इच्छाशक्ति को बढ़ाना है। इच्छा-शक्ति किस तरह बढ़ाई जाय ? महाराज पतञ्जलि फ़रमाते

है "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना ही राजयोग है ।

किसीका चित्त बुरे कामों में जाता है। कान में राग की ध्वनि पड़ते ही कान उस ओर खिंच जाता है । सुन्दर रूप को देखकर ऐसे झुकावों से मन को रोक लेने से चित्त की वृत्तियां रुक जाती हैं। जब देखने वाले को अपने मनमें स्थिति हो जाती है तो वह अपना आप काबू कर लेता है । जब तक मनुष्य चित्त की वृत्तियों को काबू नहीं करता वह आपे से बाहर रहता है, उसके मन में पल २ के बाद नई से नई तरंगें उठती हैं। जब चित्त की वृत्ति रुक जाती है तो मन के अन्दर परमेश्वर के रूप की स्थिति हो जाती है, और उसके बाद महिमा महान् भगवान् के दर्शन होजाते हैं। उपनिषद् में बतलाया है कि नित्य प्रतिदिन सर्वप्राणी परमात्मा के दरबार में जाते हैं। जिस वक्त हाथ अपना तमाम काम छोड़ देते हैं, पांव में शक्ति नहीं रहती, आंखें बन्द होजाती हैं और मनुष्य सो जाता है, उस समय आत्मा परमात्मा के दरबार में जाता है। सुषुप्ति अवस्था में उस भगवान् की महिमा दिखाई देती है। तो मैंने बतलाया कि सांसारिक शक्ति से महान् शक्ति हमारे आत्मा के अन्दर विराजमान है। जिसके हृदय के अन्दर परमात्मा विराजमान हों, सर्व ब्रह्माण्ड की शक्ति उसके अन्दर होती है। लेकिन उस महान् परमात्मा का अनुभव उसी मनुष्य को होसकता है जिसने

चित्त की वृत्तियों को रोक लिया हो, जिसका मन वश में नहीं उसको सुखों के केन्द्र परमात्मा का निवास मन में होते हुए भी आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता, यही कारण है कि प्रायः लोग शङ्का किया करते हैं कि जब परमात्मा आत्मा के अन्दर उपस्थित है तो फिर उसको दुःख क्यों होता है ? उनके लिए तो परमात्मा का होना न होना एक समान है, यह बात आपको इस दृष्टान्त से समझ में आजायगी।

यम नियम पहली सीढ़ी हैं।

एक मछली जो सदैव गङ्गा के पवित्र और शीतल जल में रहती है उसको कभी मालूम नहीं होता कि जल कैसा शीतल और पवित्र है और नाहीं जल का निवास मछली के मन में कोई विशेष भाव पैदा करता है, किन्तु जब एक ब्राह्मण और क्षत्रिय गङ्गा में नहाता है, तो बेअख्त्यार उसको भगवान् की याद आजाती है, और कहता है अहा ! क्या शीतल जल है। मगर मछली हैरान होती है कि इसको जल किस तरह शीतल और आनन्द-दायक मालूम होता है।

कथा है कि एक दिन एक फक्कड़ साधु यमुना के किनारे नहाने के लिए गया। जब उसको पानी में गोता लगाने से आनन्द प्राप्त हुआ और आत्मा शान्त हो गया, वह भगवान् का आराधन और जल की स्तुति करने लगा। जल की एक मछली ने उसपर मखौल उड़ाया।

साधु ने मछली को दुम से पकड़ कर पानी से बाहर जेठ आषाढ़ की गर्म्म धूप में घसीटा। वह तड़फ़ने और छुटकारे के लिए प्रार्थना करने लगी। तब साधु ने उसे ज़ोर से पानी में दे मारा और फिर पूछा कि बता, अब पानी शीतल है या नहीं। मछली ने नम्रता से उत्तर दिया— "भगवान्! अब मुझे शीतल जल की क़दर मालूम हुई है। महर्षि पतंजलि जी कहते हैं कि तुम अपने तईं प्रणायाम के द्वारा इस मछली की तरह धूप में कष्ट दो, तप करो, भोग विलास को छोड़ दो; फिर तुम्हें मालूम होगा कि वास्तव में तुम्हारे अन्दर आनन्द का केन्द्र था, जिसको तुम भूले हुए थे। जब तुम अन्तर्ध्यान हो जाओगे, तब तुम्हें उस भगवान् के दर्शन होंगे और वास्तविक आनन्द प्राप्त होगा। आपने कई बार देखा होगा कि जब कोई पिता समय २ अपने पुत्र की तरफ़ ध्यान लगाता है तो पुत्र की मूर्ति उसकी आंखों के आगे फिरने लग जाती है। इसी तरह अगर कोई मनुष्य तमाम दिन अपने मित्र का स्मरण करता रहे तो रात को स्वप्न में उसका दर्शन नजर आयगा। यही हाल भगवान् के स्मरण का है। जो भक्तजन प्रभु के स्मरण में अपने मन को एकाग्र करते हैं, उनका हृदय गद्गद् प्रसन्न रहता है, उनके मन में भगवान् की ज्योति का विकाश होता है, संसार में उनकी महानता और विशेषता का यश फैलता है। इसी तरह

मन को एक तरफ़ लगाने का नाम 'धारणा' है। मैंने बतलाया कि जो लोग चाहते हैं कि उनकी इच्छाशक्ति या will power बढ़ जाय, उन्हें सबसे पहले यम नियम करने चाहियें। यम नियम की व्याख्या आप कई दफ़ा सुन चुके हैं, इसके लिये ज़रूरत नहीं कि उनकी विस्तारपूर्वक व्याख्या की जाय।

आहार व्यवहार आवश्यक है।

यम नियम का पालन करते हुए आहार-व्यवहार का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। यह ख्याल कि खाने, पीने, उठने, बैठने और अन्य इसी प्रकार की बातों का धर्म्म से कोई सम्बन्ध नहीं, मूर्खता है। खाने पीने का आरोग्यता के साथ बड़ा सम्बन्ध है। वह मनुष्य जो पाव भर प्रति दिन खाता है, एक दिन नियमविरुद्ध एक सेर खा लेवे, बताइये कि उसका पेट फटेगा या नहीं? वह धर्म कर्म क्या कर सकेगा? इस लिये हमारा आहार व्यवहार नियम से होना चाहिये। सोने जागने का ठीक नियम हो, हमारा चलना फिरना और बोलना आदि सर्व बातें ऐसी नियमबद्ध और उत्तम हों जिनको देख कर प्रत्येक पुरुष के मन में उनके अनुकरण की प्रबल इच्छा उत्पन्न हो।

मन की तीन अवस्थाओं पर क़ाबू ।

मन की तीन अवस्थाएं हैं, अर्थात् जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीन हालतों पर क़ाबू पा लेने के बाद मनुष्य राजयोग को प्राप्त कर सकता है लेकिन पिछली दो हालतों पर कोई मनुष्य क़ाबू नहीं पा सकता, जब तक कि जाग्रत-अवस्था की तमाम क्रियाओं को अपने वश में न करले। जाग्रत-अवस्था में जिस मनुष्य का मुंह और जिह्वा उसके आधीन नहीं, जिसका मन क्षण २ में छलांगे मारता है क्या आप ख्याल कर सकते हैं कि उसको गहरी नींद आयगी ? उसको सोने पर भी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। सोते हुए उसको नाना प्रकार के भयानक स्वप्न आते रहते हैं। तो शास्त्र बतलाते हैं कि पहले हम जाग्रत-अवस्था में अपने मन को वश में करें इसके बाद स्वप्न की अवस्था शनैः २ स्वयं हमारे वश में होती जायगी और हमें ऐसी गहरी निद्रा प्राप्त होगी, जिसमें सुषुप्ति-अवस्था भी ठीक हो जायगी। जब हमने मन की तीनों अवस्थाओं को अपने क़ाबू में कर लिया फिर भगवान् के दर्शन कुछ कठिन नहीं रहते।

आपने देखा होगा, कि चित्रकार लोग पहले अपने बच्चों को खेल कूद में चित्र बनाना सिखलाते हैं, जिनसे उनकी रुचि चित्र बनाने की ओर हो जाती है। धीरे २ एक दिन ऐसा आता है कि वह बड़ा हो कर उच्च

कोटि का चित्रकार बन जाता है इसी प्रकार हम सबसे पहले छोटी २ बातें खान पानादि में नियमों का पालन करना सीखें। जब शरीर पर हमारा क़ाबू हो जायगा, तो राजयोग के अधिकारी हो जायेंगे।

आसन जमाना

यम नियम का सेवन करने के पश्चात् फिर आसन लगाना सीखे। आसन गो आम तौर पर साधारण और छोटी सी बात समझी जाती है, किन्तु साधारण और छोटी २ बातों के न होने से ही मनुष्य असभ्य और सभा समाज में बैठने के योग्य नहीं रहता। मैंने कई लोगों को देखा कि जब वह सन्ध्या करने बैठते हैं तो कभी सिर खुजलाते, कभी शरीर पर हाथ फेरते, और कभी मक्खियां उड़ाते हैं। ऐसे लोगों को आसन जमाना नहीं आता। जो मनुष्य आसन नहीं जमा सकता, वह मन क्या एकाग्र करेगा। इस लिये धरती पर ऐसा आसन जमाओ, मानो एक कीला गड़ा हुआ है। तुम जब सन्ध्या कर रहे हो तो तुम्हारे शरीर पर पसीना है किन्तु तुम्हें ख़बर नहीं होनी चाहिये। निःसन्देह आसन जमाने में पहले तुम्हें ज़रूर तकलीफ़ होगी, चंचल मन तुम्हारे बैठने में बाधा डालेगा, किन्तु जब तुम आदि हो गये तो फिर किसी प्रकार की तकलीफ़ न रहेगी। पहले २ थोड़ी देर बैठो फिर धीरे २ अपनी बैठक बढ़ाते जाओ।

प्राणायाम ।

आसन के बाद प्राणायाम का दर्ज़ा आता है प्राणायाम को हिन्दू और आर्य्य लोगों ने बड़ा ही भयानक और काला नाग बना रक्खा है और सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है कि प्राणायाम से कई आदमी मर गये हैं, अतः इसको नहीं करना चाहिये । जिस तरह सर्वसाधारण को भूत प्रेत से भय है, इसी तरह आर्य्य और हिन्दुओं को प्राणायाम का भय है, किन्तु शास्त्रकारों ने प्राणायाम को बड़ा ही उपयोगी बतलाया है । अब मुझे उपयोगी कहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक यूरोपियन और अन्य तत्ववेत्ता इसके लाभों को मान रहे हैं । प्राणायाम करने से न केवल आत्मिक रोगों का ही नाश होता है, प्रत्युत इस वर्त्ताव से शारीरिक रोग भी जड़ से उखड़ जाते हैं और खून पवित्र हो जाता है और किसी प्रकार की व्याधि समीप नहीं आने पाती । प्राणायाम की विधि जैसी कि मनु ने बतलाई है आप कई बार सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों और महात्मा पुरुषों से पढ़ और सुन चुके हैं । मुझे इसके विषय में कहने की अधिक आवश्यकता नहीं । ऋषि बतलाते हैं कि जिस तरह स्वर्ण अग्नि में डालने से शुद्ध होजाता है, इसी तरह प्राणायाम रूपी भट्टी से मनुष्य का आत्मा शुद्ध और निर्मल हो जाता है । आप परीक्षा के लिये प्राणायाम करके देखें,

आपको चन्द ही दिनों में विदित होगा कि आपकी इच्छाशक्ति बढ़ रही है, आपकी आकृति तेजोमय और आत्मा बलवान् हो रहा है, आपके मित्र आपसे याचना करेंगे कि हमारी सभा में बैठ कर सभा की शोभा को बढ़ायें, ईर्ष्या और द्वेष आपके मन से दूर हो जायगा, और चित्त हर वक्त प्रफुल्लित रहेगा। प्राणायाम से आदमी का चोला सूक्ष्म हो जाता है, उसके विचार पवित्र हो जाते हैं और आत्मा हर वक्त शान्त रहती है। अमेरिका का एक पुस्तक रचयिता डारविन के उपकार का चिन्तन करता हुआ अपनी पुस्तक में लिखता है कि डारविन से भी बढ़ कर हिन्दोस्तानी साधुओं ने अमेरिका पर उपकार किया है, जिन्होंने अमेरिका निवासियों को प्राणायाम की विधि सिखलाई है, और जिससे आने वाली सन्तानें भारतवासी साधुओं को याद करेंगी।

धारणा।

प्राणायाम के पश्चात् धारणा है जिसको महर्षि पतंजलि ने अपने योगशास्त्र में बड़े स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है, अर्थात् किसी वस्तु की ओर मन को लगाना 'धारणा' है। जैसा कि मैंने अपने पहले लैक्चर में बतलाया था, मन एक ही तरह से पूरे तौर पर क़ाबू रह सकता है। जब मन किसी और तरफ़ जाने लगे तो उसे कह दिया जाय कि कहां जाता है। मैंने प्रार्थना की है कि धारणा

शक्ति पैदा होजाने के पश्चात् ध्यान लगावें। ध्यान किसका लगावें इस पर आजकल बड़ा विवाद होरहा है, प्रायः लोग कहते हैं कि मूर्ति के बिना ध्यान नहीं लग सकता, किन्तु योगशास्त्र उनके इस विचार का खण्डन करता है। योगशास्त्र में बतलाया है, कि परमात्मा के नाम का ध्यान करना चाहिये। छान्दोग्य-उपनिषद् भी इस ख्याल का मण्डन करता है और नाम से ही तमाम दुनियां के कारोबार चल रहे हैं।

ध्यान किस तरह करना चाहिये ?

ध्यान करने की कई विधियां हैं। एकान्त में बैठ कर मन से उसका उच्चारण करें, श्वांस से उसका उच्चारण करें ओं का जाप करें। इस ओं के जाप को सहल करने के लिये महात्माओं ने "सोऽहमसि" बना दिया था, और कई भक्तजन इसका जाप करते हैं। "सोऽहमसि" के अर्थ हैं वह परमात्मा सूर्य्य और चन्द्रमा को प्रकाशमान कर रहा है, वह परमात्मा जो सकल ब्रह्माण्ड का अधिपति है वह मैं हूं अर्थात् वह मुझ में है। "सोऽहमस्मि" वास्तव में ओं ही है इसका जाप प्राणायाम के साथ २ करना अच्छा है। यदि कोई पुरुष ओं का जाप इस तरह भी न करना चाहे वह ख्याल करके अपना ध्यान उस महिमा महान् भगवान् की ओर लगा सकता है। इसी तरह क्रमशः चलते हुए हम अपने निश्चित स्थान पर पहुंच सकते हैं

और सनत्कुमार के इस शब्द को कृतार्थ कर सकते हैं कि "जो करता है वह सुख पाता है"। इस तरह जो प्रणव का जाप करते हैं उन्हें अवश्य ही सफलता प्राप्त होती है और एक समय आता है जब उनको भगवान् के साक्षात् दर्शन प्राप्त होते हैं। परमेश्वर हमें बल और शक्ति दें जैसा कि इस मन्त्र में लिखा है:—

"धियो यो नः प्रचोदयात्"।

हमारी बुद्धियां मलीन हैं, वह उनको स्वच्छ और निर्मल करें, वह हमें शक्ति दे जिससे हम अपनी आत्मिक यात्रा को समाप्त करके उस भगवान् के दर्शन कर सकें। बस, यही याचना और प्रार्थना है स्वीकार कीजिए।

——:o:——

ईश्वर दर्शन ।

सकल सृष्टि के कर्त्ता परमात्मा से प्रार्थना है कि हे प्रभु ! हमारे पापों को आप हमसे दूर कीजिये ताकि मलीन मन शुद्ध होवे, आप हमारे हृदय को शुद्ध कीजिये क्योंकि इस में भी मलीनता है, आप हमको पापों से दूर कीजिये, यह पाप हमको क्षेत्रों मे न सता सके, यह पाप हमको डांवाडोल न करें, जिससे हमारा मन डगमगा न सके ।

तीन प्रकार के बल ।

सभ्यगण ! यदि धर्म्म की दृढ़ता देखना चाहो तो उसकी ईश्वरपूजा और यज्ञ से देखो । जितनी शोभा इन दो चीज़ों से होती है, उतनी और किसी वस्तु से नहीं होसकती । ईश्वरपूजा क्या है, और कैसे होसकती है ? इसको मैं आज आपके सामने वर्णन करूंगा, और बतलाऊंगा कि किन साधनों से परमात्मा का दर्शन हो सकता है । आप कहेंगे कि मन से, क्योंकि वेद में मन की बहुत स्तुति की गई है, परन्तु मन के द्वारा ईश्वर की उपासना में हम कृतकार्य्य नहीं हो सकते जब तक कि पहले पूर्णतया इस को अपने वश में न कर लें । फिर आप उत्तर देंगे कि यदि मन से ईश्वर की उपासना नहीं हो

सकती, तो कर्म से हो सकती है किन्तु अनियमित कर्मों से भी सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि जब तक कर्म-इन्द्रियां वश में न होंगी, कर्म भी स्वेच्छा पूर्वक नहीं हो सकेंगे। तो फिर प्रभु के दर्शन किस प्रकार हो सकते हैं यह आपका योग्य प्रश्न होगा। इस प्रश्न का उत्तर प्रतिदिन आपके दृष्टिगोचर होता है किन्तु आप इसपर ध्यान नहीं देते। क्या आप नहीं देखते कि साधारण मल्लयुद्ध लड़ने के लिये मल्ल को क्या २ ढंग वर्तने पड़ते हैं। साधारण पुरुष यदि किसी मल्ल के साथ मल्ल-युद्ध (कुशती) करने का साहस करेगा, प्रथम तो मैदान (अखाड़े) में अपने वैरी का डील डौल देख कर ही उसका उत्साह भङ्ग हो जायगा, किन्तु यदि साहस कर भी ले, तो दो चार हाथ मारने पर उसकी भुजायें फूल जायेंगी, अंगुलियां पिस जायेंगी इसकी वाणी के बल से निर्मल पुरुष का हृदय कांप जावेगा, और यदि इसने ज़रा निर्दयता से हाथ चला दिया तो निर्बल मनुष्य चकनाचूर हो जावेगा। परन्तु यदि दोनों समान बल के हों तो इस दुर्दशा की सम्भावना नहीं हो सकती। अतएव किसी क्षेत्र में मल्ल-युद्ध करने से पूर्व मल्ललोग अपने शारीरिक बल को बढ़ाया करते हैं, शारीरिक बल के साथ २ वाणी का बल बढ़ता जाता है और उनमें चिंघाड़ मारने की शक्ति आजाती है और

फिर चिरकाल के अभ्यास से उनका मानसिक बल बढ़ कर उन्हें उत्साह हो जाता है कि वह युद्ध-क्षेत्र में जाकर अपने शत्रु को परास्त कर सकें। हमारे शास्त्र में तीन प्रकार के बल बतलाए हैं, मनोमय बल, वाणी का बल और शारीरिक बल।

शारीरिक बल।

ईश्वर उपासना के लिए हमें क्षेत्र के इस मल्ल की न्याई सबसे पहले अपने शारीरिक बल को बढाना चाहिए। व्यायाम, शुद्ध और पवित्र भोजन और सबसे बढ़ कर ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन करने से हम अपने शरीर को सुधार सकते हैं, आज कल हममें कोई नियम नहीं है। जब सन्ध्या करने बैठते हैं तो हमारा मन हमारे वश में नहीं रहता। हमें नहीं मालूम होता कि हम कहां बैठे हुए हैं। किन्तु सफलता नहीं होसकती जब तक हमारा शरीर हमारे कथनानुसार कार्य्य करने को उद्यत नहीं होता। इसलिए आवश्यक है कि हम सबसे पहले अपने शारीरिक बल को बढ़ा कर सन्ध्या में अपने आसन को दृढ़ करें। सन्ध्या के समय हम इस तरह दृढ़ और सावधान होकर बैठें कि देखनेवालों को यह मालूम हो मानों कि पृथ्वी में कोई कीला गड़ा हुआ है और कोई शक्ति उसे हिला नहीं सकती। शरीर से जो काम भी हम लेना चाहें उसमें आलस्य और दरिद्रता का लेशमात्र न हो

निःसन्देह आरम्भ में इस कार्य्य के करने में किञ्चित् कठिनाई मालूम पड़ती है किन्तु कुछ काल पीछे ऐसा आनन्द होगा कि फिर मन तृप्त नहीं होगा और मन चाहेगा कि कुछ देर समाधि-अवस्था में रहें। तो सबसे पहले ईश्वरपूजा के लिये शरीर दृढ़ करने की आवश्यकता है और किसी काम में भी सफलता प्राप्त नहीं होगी, जब तक कि शरीर दृढ़ न होगा और कार्य्य नियमबद्ध न किया जावेगा।

सन्ध्या में आनन्द किस प्रकार आ सकता है?

प्रायः लोग कहते हैं कि हम वर्षों से नियम पूर्वक सन्ध्या करते हैं परन्तु हमें आनन्द नहीं आता। उनका यह कहना तो वास्तव में ठीक है किन्तु वस्तुतः उन्होंने सन्ध्या के महत्व को समझ कर नियमपूर्वक सन्ध्या कभी नहीं की। यदि करते तो अवश्य आनन्द आता। यह हो नहीं सकता कि इस संसारसागर पर प्रभु के दर्शन की सच्चे दिल से अभिलाषा की जाय और उसका दर्शन न हो। शास्त्रों में बतलाया है कि यदि निम्नलिखित नियमों का पालन करते हुए सन्ध्या का अभ्यास करेंगे तो सन्ध्या में अवश्य आनन्द प्राप्त होगा।

(१) नियम से नियत समय पर संध्या करनी चाहिये।

(२) मनको एकाग्र करके संध्या करनी चाहिये ताकि वह अस्त व्यस्त होकर किसी और ओर न जाय।

(३) जितना समय पहले दिन सन्ध्या में व्यय किया है उससे न्यून कदापि न हो, प्रत्युत प्रतिदिन थोड़ा २ बढ़ाते जायें।

(४) सन्ध्या एक निश्चित स्थान पर होनी चाहिये, यह नहीं कि कभी चारपाई पर बैठ गये, कभी कुरसी पर बैठकर ही कर ली, प्रत्युत प्रतिदिन जहां बैठा करते हो उसी स्थान पर करनी चाहिये। आपको प्रतिदिन का परीक्षण होगा कि जहां बैठकर आप प्रतिदिन पठन पाठन का काम करते हैं उस कमरे में पग रखते ही आपके मस्तिष्क में पठन पाठन का विचार आजाता है। इसी तरह व्यापारी जिस गद्दी पर बैठ कर प्रतिदिन व्यापार करते हैं वहां बैठते ही अपने लेने देने के सर्व विचार स्मरण आजाते हैं, इसी प्रकार हिन्दु मन्दिरों में घुसते ही भक्तों के मन भगवान् की पूजा की तरफ चले जाते हैं, परन्तु आर्य्यसमाजियों ने भगवान् की पूजा के गौरव को नहीं समझा। उन्होंने पूजा स्थान की महानता को अनुभव नहीं किया। आर्य्यमन्दिरों की दुर्दशा अकथनीय हो रही है, आर्य्यसमाज के मन्दिरों को देखकर कोई अनुभव नहीं कर सकता कि यह धर्म-स्थान है, कहीं पर तो यह सराय बन रहे हैं, जहां कहीं चिलम गिरी पड़ी है कहीं थूक दिखाई देता है, कहीं कूड़े करकट का ढेर लग रहा है, कहीं टूटी चारपाई पड़ी है। ऐसे मन्दिरों में जाकर आप

बतलायें कि भगवान की पूजा के विचार किस प्रकार आ सकते हैं ? अतः आवश्यकता है कि हम अपने मन्दिरों की अवस्था का सुधार करें। स्वामी जी ने भी लिखा है कि पूजा का स्थान शुद्ध पवित्र और पृथक् होना चाहिये. जहाँ जाते ही परमात्मा की भक्ति के विचार मनरूपी मन्दिर में लहरें मारने लग जायें।

तो मैंने बतलाया कि संध्या एक ही स्थान में हो, जो शुद्ध और पवित्र होना चाहिये। और निश्चत समय पर सन्ध्या के लिये हमें उद्यत होजाना चाहिये। जिस प्रकार जो मनुष्य रात के दस बजे सोते हैं उन्हें १० बजते ही नींद आजाती है, इसी प्रकार यदि हम सन्ध्या का एक समय निश्चित करेंगे तो हमें प्रति दिन उसी समय सन्ध्या के विचार आयेंगे।

इस प्रारम्भिक कथन के अतिरिक्त जो कि संध्या के लिये अत्यन्त आवश्यक है जब यजमान संध्या पर बैठे तो फिर वाणी से परमात्मा की भक्ति करे और कहे कि हे प्रभु ! तेरा भरोसा ही मुझे कल्याण और मंगल देने वाला है। आपकी दया ही मेरा जीवन और आपकी क्रूरता ही मेरी मृत्यु है। हम बड़ी मीठी वाणी से उस प्रभु के स्तोत्र पढ़ें, मधुर वाणी से उस मंगलमय भगवान् के भजनों से कीर्तन करें, यही हमारे कल्याण का साधन होंगे। जिस तरह किसी दानी पुरुष के द्वार से कोई भिक्षुक निराश नहीं

जाता, इसी प्रकार से यह किस तरह हो सकता है कि उस दानियों के दानी के द्वार से जिससे प्रति दिन हम याचना करेंगे, खाली लौट कर आयें। वह अवश्य हम भिक्षुकों को अपनी दया की भिक्षा देंगे, जिसके साथ होते हुए हमें किसी सांसारिक वैभव की आवश्यकता न रहेगी।

वाणी की स्तुति से दूसरा लाभ यह होगा कि हम कृतघ्नता के दोष से मुक्त हो जायेंगे। और यह भी एक साधारण नियम है कि जिसका हम प्रतिदिन स्मरण करें उसके मन में हमारे लिये प्रेम उत्पन्न होजाता है, और हमारे मन में उसके लिये प्रीति-भाव फूट २ कर दिखाई देता है। परमात्मा के स्मरण से भी हमें प्रभुका अगाध प्रेम होगा और उसकी ओर से हम पर दया की दृष्टि होगी, जिन पुरुषों का ईश्वर से प्रेम होजाता है सांसारिक पदार्थ उनकी दृष्टि में तुच्छ प्रतीत होते हैं। एक समय की बात है कि जंगल मे महात्मा बुद्ध संध्या कर रहे थे। उसी जंगल में कोई लुटेरा किसी मनुष्य के वस्त्र उठा कर ले गया, वस्त्रों वाला लुटेरे की ढूँढ भाल कर रहा था कि उसे महात्मा बुद्ध बैठे दिखाई दिये। उसके चोर का पता पूछने पर महात्मा बुद्ध ने उत्तर दिया कि ऐ नवयुवक! तुम कपड़ों की चिन्ता में फिर रहे हो, परन्तु तुम्हें आत्मिक धन की चिन्ता नहीं जो प्रति दिन लुटा जा रहा है। तुम मुझ से आत्मिक धन के डाकुओं का पता पूछो।

वास्तव में अवस्था भी यही है, जब तक मनुष्य को धन से प्यार नहीं होता वह उसको बचाने की चेष्टा नहीं करता। इसी प्रकार जिस मनुष्य को अपने अन्तःकरण से प्रेम नहीं वह आत्मा की रक्षा नहीं करता। इसी प्रकार जिस पुरुष को परमात्मा के प्राप्त करने के लिए कोई आकर्षण नहीं है, वह उनके दर्शन नहीं कर सकता। बस प्रीति ही मिलाप का साधन है, इस लिए वाणी द्वारा परमात्मा से प्रीति करनी चाहिये।

वाचक कर्म में बड़ी महान् शक्ति है, इसकी तुलना में सांसारिक सब शक्तियां परास्त हैं। वाणी के द्वारा हम अनन्त परमात्मा को अपने शान्त मन के मंदिर में ला सकते हैं। वाणी ही एक प्रबल शक्ति है, जिसके द्वारा हम गङ्गा की अथाह लहरों को अपने मन में आविष्ट कर सकते हैं, कि ऐ गङ्गा की लहरो! मेरे मनको शान्त करो।

वाणी द्वारा भक्ति के पश्चात्, मानसिक भक्ति और शक्ति बढ़ाने का समय आता है। मन को वश करना साधारण पुरुषों में बहुत कठिन प्रसिद्ध है किन्तु इतना कठिन नहीं जितना कि प्रसिद्ध है। मन को वश में करना अत्यन्त ही दुष्कर उन लोगों के लिए है जो यह सोचते रहते हैं कि हमें क्या करना चाहिये। "चाहिये" की सीमा में सर्व संसारी पदार्थ आजाते हैं। "चाहिये" असीम है अतः मनुष्य की अल्प शक्तियां "चाहिये" इस असीम लक्ष्य

को नहीं पहुंच सकती हैं, अतएव हमें यह सोचना चाहिए कि मैं क्या कर सकता हूं। अगर एक गृहस्थी ने वेद को अपना लक्ष्य रक्खा है, तो उसके लिए आवश्यक हैं कि वह पहले आर्य्यभाषा को पढ़े और फिर क्रमशः संस्कृत पढ़ कर वेद तक पहुंच जावे।

मन को वश में करने की विधि।

मन किस प्रकार वश में आ सकता है, पतंजलि ऋषि मन को वश में करने का यह साधन बतलाते हैं।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" अर्थात् योग के द्वारा चित्त वृत्तियों का निरोध करो, इन्द्रियों को पूर्णतया हम कुचल नहीं सकते, निःसन्देह क्रमशः अपने वश में कर सकते हैं। किसी मनुष्य को यदि एक बड़ी भारी पुस्तक का अवलोकन करना हो तो उसके लिए आवश्यक है कि वह पहले दिन तीन पृष्ट पढ़े और फिर धीरे २ बढ़ाता जाए। यही हाल एक ऐसे रागी का है जिसको तानसेन बनना हो। उसके लिए आवश्यक है कि वह नियमपूर्वक राग का अभ्यास करे। कई पुरुष एक २ घंटा समाधि लगाते हैं किन्तु उनका मन नहीं लगता क्योंकि वह ऊपर लिखित नियमों का पालन नहीं करते हैं। कोई लोग हट के कारण भी अपना समय नष्ट करते हैं। जब किसी पुरुष का समाधि में मन न लगे, तो उसे छोड़ देना चाहिये, फिर जब मन एकाग्र हो जावे तो बैठना चाहिये। क्या

आप संसार में नहीं देखते, कि प्रेम के वश होकर बड़े २ भयानक पक्षी वश में आजाते हैं। प्रेम की दृढ़ शृंखला में एक निर्धन एक महाराजाधिराज को वश कर सकता है किन्तु क्रूरता और बलात्कार से कोई काम नहीं निकल सकता। क्रूरता और ज़बर से ही संसार में घोर संग्राम होते हैं अतः हमें अपने मन को प्रेम से वश में करना चाहिये ताकि यह विवश न हो सके। मन को वश में करने के लिए प्रणायाम को हमारे शास्त्रों में अमृत औषधि बताया है, प्राणायाम की विधि आपने कई बार सुनी होगी, पहले धीरे २ श्वांस को अन्दर ले जावे और रोक रक्खें फिर धीरे २ बाहर निकालें और कुछ देर तक बाहर ही रोक दें।

रोशनआरा एक विद्वान् स्त्री प्राणायाम को अपनी बहिनों के लिए अमृत औषधि बतलाती है। जिन लोगों को आत्मविद्या से परिचय न हो वह प्राणायाम से अपनी छाती को चौड़ा कर सकते हैं, पट्ठों और फेफड़ों को दृढ़ कर सकते हैं। प्राणायाम से रक्त पवित्र और मुख कान्तिमय होता है।

जब हम प्राणायाम से अपने मन को वश में कर लेंगे, तो इसके साथ हमारी मित्रता हो जायगी, फिर इसको जिस ओर हम लगाना चाहेंगे लग जायगा। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हम अपने मन को किस

ओर लगाएं ? वह चंचल मन जो पहले किसी ओर लग नहीं सकता था, अब सुधर गया है। अब वह इस भगवान् के ओ३म् नाम पर लग सकता है, इस मन को हम अपने हृदय में लगा सकते हैं, इन चारों दिशाओं में जिनका वर्णन सन्ध्या में आता है, मन को लगाया जा सकता है। किन्तु मन को उसकी वृत्तियों के साथ एक ही श्वांस पर लगाना चाहिये, भिन्न २ लक्ष्यों पर लगाने से शक्ति व्यर्थ हो जाती है, एक जगह लगाने से शक्ति बढ़ती है। जिस तरह एक चौड़े शीशे पर सूर्य्य की किरणें बड़ी तेज़ी के साथ नहीं पड़ सकतीं और उनसे कोई काम नहीं चल सकता, क्योंकि किरणें बिखरी हुई हैं, किन्तु यदि हम मोटे शीशे को सूर्य्य के सामने रक्खें तो उन किरणों की तीक्ष्णता से हम रोटी पका सकते हैं, कपड़े जला सकते हैं। इसी तरह मन की बिखरी हुई शक्तियों से हम कोई कार्य्य नहीं ले सकते, किन्तु यदि मन एकाग्र हो तो सर्व कार्य्यों में सफलता प्राप्त हो सकती है। अन्त में एक दृष्टान्त सुनाकर मैं अपनी वक्तृता को समाप्त करूंगाः—

एक बार हस्तिनापुर में कौरवों और पांडवों का क्रीड़ायुद्ध (Tournament) था। उनके अध्यापक द्रोणाचार्य ने अपने सर्व शिष्यों को एकत्र करके कहा कि अमुक ऊंचे वृक्ष पर जो उल्लू बैठा है, उसकी आंख को

लक्ष्य करना है, प्रत्येक को इस लक्ष्य का अवसर दिया जायगा, अल्प समय के पश्चात् द्रोणाचार्य ने प्रत्येक से पूछा कि बतलाओ तुम्हारी आंखों के सामने क्या फिर रहा है। किसी ने बतलाया कि मैं अपने सामने क्रीड़ास्थान देख रहा हूं, किसी ने कहा कि मेरे सामने वह वृक्ष है जिस पर उल्लू बैठा है, किसी ने उत्तर दिया, मेरी दृष्टि के सामने इस वृक्ष की वह शाखें हैं जिन में से तीर गुज़र कर उल्लू की आंख में लगेगा, किन्तु द्रोणाचार्य के होनहार शिष्य अर्जुन ने प्रार्थना की, कि महाराज मैं इस समय अपने उल्लू की आंख को देख रहा हूं, मेरी टकटकी उसकी आंख की पुतली की ओर है और आज्ञा की प्रतीक्षा में हूँ, कि आप आज्ञा करें और मैं इसको लक्ष्य बनाऊं, द्रोणाचार्य ने अर्जुन को प्यार किया और कहा कि पुत्र यह सब अनुत्तीर्ण रहेंगे और निश्चित है कि तू ही उत्तीर्ण होगा और ऐसा ही हुआ।

यही हाल भगवान् की पूजा का है। जब तक हम शरीर, वाणी और कर्म्म द्वारा मन को पूर्णतया एकाग्र करके इसके दर्शन की चेष्टा न करेंगे, हमें सफलता प्राप्त न होगी।

——:o:——

ईश्वरपूजा की विधि।

विषय का महत्व।

यह विषय आर्य्य-समाज की महिमा को प्रगट करता है। किसी धर्म्म को आप जांचें, यदि उसमें बड़े २ प्रभावशाली आदमी हों जिनके पास लाखों करोड़ों रुपये हों तो इससे इस धर्म की गम्भीरता नहीं प्रगट होती। प्रत्युत देखने की पहली बात है धर्म्म-विश्वास और उसका कर्म्म। जिस धर्म का कर्म उत्तम हो, जिससे तृष्णा व क्षुधा निवृत्त हो जाती हो, वही सत्यधर्म है। ईश्वर की पूजा से, जैसे कि हमारे शास्त्रों में है मनुष्यों के मन की अभिलाषा शान्त हो सकती है। यदि यह भक्ति आर्य्य-समाज के अन्दर है, तो आर्य्य-समाज में बड़ी शक्ति है क्योंकि वह ऐसी शक्ति है जिससे मनुष्य के आत्मा की प्यास मिट सकती है।

प्रारम्भिक अवस्था

जिसे वेदों और सत्यशास्त्रों में प्रेम है वह अपने से बड़े महापुरुष के पास आता है और पूछता है कि परमेश्वर की आराधना कैसे करनी चाहिये। वह बतलाते हैं कि तू पहले यम नियम सिद्ध कर फिर आगे उपासना की विधि धारण करना। अर्थात् पहली बात अपने आपको

सुधारना सिखलाया जाता है, क्योंकि दर्पण जब तक साफ़ न हो उसमें दृश्य का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। इस लिये धर्म्म के शिक्षक कहते हैं कि स्याही को मल मल दूर करो अर्थात् मल और आवरण जो आत्मा के ऊपर है दूर कर दो। आवरण इस प्रकार कि जल निर्मल है, परन्तु यदि बादल घिरें हों तो चांद और तारागण का प्रतिबिम्ब पानी पर नहीं पड़ता। इसी तरह अविद्यारूपी बादल का आवरण जब तक न हटे, आत्मा परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि वर्षा का आरम्भ हुआ पर्वत का मैल घुल २ कर गङ्गा में बह आया तो इसमें भी किसी प्रतिबिम्ब का दर्शन नहीं हो सकता, क्योंकि उसके प्रवाह के अन्दर मल है। बस, यह दूसरा कारण है, जो दर्शन को रोकता है, अर्थात् आरण अविद्या है, मल पाप वृत्ति है, जो आत्मा पर आने से दर्शन को रोकता है। तीसरी बात है विक्षेप—आकाश निर्मल है, पानी साफ़ है, पृथिवी तेज़ चल रही है, इससे उसमें मूर्ति नहीं देखी जा सकती, पूर्णमासी का चांद षोड़श कला सम्पूर्ण हैं, परन्तु इसका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, इसी तरह जब तक आत्मा में काम, क्रोध, मोह, मान, ईर्षा और द्वेष आदि की वृत्तिरूपी तीक्ष्ण वायु चलती है, परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता, इन तीनों दोषों को दूर करने के लिये यम और नियम के साधन हैं।

ईश्वरपूजा की विधि।

आचार्य्य या ब्राह्मण उपदेश देता है कि तुमने ब्रह्मचर्य्य तप और सत्य आदि सीखा, अब आसन लगा के बैठो। यम नियम बहुत ऊंचा साधन है जिससे अपने आत्मा को उज्ज्वल बना कर आवें। आगे क्या है, स्थिर होकर बैठें, या आसन कभी न जमेगा, चाहे जिस तरह बैठें, अगर देर तक न बैठ सकें, किन्तु पण्डित और साधु तीन २ घण्टे पर्यन्त एक आसन से बैठे रहते हैं। आसन के अन्दर बड़ी महिमा है, इससे चित्त एकाग्र हो जाता है, एक आदमी जब चलता है, इसकी इच्छा इसके मस्तिष्क से निकल कर उसके पांव में आती है, जो कभी दायें और कभी बायें पांव को उठाती है, इस तरह चलने में भुजाओं को हिलाते हैं, तो चित्त इसमें जाता है, और देखने में आंख में चित्त जाता है। इस प्रकार एक २ रोम में हमारी इच्छा प्रकट रहती है। जिस तरह मशीन के अलग २ पुर्जे हैं इसी तरह हमारी इच्छा की बिजली चलती रहती है।

लेकिन भगवान् की पूजा में जाना है, वहाँ परमात्मा के आगे सिर झुका कर बैठना है, तो जैसे मशीन का जब असली पुर्जा बन्द कर दिया जाता है, सब बन्द हो जाते हैं, क्योंकि बिजली अपने कोश में आजाती है। इस तरह सारी इच्छाएं जहां हम ध्यान लगाते

हैं, वहाँ आकर इकट्ठी हो जाती है यह आसन की महानता है।

जो खड़े होकर पूजा करते हैं, जो चलते हुए परमेश्वर का नाम लेते हैं, अच्छा करते हैं, उन से हमें द्वेष नहीं, किन्तु आत्मिक भूख प्यास की इससे शान्ति नहीं हो सकती, क्योंकि ख्याल एक जगह नहीं जमता। लेकिन ज्योंही वह एकाग्र होकर बैठता है, सर्व अङ्ग इसके वश में आ जाते हैं, इस समय एक ओ३म् के लक्ष्य पर इसका ध्यान आ जाता है। इसी बात को उपनिषद् में कहा है विद्वान् लोग—योगी लोग कहते हैं कि यह पूजा की असली विधि है, इस तरह भगवान् की पूजा की जाती है। यह आपकी पूजा की महानता है, कि जब आप बैठते हैं तो आपका ध्यान जम जाता है।

लेकिन जब आप अकड़ कर बैठते हैं, तो मन हर एक अङ्ग की ओर प्रवृत्त होजाता है, और ढीला बैठने से पट्ठे ढीले पड़ जाते हैं, इस समय इच्छा शरीर के हर एक हिस्से में प्रगट नहीं होती, किन्तु एक जगह आजाती है। उपासना एक प्रकार की आत्मिक नींद है जिसमें शारीरिक आखें बन्द होजाती हैं। डाक्टर जब देखते हैं कि रोगी को सोने की दवाई से नींद नहीं आती तब कहते हैं, कि जब सोने लगो सोने का ख्याल दृढ़ हो, न किसीकी ओर ध्यान करो, न किसी को याद करो, फिर

भी नींद न आवे तो शरीर के किसी भाग में ध्यान लगा दो। अमीरों को फुलका खाने से भी नींद नहीं आती तो इसी औषधि का प्रयोग करते हैं, और सफलता प्राप्त होती है। इसी तरह आत्मिक वैद्यों ने बहुत जांच कर यह नुसखा तय्यार किया है, कि जब तुम चाहो कि नींद आजावे तुम चारों ओर से ख्याल हटाओ और अपने शरीर के एक भाग में लगाओ, लेकिन शरीर में शिथिलता हो। हमारा संकल्प सारे शरीर पर शासन करता है। यह तुम्हारे आधीन है कि जब चाहो शरीर को ढीला बना दो, और जब चाहो खड़ा करो। प्रोफ़ेसर राममूर्ति जब अपनी छाती को दृढ़ बनाता है तो वह लोहे की तरह हो जाती है। लोग लोहे के संगल लगा कर खींचते हैं, क्या मज़ाल कि एक बूंद भी रक्त निकले, कारण क्या कि छाती को दृढ़ बनाने की इच्छा उस समय प्रबल होती है। सारांश यह कि हम अपने शरीर पर शासन कर सकते हैं। बस, आसन ऐसा हो कि एक जगह सुख से बैठें, जब शरीर ढीला हो इच्छा हटा कर एक जगह ले आवें। जब इस तरह से आसन सिद्ध हो जाता है, तो एक भक्त परमात्मा की पूजा के लिये बैठता है। तब फिर वह देखता है, कि इसके पश्चात् और क्या करना चाहिए।

स्तुति वा प्रार्थना।

भगवान् की पूजा के लिये स्तुति वा प्रार्थना की बड़ी

आवश्यकता है। स्तुति क्या है ? उसकी महिमा का गायन और उसके स्वरूप का वर्णन। अर्थात् वह आंख की रोशनी देता है, लोक लोकान्तर इसके अधार पर है—आदि २। प्रार्थना यह है कि परमात्मा की आत्मिक आग पापों को जलाने वाली है, मेरी अपवित्र आत्मा किस तरह शुद्ध हो सकती है, आत्मा की ग्लानि क्यों कर दूर हो सक्ती है मेरे पापों को दूर करो—इत्यादि।

जो अन्न स्वयं खाते हैं और परमात्मा को नहीं देते, उनका अन्न शुद्ध नहीं है। अन्न कैसे पवित्र हो—कैसे धोया जावे, परमेश्वर क्या खाता है ? नहीं, हमारे राजा पांच हजार मील से ज्यादा दूर हैं, मगर उनके प्रतिनिधि को जो दिया जावे उनको पहुंच जाता है, तो फिर परमेश्वर जो हमारे समीप है, यदि इसके प्यारों को धन दें तो क्या इसको न पहुंचेगा। इसको देना क्या है ? विद्या के लिये, संस्कृत की वृद्धि के लिए जो धन देते है, यही इसको देना है, अनाथ चारों ओर हाहाकार मचाते हैं, यदि आपका कलेजा उछलता है, आपकी भुजाएं मिलाप को उठती है तो यह शुभ कार्य्य है, यही परमात्मा को देना है, यही समर्पण है। हे परमेश्वर ! हमारी लक्ष्मी को शुद्ध करो, हमारा आत्मा शुद्ध हो, हमारा धन शुद्ध हो, फिर प्रार्थना यह है कि मैं निर्बल हूं, मुझे बल दो। हे आत्मिक नदी ! तू आ और वह जा कि जिससे मेरा आत्मा शुद्ध हो जावे, मेरे हृदय

की मैल बह जावे इसी तरह हर चीज परमेश्वर से मांगनी चाहिये यह आत्मा को पवित्र करने का दूसरा साधन है। हमारी वाणी में बड़ा प्रभाव है, वह जगदीश्वर जो करुणा-मय है जो हमारा दयालु पिता है, क्या हमारी आवाज को न सुनेगा ? प्रायः यह कहेंगे कि यह तो कर्म नहीं है, किन्तु क्या यह हमारी बिलबिलाहट और आत्मिक चिल्लाहट कर्म नहीं। आपके आंख कान धोखा दे सकते हैं, मेरे हाथ तलवार का काम दे सकते हैं, यह दृष्टि में फूल से कोमल बने हुए हैं, लेकिन एक मानसिक कर्म्म है जिसमें धोखा नहीं है, वह सदा एक सा रहता है। यदि किसीकी टोपी मेरी लकड़ी से उतर गई और मैंने मन से नहीं उतारी, तो वह यह समझ कर कि साधु से धोखे से उतर गई होगी क्षमा करदेगा। यदि कोई मेरे पांव पर पांव रख कर चला जावे किन्तु मन से पांव न रक्खा हो तो मैं समझूंगा कि बेख्याली है, मेरे मन पर कोई प्रभाव न होगा। लेकिन इसके विरुद्ध यदि मैं मन से किसीकी टोपी उतार लूं तो चाहे वह मुझे संन्यासी समझ कर मुंह से कुछ न कहे परन्तु उसके दिल पर बुरा असर होगा। सिद्धान्त यह निकला कि मन से जो कर्म होता है वह बड़ा शक्तिशाली होता है। यदि मन किसी अङ्ग में नहीं है तो इसका कर्म कभी प्रबल न होगा। सोचने की बात है, कि जब मन इन्द्रियों के कर्म प्रबल बनाता

है तो वह मन स्वयं कितना प्रबल होगा। बस, यदि इससे ईश्वर की पूजा की जावेगी तो कैसी शक्तिशाली पूजा होगी। स्तुति स्वयं मानसिक कर्म्म है प्रार्थना वाचिक कर्म्म है, इस लिये इसका असर अवश्य होगा।

स्तुति की आवश्यकता।

प्रायः कहेंगे कि स्तुति से ईश्वर प्रसन्न हो जाता है तो क्या वह खुशामदी है, यह एक प्रश्न है जिसके उत्तर देने की आवश्यकता है। सज्जनगण! परमेश्वर खुशामद नहीं चाहता, इसके लिये खुशामद कोई चीज नहीं, प्रत्युत यह बात है कि जैसा हम ख्याल करते हैं वैसे ही बनते जाते हैं, वैसी हमारे अन्दर तबदीली होती है, श्रीकृष्ण जी ने अपने शिष्य से कहा था कि पाप का जब अंकुर पैदा हो तब ही इसको मल देना चाहिए क्योंकि हमारा मानसिक कर्म्म बड़ा प्रबल है, हे अर्जुन! पहले जो भगवान् का चिन्तन करता है चिन्तन के बाद ध्यान, ध्यान के बाद संग फिर वृत्ति हो जाती है। चिन्तन आपके स्वभाव को बनाता है, मस्तिष्क ढालता है। चिन्तन के अन्दर बड़ी शक्ति है। कुसंग से बुरी इच्छा होती है फिर क्रोध फिर मोह आदि होकर मस्तिष्क के अन्दर एक अंधेरा छा जाता है, और विवेक नहीं रहता इस लिये आत्मा दब जाता है। यह चिन्तन बड़ा पेटू है इसका कोई ठिकाना नहीं है, चिन्तन पाप का कैसे हट सकता है?

इसके विरुद्ध कर्म किया जाए, अर्थात् पुण्य का चिन्तन किया जावे। जैसे जब आग तेज़ हो तो उस पर पानी डाला जाता है जो आग के विरुद्ध है। भगवान् के चिन्तन से परमात्मा का संग होता है। बस, अगर किसी काम का दृढ़ संकल्प किया जावे और किसी मनुष्य ने संसार में वह काम कर पाया हो अर्थात् असम्भव न हो तो वह संकल्प अवश्य पूरा होगा। स्तुति और प्रार्थना मन का कर्म है स्मृति हर काम में सहायता करती है, जिस बात का चिन्तन किया जाए वह हमारे मस्तिष्क का अंग बन जाता है, ऐसा मनोविज्ञान जाननेवाले कहते हैं। बस, अगर कोई परमेश्वर की प्राप्ति चाहता है, तो वह परमेश्वर का चिन्तन करे, पंडित महात्मा अपने पढ़े हुए को हर दम थोड़ा ही दोहराते हैं। मगर जब इरादा करते हैं तब बराबर कहने लगते हैं। इसी तरह जब भक्त ईश्वर की चर्चा करता है विशेष कर प्रातः और सायं, तो जिस तरह पढ़ा हुआ याद आ जाता है, ऐसी ही उसकी दशा होती है। बस, मन कर्म फल रखता है कि हम परमेश्वर के समीप जाते हैं, हमारे और परमेश्वर के बीच में समय का अन्तर नहीं है, देश का अन्तर नहीं है। हां अज्ञानकृत अन्तर अवश्य है। तो ज्यों ज्यों अज्ञान कम होता जायगा, हम उसके समीप होते जायेंगे, अज्ञान का पर्दा जो आत्मा पर पड़ा हुआ है, उसको ज्ञान की कैंची से काटना चाहिए।

परमात्मा के स्वरूप की कैंची लेकर अविद्या के पर्दे को काटो। जब बुद्धि स्थिर हो जावेगी तो बोध होगा कि परमात्मा का यह स्वरूप है, यही उसका दर्शन है यही उसकी उपलब्धि है।

बाणी का प्रभाव।

प्रत्येक पुरुष अपने शब्दों में वेदों के मन्त्रों के द्वारा गायन कर सकता है। बहुत सी देवियां समझती हैं कि चण्डी आदि देवियों के अंदर बड़ा बल है, मगर वह नहीं जानतीं कि प्राचीन सीता सावित्री आदि देवियों के दुःख कैसे दूर हुए थे। वह वेद की ऋचाएँ हैं, जिनसे अनन्त देवियों के क्लेश दूर हुए। मन की रचना आत्मा पर बड़ा प्रभाव डालती है। एक मनुष्य किसी भाषा को बोलता है, चाहे लोग न समझें फिर भी उसका कुछ प्रभाव पड़ता है, कि शब्द कैसे कोमल हैं, बाणी कहती है कि कैसा मीठा रस है, इत्यादि। अभी एक पण्डितजी ने संस्कृत में व्याख्यान दिया था कई लोग नहीं समझते थे फिर भी कितने आदमी प्रसन्न मालूम होते थे, इस लिये कि उसमें कोई भाव था जो उनके आत्मा पर असर डालता था चाहे शब्द का उस समय बाह्य प्रभाव न हो, किन्तु यह आत्मारूपी ज़मीन पर पड़ कर कभी ज़रूर फल ला देगा और दशों दिशाओं में फैलेगा शब्द का उच्चारण बाणी में बड़ा प्रभाव रखता है, ऋचाए पढ़ कर लोग पूर्व समय

में बड़े २ यज्ञ किया करते थे, जिनमें ऋचाओं का असर आत्मा पर और औषधियों का असर शरीर पर होता था। इस लिये वेदों की ऋचाओं को याद किया जाय, और उनको मन से प.ा जाय। हममें कितने हैं जो शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते, लेकिन इससे पीछे न हटना चाहिये प्रत्युत काम के लिये आगे बढ़िये। यदि आप न कर सकेंगे तो आपके पुत्र आदि ज़रूर पूरा करेंगे। एक मुसलमान अपने बच्चे को कुरान ज़रूर पढ़ाता है, मगर आर्य्यसमाजी के बच्चे आर्य्याभिविनय के मंत्र और ऋचायें नहीं जानते। कारण यह है कि आप के घर में नाविल भरे पड़े हैं, उनके पुस्तकालयों की शोभा उपन्यासों से है, लेकिन जिनके घर में वेद हैं, जो शुद्ध मंत्र पढ़ सकते हैं, उनको शान्तिपाठ, स्वस्तिवाचन के मंत्र हवन के मंत्र याद हैं। शोक है कि प्रधान और मंत्री तक के घर में वेद नहीं है। जिस तरह आभूषण डब्बों में रक्खे जाते हैं उसी तरह वेदों की प्रतिष्ठा होनी चाहिये। उनको रेशमी रूमाल में रखना चाहिये। ऐसी रीति डालिये।

संक्षेपतया मन से स्तुति आप के मनोरथ को पूरा करने वाली होगी। पूर्व से पश्चिम तक सब आर्य्यलोग एक समय में मन से ईश्वर की प्रार्थना करें तो वह बिजली की लहर की तरह कभी खाली न जावेगी, और एक २ आवाज़ बिजली की धारा होगी, जो चारों दिशाओं को पवित्र

करेगी, एक बड़ी शक्ति पैदा करेगी, आप विश्वास करें कि वेद की ऋचा बड़ा बल रखती है।

प्राणायाम।

जब स्तुति और प्रार्थना हो चुकी है तो एक और कर्म है, जिससे हम उसकी पूजा के योग्य बनें। वह क्या है? प्राणायाम। मुझे आपके बीच में बोलने का कम अवसर प्राप्त हुआ है, परन्तु सुनता हूँ कि इधर के लोग बड़े कर्मकांडी हैं। सुनिये, जब मकान साफ़ है, दिल साफ़ है तो प्राणायाम से आराधना करनी चाहिये।

प्राणायाम का प्रत्येक अंग पर क्या प्रभाव होता है, यह गुह्य बात है। एक आर्य्य जब प्राणायाम करने बैठता है, तो 'ओं भूः ओं भुवः ओं महः' इत्यादि कहता है। इससे पहले मन्त्र में आया था, 'ओं भूः पुनातु शिरसि' इत्यादि। अर्थात् अब विशेषण छोड़ केवल नाम ही रक्खा है।

कहते हैं श्री कृष्णजी ने काला नाग नाथा था, निःसन्देह राम, कृष्ण और दयानन्द की आत्मा जिसके अन्दर है वह अब भी काले नाग को यमुना में नाथ सकता है, गुसाईं तुलसीदास जी का कथन है किः—

"राम कथा सुरसरिधारा" परमेश्वर की कथा आसमान से आती है; इसलिए यही गङ्गा है। विधि और निषेध रूप से जो कर्म की कथा है, वह यमुना है, उसके अन्दर एक नाग रहता है, जिसके बच्चे पानी को अपवित्र

करते हैं। वह नाग कौन है जिसके सहस्रों फण हैं ? वह मन है। वेदों की कथा क्यों भली प्रतीत नहीं होती ? वह विष कौन फैलाता है ? यह अपवित्र मन है।

उस अपवित्र मन के सहस्रों फण हैं, उसकी नासिका में नुकेल उस समय दी जा सकती है, जब कर्म कथा रूप की यमुना में गोता लगायें, वेदों और शास्त्रों की कथा, यही गङ्गा यमुना है, यदि साहस करके इसमें कूद पड़ो तो सफलता अवश्यमेव होगी। परन्तु यदि किसी प्रकार भयभीत होकर गिरोगे तो पान्नयम (pneumonia) हो जायगा और ऐसे पुरुष कदापि नाग को मार नहीं सकेंगे। अतः कूदिये साहस करके कर्म की कथा रूप यमुना में और डुबकी लगाइये एक किनारे, अर्थात् ओं के सिरे से। प्राणों की जीवन शक्ति सिर में है, वहां ईश्वर का चिन्तन कीजिये, मन को चक्कर दीजिये, जिस प्रकार सरकश के घोड़े को चक्कर देकर इतना सीधा किया जाए कि कोड़ा लगाने की आवश्यकता न रहे। तब उसको नेत्र में लावें। चिन्तन करें कि ईश्वर हमारे नेत्र पवित्र करें, फिर विचार करें कि कण्ठ को पवित्र करें।

आपको ज्ञात है कि यदि कण्ठ की एक रग बिगड़ जाय तो शरीर का सारा कार्य्य बिगड़ जावेगा। कारण यह है कि शरीर की सब नाड़ियां कण्ठ में एकत्रित होती है। यदि यह इच्छा है कि सब इन्द्रियां सुखी रहें तो

कंठ के पवित्र होने का ध्यान करना चाहिए। फिर हे ईश्वर! मेरे हृदय को बड़ा बनाइये, हृदय को विशाल रखना चाहिये। यह नहीं कि यह बंगाली हैं, यह पंजाबी हैं। ऐसा ख्याल करना छोटे हृदय की बात है। फिर चिन्तन करें, जिसके अन्दर चैतन्य शक्ति है, जो सब संसार का उत्पत्तिकर्त्ता है, वह प्रभु मेरी नाभि को पवित्र करें। नाभि में दो शक्तियां हैं, एक संसार को उत्पन्न करने की, दूसरी आत्मिक अर्थात् भक्ति की लहर ऊंचा करने की। इससे विचार या ध्यान ऊपर को जाता है अतः इससे ध्यान बहुत उपयुक्त है। फिर कहा जाता है कि परमेश्वर मेरे पांव को पवित्र करे, अर्थात् "ओं तपः पुनातुः पादयोः"।

तप और पांव का क्या सम्बन्ध है, पांव के अन्दर तप रहता है अतः पांव को ध्यान और स्पर्श कर के नमस्कार करना चाहिए।

प्रायः पुरुष यदि हाथ में छड़ी हुई, तो छड़ी उठा कर उससे "नमस्ते' कहते हैं, ऐसा नहीं, प्रत्युत हाथ जोड़ना और सिर निवाना चाहिए। एक पुरुष जो पर्वत के शिखर या किसी बड़े मीनार पर चढ़ता है वह नीचे वाले आदमियों को छोटा देखता है।

वास्तव में वह दोनों बराबर हैं। बस "नमस्ते" इस तरह करनी चाहिये, कि आंखें नीची हों। आंखों के

अन्दर प्रीति आ जाय, मन और वाणी भी उधर हो। समीप आने पर आसन दो, यह सनातन धर्म है यह सनातन मर्यादा है। हाथ जोड़ने में क्या बात है? प्रयोजन यह है कि हमारा आपका ऐसा सम्बन्ध है अर्थात् जिस प्रकार ये हमारे दोनों हाथ मिले हुए हैं, इसी प्रकार हमारा आपका हृदय मिला हुआ है। सिर झुकाने में यह बात है कि दिमाग़ में सबका ज्ञान रहता है, आप जानते हैं जिसके दिमाग़ का हिस्सा निरोग है, वही बुद्धिमान् समझना चाहिये। बस, सिर इस लिये झुकावे कि मैं यह आदर, यह सत्कार अपने दिमाग़ से अपने मास्तिष्क से करता हूँ।

पांव की रक्षा क्यों आवश्यक है?

फिर पांव छूना चाहिये, क्यों पांव छुआ जाए? क्यों मुंह या आंख या कान आदि न छुआ जाए। सुनिये, शंकर और दयानन्द के दिमाग़ को कौन उठाए हुए था; ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी और महात्मा मुन्शीराम जी के मस्तिष्क को कौन उठाए हुए हैं, इस प्रकाश और ज्ञान के पुंज को जो उठाता है वह पांव है। यह पांव की महिमा है जो इन सबको उठाये हुए हैं। इस एक पंडित या महात्मा पुरुष के पांव बड़े तपस्वी हैं अतएव पांव की ओर देखने में, पांव के छूने में यह प्रयोजन है कि इन चरणों से लिपट जाऊं जो आपको उठाये हुए

हैं, यह भाव है आपके नमस्कार के अन्दर। इस लिए यह प्राचीन मर्य्यादा है।

ब्राह्मण सिर है, क्षत्रिय भुजा है, वैश्य उरु है और शूद्र पांव है, तो ऐसा कभी न होना चाहिये कि पांव को कांटा लगे और मुंह से आह न निकले, या हाथ इसको न निकाले। ऐसी अवस्था में यदि आंख न रोये तो वह आंख ही नहीं है। बल्कि ऐसा मनुष्य गूंगा और बहिरा है। इसी प्रकार पांव को कांटा लगने पर जो दिमाग़ बेचैन नहीं होता, वह दिमाग नहीं है लकड़ी है, पत्थर है, वह शरीर कदापि स्थिर नहीं रह सकता, जिसके अन्दर पांव की रक्षा का ध्यान नहीं है।

आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हैं, लेकिन आपको अपनी शूद्र जातियों का भी ख्याल करना चाहिये, जो आपके पूर्वजो को मानती हैं; जिन्होंने आपके पूर्वजों की सेवा की है। हे मस्तिष्क! तू निश्चिन्त होकर बैठा हुआ है, परन्तु तुझे अपने पांव, हाथों और अंगूठों की भी ख़बर है? अगर नहीं है, तो याद रख, कि तेरी स्थिति अत्यल्प है, शीघ्र नाश को प्राप्त हो जायगी। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य छोटों को न उठावें, उनकी मैल न धोवें तो उन्हींका पांव अंग बिगड़ रहा है। इस लिए चाहिये कि उनकी बुराइयां छुड़ा दें, उनको उपदेश करें कि तुम ऐसे २ उत्तम कर्म करो, इत्यादि।

जिनके पांव कट जाते हैं उनको चलने फिरने का कोई स्थान नहीं रहता । आपको ज्ञात है कि आपके सब अंग भली प्रकार हैं, कोई बुरा नहीं है इस लिये चलिए महर्षि की आज्ञानुसार गांव २ में शूद्रों को धर्मशिक्षा व भलाई सिखलाइये, इत्यादि ।

पांव का आदर यह नहीं कि अंगूठा मुंह में डाल लिया जाय किन्तु यह है कि यदि इसमें कांटा लगे, तो निकला जाये इसकी मैल धोई जाय इत्यादि । बस जो ऐसा कहे कि तपस्वरूप परमेश्वर मेरे पांव को पवित्र करें, उसको चाहिये कि प्रेम से समाज के पांव अर्थात् शूद्रों से सद्व्यवहार करे ।

मन को वश में करने की विधि ।

आप जानते हैं तार का यह प्रबन्ध है कि कुछ हैड टेलीग्राफ आफिस होते हैं, जैसे कलकत्ता, बन्नू, पेशावर इत्यादि में । यदि इनमें तारयन्त्र (Battery) को हिलाय जाय, तो रास्ते के छोटे २ तारघरों में सुई अपने आप हिलने लगती है । बस, ऊपर जितनी इन्द्रियों का नाम आया है, यह सब कोष हैं, चक्र है, और छोटी अंगुलियां आदि छोटे २ तारघर हैं । इस लिए सिर से लेकर पांव तक के बार २ चेतन से यह प्रयोजन है कि मन की विद्युत को बार बार चक्कर दिया जाय, जिससे वह वश में रहे । इसके समझने के लिए एक दृष्टान्त

सुनिये । एक सेठ जी इस प्रकार भृत्य रखना चाहते थे, कि कुछ वेतन देना न पड़े, केवल रोटी में रोटी खा लिया करे । एक आया और उसने स्वीकार कर लिया, केवल उसने यह शर्त की कि जिस समय कुछ कार्य्य न होगा, उस समय जो हानि कर डालूं आप बुरा न मानेंगे, सेठ ने भी स्वीकार कर लिया और नौकर रख लिया, छः मास के अन्दर जितना पिछला काम एकत्रित हुआ था, सब साफ़ कराया, अब कुछ न रहा, तो लगा नानाप्रकार की हानि करने, कहीं कोई वस्तु तोड़ फोड़ डाली, कहीं छाती पर सवार होकर मारने लगा, इत्यादि ।

बेचारा सेठ बहुत घबराया, कि क्या किया जाय, एक दिन एक महात्मा आये, उन्होंने एक बांस मंगवाया और सेठ से कहा, जब कोई काम न हुआ करे तो इससे कहो कि यह इस बाँस पर चढ़ा उतरा करे, दस बीस दिन के पश्चात् यह तुम्हारे आगे हाथ जोड़ेगा ।

मित्रो ! मन बिगड़ा हुआ है जब कोई कार्य्य नहीं होता, तो ऊपर के दृष्टान्त वाले भृत्य की न्याईं नाना प्रकार के हानि वाले कार्य्य करता है, परन्तु एक विधि है । बांस रूपी शरीर इसके गले में एक जंजीर है, "ओं भूः पुनातुः शिरसि" आदि मन्त्र को डाल कर इसको बार २ ऊपर नीचे चढ़ाया और उतारा जाय तब यह वश में रहेगा, जब कोई काम न हो तब यही कियां जाय । यदि

मन वश में हो जाय तो ऐसी इच्छा शक्ति पैदा हो जाय, कि संसार प्रदक्षिणा करने लगे। बस, आप इसके द्वारा पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण एक लहर पैदा करो। यह विद्युतधारा आप सबको एक बनायेगी, आप केन्द्र होंगे, सारा संसार आपकी प्रदक्षिणा करेगा।

आइये! भगवान् की महिमा को चिन्तन करते हुए, देखिये कि संसार के मुक़ाबले में किस क़दर यह विचित्र और महाभाव है कि जो संसार की किसी पुस्तक में भी न मिलेगा।

बस, इसमें जो विधि बतलाई गई है, उसे मन लगा कर करना चाहिये, ताकि आपकी इच्छा पूर्ण हो, आप की आत्मा उज्ज्वल हो, परमात्मा का मिलाप हो, भूख प्यास मिटे और आत्मिक तृप्ति हो।

भगवन्! कृपा करके हमें सिखायें कि हम कैसे आपकी पूजा और स्तुति करें।

——:o:——

ईश्वर भक्ति।
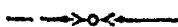
ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता।

मनुष्य जन्म अनेकानेक पुण्यों से मिलता है और आर्य्य कुल में उत्पन्न होकर सत्संग की ओर रुचि होना तो अहोभाग्य है। वेदों में परम पिता ईश्वर से भक्तजन प्रार्थना करते हैं कि हे पिता जी! आप अपनी सामर्थ्य से हमारे हृदयों में ब्रह्मज्ञान की प्रेरणा कीजिये, ब्रह्मज्ञान बढ़ाइये। जिस प्रकार साधन से धन प्राप्त होता है और लोहे से लोहा कटता है उसी प्रकार परमेश्वर का प्रेम भी प्रभु की कृपा से ही प्राप्त होता है। जिसको परमात्मा अंगीकार करते हैं वही उनके निकट जाता है। ईश्वर की कृपा से ही सब कुछ प्राप्त हो जाता है अतः परमात्मा की कृपा से मनुष्य हृदय में ब्रह्मज्ञान की वृद्धि होती है और ब्रह्मज्ञान की प्रार्थना की जाती है, क्योंकि धन के बिना कुछ नहीं हो सक्ता। जहां भोजन की आवश्यकता हो, वहां व्याकरण के सूत्र और ब्रह्मज्ञान के प्रसाद से उदरपूर्णा नहीं होती। हां! धन निर्बलों को दुःख देने के लिए न हो और दूसरों को चिढ़ाने के लिए व्यय न किया जाय। धन दान करने और दान दुःखियों की रक्षा करने में व्यय होना चाहिये। आर्य्यधर्म्म परमात्मा और

प्रकृति दोनों को प्राप्त कराता है। जहां विष्णु है वहां लक्ष्मी निवास करती है। जहां भगवान् है वहीं भगवती रहती है। शिवको शक्ति नहीं छोड़ सकती, इसी लिये ही वेदमन्त्रों की प्रार्थना में ब्रह्मज्ञान और लक्ष्मी दोनों पदार्थों की याचना की गई है।

ज्ञान प्राप्ति के साधन।

एक मन्त्र में प्रार्थना है कि "हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आपके प्रकाश द्वारा हमारे पाप दूर हों। हम आपकी पूजा करें"। परमात्मा की पूजा ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्यादि है। सन्ध्या के द्वारा जहां हमें अन्य शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं, वहां यह भी शिक्षा मिलती है कि हम सब स्त्री पुरुषों की भलाई के लिए परमात्मा से प्रार्थना करें। जैसे सन्ध्या के एक मन्त्र का अर्थ है कि "हे परमात्मन्! आपकी ज्योति से हमारे हृदयों में ब्रह्मज्ञान बढ़े" क्योंकि सबके कल्याण से हमारा भी कल्याण होता है। सोना सराफ़ से कहता है कि क्यों तुम मुझे टुकड़े २ करके काटते हो, आगमें डालकर तपाते हो, इससे मुझे दुःख नहीं होता, क्योंकि आग में तपाने से मेरी लाली बढ़ती है। कसौटी पर परखते हो, इससे मेरा खोटा खरापन प्रकट होता है परन्तु जब तुम मुझे काले मुंह वाली रत्ती के साथ तौलते हो तो मुझे महादुःख प्राप्त होता है। इसी लिये वैदिक प्रार्थना में बहुवचन का प्रयोग किया गया है कि

सब लोग अच्छे बन जायें। इस लिए सबकी भलाई के निमित्त स्वामी दयानन्द जी ने आर्य्य-समाज की नींव रक्खी और इसका नियम बनाया, कि संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है। हमारी भलाई उस समय तक नहीं हो सकती, जब तक कि सर्व संसार की भलाई न हो। यदि हमारा पड़ौसी दुःख से हाहाकार कर रहा है तो हम सुखी नहीं रह सकते। यदि पांव की अंगुली में कांटा लगे तो सारा शरीर व्याकुल हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्तियों के समूह का नाम जाति है एकको दुःख अथवा कष्ट होने से जाति बिलबिला उठती है। सब सुखी हों तो हम सुखी रह सकते हैं। सबके कल्याण में हमारा कल्याण है, सारे संसार के लिये मंगलकामना करें तो हम अपनी ही मंगलकामना करते हैं। जिस प्रकार दर्पण की तरफ़ मुख करें तो हमें अपना मुख दृष्टिगोचर होता है, इसी प्रकार मंगलकामना भी लौट कर हमारे ही समीप आती है। रागी अगर ध्यान से नहीं गाता और उसका ध्यान गाते समय कभी इधर कभी उधर जाता है तो श्रोतागण प्रसन्न नहीं होते। कहते हैं कि व्यर्थ समय नष्ट कहा रहा है। परन्तु यदि वह ध्यानपूर्वक गाता है तो सब प्रसन्न होकर सुनते हैं। बात यह है कि जो स्वयं किसी कार्य्य में लीन नहीं होता उसका किसीके मन पर प्रभाव नहीं पड़ता। जिस प्रकार अलापा

हुआ राग, रागी के मन में वापिस आता है इसी प्रकार मन वचन और शरीर से किया हुआ कर्म वापिस लौटता है। दूसरों का मंगल चाहने से हम मंगल-स्वामी बन जाते हैं। वह माता नहीं, जो सन्तान के लिये न पका कर केवल अपने लिये भोजन बनाती है, वह पुरोहित पुरोहित नहीं कहला सकता जो स्वयं शास्त्र पढ़ता है और अन्य लोगों को नहीं पढ़ाता। जीवन वही है जो दूसरों की भलाई के कर्म करे। अगर दूसरे ज्यादा अच्छे न हों तो भलाई करने से हम तो स्वयं अच्छे हो सकते हैं। प्रायः लोगों का विचार है कि रोगी की सेवा और उसपर दया नहीं करनी चाहिये। जिसे परमात्मा ने दण्ड दिया है उसको दुःख से मुक्ति दिलाना ठीक नहीं। परमात्मा अप्रसन्न होंगे, अगर उनके कैदियों को कैद से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया जायगा।

किन्तु कैदियों पर दया न करना महा अनर्थ है। जिस प्रकार बूअर कैदियों को भारतीय भोजन और वस्त्र आदि देते थे तो भारत सरकार (जो इन्हें ट्रांसवाल युद्ध में से कैद करके लाई थी) अप्रसन्न नहीं होती थी इसी प्रकार परमात्मा उन दयालुओं पर जो कैदियों पर दया करते हैं, अप्रसन्न नहीं होते। कारागार में जाने पर राजा और उनके शासक भी कैदियों पर दया करते हैं। एक पुरुष रोगी है, दुःख से बिलबिला रहा है तुम उसके

निकट से जा रहे हो, भगवान् वेदों में उपदेश देते हैं कि दयालु और दानी बनो। यदि आप रोगी पर दया नहीं करते तो भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करते हो। ऋषि पतंजलि कहते हैं कि मित्रता और करुणा से चित्त प्रसन्न होता है। सर्व मित्र बनो; जहां शत्रुता की संभावना हो वहां भी मित्रता का व्यवहार करो।

साधु और पण्डित को देख कर मूर्ख, धनवान् को देख कर निर्धन, और बलवान् को देख कर निर्बल लोग द्वेषाग्नि में जलते हैं। धनवानों पर दया दिखाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वह स्वयं लोगों पर दया कर रहे हैं। धर्मशालाएं उनकी बनी हुई हैं, जल पिलाने के पौशालायें बन रही हैं, भोजन बांटने के लिए क्षेत्र चल रहे हैं अतः दया करने की आवश्यकता दीन दुःखी पर है जिसके पास तन नहीं क्योंकि वह रोगी है, धन नहीं क्योंकि वह निर्धन है, विद्या नहीं क्योंकि विद्याहीन है, प्रत्येक का प्रहार सहन कर रहा है। जब हम किसी पर दया करते हैं तो हमारा चित्त प्रसन्न हो जाता है दुःखियों पर दया करने से ही प्रसन्नता प्राप्त होती है, हमारी दया से परमात्मा के नियम नहीं टूट सकते। हम सहस्रों औषधियां दें, चिकित्सा करें जिसकी आयु व्यतीत होचुकी है वह जीता नहीं रह सकता। जब धन्वन्तरि ऐत्रेय, लुकमान और अन्य प्रसिद्ध वैद्य भी मृत्यु का ग्रास

हो गये तो हमारी दया किसीको मृत्यु से नहीं बचा सकती। आनन्द प्राप्त करना मनुष्य जीवन का उद्देश्य है अतः हम दया के द्वारा आनन्द प्राप्त करते हैं।

जब तक हमारे मन में दया का संचार न हो तब तक हम दयालु परमात्मा के निकट नहीं पहुँच सकते। दयामय परमात्मा के निकट कोई हत्यारा रक्त से हाथ रंगे हुए नहीं पहुंच सकता। किन्तु करुणामय भगवान् के निकट पहुंचने के लिये इस सृष्टि के अन्य जीवों पर दया का व्यवहार करना आवश्यक है, एक निर्बल दुकानदार बलवान् होना चाहता है कि जिससे रात्रि के समय कोई चोर बलात्कार लूट न ले किन्तु वह सारा दिन तकियों और गदेलों पर लुढ़कता रहता है, यदि बाज़ार जाता है तो गाड़ी पर से पग नीचे नहीं उतारता, सेर भर भारी वस्तु उठाता है तो कांपने लगता है, क्या इन साधनों से उसके शारीरिक अङ्ग हृष्ट पुष्ट हो सकते हैं और वह बलवान् हो सकता है ? बल प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि मनुष्य मैदान में जाकर व्यायाम करे, दूसरे मनुष्य के साथ कुश्ती करके उसको रेले, कभी वह उसे धकेले जिससे पिलपिले अंग पुष्ट और सुडौल हों। बिना व्यायाम के बल प्राप्ति नहीं हो सक्ता। धनवान् हिन्दू व्यायाम नहीं करते, इसी कारण निर्बल और कायर बने रहते हैं। उनके लिये आवश्यक है कि वे खुले मैदान में

जाकर दण्ड पेलें और मुद्गर उठायें। जिस प्रकार व्यायाम के बिना निर्बलता से सुरक्षित नहीं रह सकते इसी प्रकार दया के अभ्यास बिना, हम पापों की आत्मिक निर्बलता से सुरक्षित नहीं रह सकते। जहां दुःखी लोग होते हैं, वहां ही दया करने से लोग दयालु कृपालु बनते हैं। दया का अभ्यास हमें दयालु बनाता है। जो हम करते हैं, वही हम बन जाते हैं। यदि हम प्रकृति की पूजा और प्रार्थना करते हैं तो हम जड़वत् हो जाते हैं और हम क्या हैं इसकी खबर नहीं रहती। जब प्रकृति की जगह हम परमात्मा की पूजा और प्रार्थना करते हैं तो परमात्मा से प्रीति उत्पन्न होती है। जिस प्रकार सूर्य्य के सामने आतशी शीशा रखने से उसमें भी गरमी और आग लगाने की शक्ति पैदा हो जाती है, इसी प्रकार परमात्मा से प्रेम करने पर हममें उनकी ज्योति आने लगती है। सेनापति दीर्घदर्शी और साहसी हो तो वह बलहीन सैनिकों को भी वीरतापूर्वक लड़ा सकता है। जब सेनापति वीरता से लड़ता है तो उसके साथी सैनिकों में भी उत्साह का संचार होने लग जाता है। लीडरों में उत्साह और योग्यता हो, तो सर्वसाधारण में भी उत्साह पैदा हो जाता है। साहस और सन्तोष से सब कुछ हो जाता है यदि शरीर के किसी अंग में घाव हो और चिकित्सा से वह अच्छा न होता हो तो संतोष और साहस से दुःख

थोड़ा प्रतीत होता है। एक माता पुत्र की मृत्यु पर उसके शोक में आप भी मृत्यु का ग्रास हो जाती है, दूसरी इस अवसर पर साहस से काम लेती हुई कलेजे में तीर लगने पर भी संतोष करती है और पुत्र वधु तथा नातियों के आंसू पोंछती है। जिस समय रामचन्द्र जी बनवास में थे तो महाराजा दशरथ उनके वियोग के शोक में स्वर्गवास हो गये। उस समय राजकुमार भरत, शत्रुघ्न राजकर्मचारियों तथा जाबालि ऋषि साहित श्रीराम के निकट आये और कहा कि महाराज दशरथ स्वर्गवास हो गये हैं। आप वापिस चलें और उनका अंत्येष्टि संस्कार करायें, सब व्याकुल हो रहे हैं। मगर श्रीराम ने धैर्य और संतोष से काम लिया और कहा कि संसार में मनुष्य अकेला ही चला जाता है, जीवन आया और चला गया, कौन वस्तु है जो स्थिर रह सक्ती है, जिसका उत्थान होता है एक दिन उसका पतन भी होता है, जो वस्तु बनती है वह अन्त में बिगड़ती भी है, महाराजा ने जीवन पर्य्यन्त राजधर्म्म पालन किया अब स्वर्ग को गये, शोक करना व्यर्थ है। यद्यपि पिता की मृत्यु का स्वयं राम को दुःख था, परन्तु वह धैर्य्य धारण करके सब को सन्तोष दिलाते हैं।

लुध्याना में ला० खुशीराम जैनी थे जो दृढ़ वैदिक धर्म्मी थे और सदैव हर्षित और आशाजनक रहा करते

थे इसी कारण प्रायः पुरुष उन्हें "मद्रूप होली" के नाम से पुकारते थे। ला० खुशीराम महामारी और हैजे के दिनों में प्रत्येक रोगी की सेवा और चिकित्सा करते थे और कभी डरते न थे। अन्त में उनको भी प्लेग हो गई। कई दिनों तक इस आशा में कि आप ही रोग निवृत्त हो जायगा अपने रोग तक का हाल न कहा। अन्त में रोग बढ़ जाने पर घर वालों को खबर हुई। यत्न से चिकित्सा की गई परन्तु फल कुछ न हुआ। अन्तिम दिन ५ दर्जे ज्यादा बुखार हो गया। ला० खुशीराम की भावजा हाथ में जैनियों का पवित्र चिन्ह "सिद्धचक्र' लेकर आई कि अंतकाल है सिद्धचक्र को प्रणाम करो। परन्तु ला० खुशीराम वैदिकधर्म पर दृढ़ रहे, कहाः—मैं निराकार परमात्मा के सिवाय और किसी का पूजन नहीं कर सक्ता। अंत काल में भी आप विचारों पर दृढ़ रहे।

भगवान् की भक्ति और दया।

मन में रोग न होने से मनुष्य धैर्य्यवान् रहता है भगवान् की भक्ति जो आनंद देने वाली है उसके प्राप्त करने के दो साधन हैं। प्रथम दूसरों पर दया करना, उनकी भलाई करना और द्वितीय परमात्मा के नाम का जाप और स्मरण करना।

प्रायः पुरुष जाप और स्मरण को निरादर की दृष्टि से देखते हैं। स्मरण कई प्रकार से किया जाता है। बहुत से

हिन्दू दूसरों से जप तप करवाते हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। दूसरों के पुरुषार्थ से किसी को लाभ नहीं पहुंचता।

आर्य्यसमाज में बहुत से लोग बिना पुरुषार्थ और कर्म के उन्नति चाहते हैं। आर्य्यों का धर्म है कि वह स्वयं धर्म प्रचारक बनने का प्रयत्न करें। प्रायः पुरुष व्रत करते हैं कि हम तमाखू पान, शलगम, गाजर और लवण आदि छोड़ते हैं, भविष्यत् में उनका प्रयोग नहीं करेंगे, अस्तु। कितने हैं जो अहंकार आलस्य और प्रमाद को छोड़ते हैं? जिन्होंने आर्य्य होकर वेदमन्त्र नहीं सीखा और आर्य्यभाषा नहीं पढ़ी, वह कैसे आर्य्य हो सकते हैं? किसी संस्था (Institution) पर लड़ने मरने से क्या होसकता है जब तक वेदों की दीक्षा और शिक्षा न हो। जड़को पानी देने का प्रयत्न करो। पत्ते और शाखाएं स्वयं हरी हो जायंगी। यदि वाणी से झूठ बोला तो शरीर को कितना ही साबुनसे साफ़ करो क्या हो सकता है। पहले नियमों का पालन करो उपनियम स्वयं ठीक हो जायंगे।

परमात्मा को इस प्रकार स्मरण करो जिस प्रकार कोई युवती अपने नवयुवक पति को जो युद्ध पर गया हुआ है, हर समय याद रखती है। परमात्मा के नाम का उसी प्रकार जप करो जिस प्रकार पनहारिन सिर भुजाओं पर कई पानी के घड़े रख कर चलती है, तो किञ्चित्मात्र भी उसका ध्यान नहीं हटता। नट जिस समय रस्से पर चलता है तो सदा भार का ध्यान रखता है, कि गिर न पड़ूं। इसी प्रकार भगवान् का जप करो और स्मरण करो।

उपनिषद् कहते हैं कि शरीर को धनुष बाण, आत्मा को तीर और परमेश्वर को लक्ष्य बना कर आत्मारूपी तीर चलाओ, जिस प्रकार चकोर चांद की ओर और सांप वीणा की ओर आकर्षित होते हैं, उसी प्रकार परम पिता जगत् रचयिता परमेश्वर के नाम को स्मरण करो। जिस प्रकार हिन्दुओं की आरती मुसलमानों की निमाज़ और सिक्खों की अरदास का समय नहीं टलता इसी प्रकार तुम भी अपनी संध्या और हवन के समय का त्याग न करो। यदि व्याख्यान होते हों तो उठ जाओ, कानों को बन्द कर लो और सन्ध्या हवन का आवश्यक धार्मिक नियम पालन करो।

स्मरण कर प्रभु का मुख से न बोल।
बाहर के पट बन्द कर और अंदर के पट खोल॥

ज्ञान इद्रियों को नियमपूर्वक वश में रखकर मन को एकाग्र करके ईश्वर का स्मरण और जप करो, यही सीधा और सच्चा मार्ग स्मरण का है। योग क्या है? भगवान् कृष्ण कहते हैं कि समता ही योग है। सबको सम दृष्टि से देखना ही योग है। लोभ मोह को त्याग दो, आप योगी हो जाओगे। आओ, परमपिता दयालु कृपालु विश्वेश्वर जगन्नाथ सृष्टिकर्त्ता निराकार परमात्मा की सेवा में प्रार्थना करें कि हमें ब्रह्मज्ञान दान दो जिससे प्रीति उत्पन्न हो। आपके तेज से हम तेजस्वी हों और आपकी आज्ञाओं को पालन करें।

——:०:——

आत्म-प्रसाद ।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् । पतिं पतीनां परमं परस्ताद् विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ (श्वेता० ६ । ७) ॥

अपनी यात्रा को सफल करो ।

बहनों और भाइयो ! आपने कई दिन इस सत्संग में बैठकर आर्यपंडितों और माननीय व्यक्तियों के व्याख्यान श्रवण किए हैं, और उनमें से कई बातें अपने साथ ले जाने के लिए हृदय में धारण भी की हैं क्योंकि जब कोई किसी स्थान पर जाता है तो वहांपर जो प्रभाव उसपर पड़ें वह उन्हें स्मरण रखता है । कोई नर नारी नदी के तट पर जाकर उसकी शीतलता को याद रखता है, कोई बड़े नगरों में जाकर वहां के विशाल और सुन्दर भवनों को याद रखता है, मित्रों के सत्सङ्ग से जो लाभ किया जाता है वह भी याद रक्खा जाता है । इसी प्रकार इस धर्म सत्संग में आकर आप भी कई स्मृतियां अपने साथ ले जावेंगे । जिस प्रकार यहां के कार्यकर्त्ताओं के तपस्वी जीवन को देख कर यहां के भ्रातृभाव और आर्य समूह के प्रेम को देखकर आप अपने मन में उत्साह का भाव ले जावेंगे और उसे स्मरण करेंगे, इसी प्रकार कोई और बात भी यहां से लेजाने के योग्य है जिसके स्मरण

से आपका अन्तःकरण शुद्ध होगा। यदि इसका ठप्पा हमारे अन्तःकरण पर लग जावेगा तो हमारी यात्रा सफल हो जावेगी। न केवल यही प्रत्युत परलोक यात्रा भी सफल हो जावेगी।

पहला आत्मप्रसाद भक्ति।

आप पूछेंगे कि वह बात क्या है? मैं कहूंगा यह वही बात है जिसकी ओर वेद इशारा करता है। आप कहेंगे वेद की बातें तो बहुत हैं जिन्हें हम कई दिनों से सुन रहे हैं। मैं बतलाता हूं कि मुख्यतया दो ही बातें हैं जिनको कहने से प्रत्येक नर नारी का अन्तःकरण शुद्ध होकर स्वयं तीर्थधाम बन जावेगा और यही दो बातें इस तीर्थयात्रा से आपको अपने साथ ले जानी चाहियें। इनमें पहली बात है "ओम् स्मर"। परमेश्वर को स्मरण करो। स्मरण द्वेष से भी किया जाता है और प्रेम से भी। एक बहिन अपनी बहिन के उपकार का स्मरण करती है, दूसरी उसकी कुरूपता का। संसार में कोई ऐसी मूर्ति नहीं जिसका स्मरण न किया जाय। परन्तु शुद्ध और लाभदायक स्मृति केवल प्रभु का स्मरण है।

लोग जन्मको दुःखधाम मानते हैं परन्तु वेद बतलाते हैं कि हमारा जन्म तीर्थस्थान है, यह कमाई का स्थान है। परन्तु कमाई का स्थान उसी अवस्था में हो सकता है जब कि उसे तीर्थ और तीर्थ भी गङ्गा को मानें। वह गङ्गा भक्ति की गङ्गा हो। इस गङ्गा के बिना वस्तुतः

संसार दुःखधाम है। यह संसार शक्तिशालियों के लिए है। दुर्बलों के लिए न तो गङ्गा है और नाहीं हिमालय। संसार के पदार्थ भी शक्ति सम्पन्नों के लिए हैं। निर्बल मनुष्य गरिष्ठ पदार्थों के भोजन से प्रति दिन निर्बल ही होता जायगा। रूखे सूखे भोजन भी शरीर को हृष्ट पुष्ट बना देते हैं जब कि पाचन शक्ति प्रबल हो।

शक्ति न हो तो संसार का एक २ परमाणु खाने को दौड़ता है। वह मनुष्य गृहस्थ और परिवार के योग्य नहीं, वह सभासद् समाज का कार्य नहीं कर सकता जिसमें शक्ति नहीं रहती। अब प्रश्न यह है कि शक्ति कहांसे आवे। शक्ति, शक्ति के भण्डार से आती है। शक्ति का वास भक्ति में है। जिन जातियों में भक्ति उठ गई उनमें शक्ति का नामोनिशान न रहा, इस लिए भक्तिमय धर्म भी संसार में एक शक्ति है।

इस कलियुग में जब कि चारों ओर अशक्ति का राज्य हो रहा था ऋषि दयानन्द ने अस्वस्थ भारत को यदि कोई औषधि दी तो वह भक्ति की थी। यहां विद्या तथा बल का अभाव न था, अभाव था तो शक्ति का। हिमालय, गङ्गा, काशी और अमृतसर भक्ति से खाली थे। नाव थी परन्तु नाविक न थे। यदि कोई सबसे बड़ा उपकार स्वामी दयानन्द ने किया तो वह भक्ति का दान है।

यह भक्ति का ही प्रताप है कि सहस्रों पठित नर

नारी घर के कार्यों को छोड़ इस भाग्यवान् भूमि में एकत्रित हैं। पत्थरों की ठोकरें लगती हैं, आंखों में धूल पड़ रही है, भोजन अच्छा नहीं मिलता, मार्ग में अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं, परन्तु यह भक्ति की ही शक्ति है कि आप इन सब कष्टों को आनन्द और सुख समझ रहे हैं। आप कहेंगे कि कुम्भ के मेले पर भी तो सहस्रों नर नारी एकत्रित होते हैं, परन्तु जो भाव यहां काम कर रहा है और जिस श्रेणी के सुशिक्षित पुरुष यहां एकत्रित होते हैं वह भाव और वैसे पुरुष वहां नहीं होते। एक सुना रहा है और सहस्रों नर नारी मूर्तिवत् बैठे सुन रहे हैं, यह विलक्षणता आपके आर्यसमाज को ही प्राप्त है और केवल इस लिए कि आपने महाराजा के सत्संग में आकर यह समझा है, कि यहां सब कार्य परोपकार के लिए किये जाते हैं। यहां दान लिया जाता है परन्तु इस लिए नहीं कि रामदेव और महात्माजी खा जावें। वह तो सब कुछ आपके लिए ही कर रहे हैं। आपका दिया हुआ दान विद्या के रूप में आपको लौटाया जाता है।

बहनो और भाइयो! यह भाव जो मनुष्यों को अपनी ओर खींचता है और जिससे प्रेरित होकर आप इस पवित्र भूमि में आये हैं दूसरे स्थानों में ऐसा नहीं। वहां यह है कि घर जावो, खा जावो, लूट लो, चुरा लो और गांठ कतरने से भी संकोच नहीं किया जाता। परन्तु यहां

आभूषण भूल जाते हैं और स्वामी को ढूंढ कर उसे दे दिये जाते हैं ।

भाइयो ! बड़े २ सुधारक हुए जिन्होंने अपने देश और धर्म का बड़ा उपकार किया । वैष्णव हुए, बौद्ध हुए जैनी हुए, परन्तु जब से आर्य्यावर्त्त बिगड़ा, तबसे आज तक एक ही ऐसा महान् पुरुष हुआ है जिसने संसार का उपकार करना अपना मुख्य उद्देश्य और आदर्श रक्खा । और वह सौभाग्य केवल भगवान् दयानन्द को प्राप्त है, और किसी को नहीं ।

मैं आपको बतला रहा था कि भक्ति में शक्ति है इसी शक्ति के महत्त्व को जान कर ऋषि दयानन्द ने आर्यों के हृदय में भक्ति का सञ्चार किया । यही कारण है कि आर्य्यों में शक्ति है और यह जीवित जागृत संस्था है । जितनी किसीमें भक्ति होगी उतना ही वह बलवान् होगा ।

भक्ति और प्रेम में भेद ।

भक्ति और प्रेम दो शब्द हैं । इनमें थोड़ा सा भेद है । प्रेम उसे कहते हैं जो अपनेसे छोटे के साथ किया जाय और भक्ति उसे, जो अपने माननीय के प्रति प्रकट की जाय । माता को अपनी पुत्री के साथ प्रेम है परन्तु पुत्र को जो अपने पिता के साथ प्रीति है उसे प्रेम नहीं कहते । एवं पूज्य गुरु के साथ शिष्य प्रेम नहीं करता । एवं एक

भक्त की भगवान् के साथ जो प्रीति की धारा उछल रही है उसे भी प्रेम नहीं कहते, प्रत्युत वह भक्ति है। उसी भक्ति में शक्ति और सामर्थ्य भरी पड़ी है।

शक्ति का समुच्चय कहां है, और वह कौन है? वह आत्मा है और सार्वभौम आत्मा है। इसी लिए शास्त्र कहते हैं "आत्मना विन्दते वीर्यम्" परमात्मा शक्ति का समुच्चय है और उसीसे सारी शक्ति आई है।

पाञ्चभौतिक यह शरीर बहुत निर्बल और शक्तिहीन है परन्तु भक्ति के द्वारा यह वज्र से भी कठोर हो जाता है। इतिहास ऐसे उदाहरणों से परिपूर्ण है कि भक्तलोग जलती आग में कूद पड़े और उदास नहीं हुए। तलवार के आगे डट गये परन्तु पीठ नहीं फेरी। क्यों? इस लिए कि उनमें भक्ति का तेज था।

मैंने आपको बतलाया कि भगवान् की उपासना से शक्ति का सञ्चार होता है भक्ति के विना ज्ञान निरर्थक होता है। ज्ञानी पुरुष आपत्ति के समय आसन लपेट कर चल देते हैं परन्तु भक्तजन इस समय दुःखियों की सेवा के लिए खड़े हो जाते हैं।

आपमें से बहुत से सज्जनों ने गत वर्ष कुम्भ के मेले पर आर्य्यों की भक्ति और उनके परोपकार का परिचय पाया होगा। जबकि बड़े २ ज्ञानी महात्मा अपने सामने हैजे के रोगियों को तड़फते देख कर आंख न उठाते थे।

वैरागी और उदासी पीड़ित पुरुषों को धक्के मारते थे। उस समय ऋषि दयानन्द के राज्य में आये हुए नवयुवक अपने रोगी भाइयों को अपने कन्धे पर उठा कर उनकी सेवा करते थे। भक्तलोग दूसरों के कल्याण के लिए आपत्ति सिर पर लेते हैं। बालक रातको बिस्तरे पर पेशाब कर देते हैं, माता प्रेमवश होकर गीली जगह पर आप सोती है और सूखे स्थान पर बच्चे को सुलाती है। परोपकार का भाव तब तक उत्पन्न नहीं होता जब तक भक्ति व प्रेम न हो। एक देशभक्त अपनी देशभक्ति के कारण अपने देश के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहन करता है।

परमेश्वर भी केवल भक्ति ही चाहता है। इसलिए वेद ने कहा है:—'ओं स्मर'—ऐ भक्त! परमात्मा को स्मरण कर।

भक्ति की आवश्यकता।

स्मरण क्या है? स्तुति करना। स्तुति क्यों करें? क्या परमेश्वर अपनी प्रशंसा और चापलूसी चाहता है? क्या ईश्वर भी सांसारिक ऐश्वर्य्यशालियों की न्याईं खुशामद का भूखा है? परमात्मा को हमारी स्तुति और खुशामद की आवश्यकता नहीं, यह तो हम अपने हित के लिए करते हैं। स्तुति से क्या लाभ होता है? इसका उत्तर ऋषि दयानन्द यह देते हैं। स्तुति करने से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव

का सुधार होता है । पूछा जाता है क्या सुख होगा ? क्या परमात्मा बिना कर्म के कुछ दे देगा ?

मैं कहता हूँ यह छोटे २ आधुनिक ग्रन्थों की बातें हैं, धर्म के लिए वेद उपनिषद् और मनु से आलोचना करनी चाहिये ।

कर्म के बिना स्तुति का क्या लाभ होगा ? यह प्रश्न है जो भक्तों से किया जाता है । कर्म तीन प्रकार का है मानासिक, वाचिक और शारीरिक ।

परन्तु हम केवल हाथ के कर्म को कर्म समझते हैं । जब तक हमें कोई थप्पड़ न लगाये हम कर्म नहीं समझते । यतः हम मन को नहीं देख सकते अतः भूल कर यह समझते हैं कि परमात्मा भी इसे नहीं देखता । परमेश्वर यह नहीं देखते कि कितने ज़ोर से मुका मारा, प्रत्युत वह यह देखता है कि किस भाव से मारा । महाभारत में युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से पूछा कि अब तक संसार में सब से बड़ा दानी कौन हुआ है; उत्तर में भीष्म कहते हैं कि अब तक सब से बड़ा दान मौद्गल्य का समझा गया है जिसने एक ब्राह्मण को एक समय भोजन करवाया था । युधिष्ठिर इतना बड़ा दानी हुआ है परन्तु व्यासजी उसकी प्रसंशा नहीं करते प्रत्युत मौद्गल्य को सब से बड़ा दानी बतलाते हैं । परमेश्वर के यहां भाव देखा जाता है, भार नहीं । हाथ पांव के कर्म की अपेक्षा मन का

कर्म गुरुतर समझा गया है। परमेश्वर जो सारे संसार का नेता है हमारे मानसिक कर्मों को जानता है इसलिए मानसिक कर्मों का फल बड़ा महान् समझा गया है।

एक परमेश्वर का भक्त देवता का आवाहन करता है जो धन का पति है। देवता प्रसन्न होता है और उसे धन मिल जाता है, परन्तु जो भगवान् की भक्ति करते हैं उन्हें शायद हीरे और जवाहिरात न मिलें किन्तु भगवान् मिल जाते हैं। प्रकृति की उपासना से प्रकृति प्राप्त होती है, मोक्ष नहीं। परन्तु परमात्मा की उपासना से परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है जो प्रकृति का भी स्वामी है। उपासना एक मानसिक कर्म है जो हमारे और ईश्वर के मध्य प्रेम की डोरी को कभी टूटने नहीं देता। भक्ति और उपासना से अविद्या के समस्त बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं। मनुष्य का मन सन्ध्या में क्यों नहीं लगता? क्यों वह सत्सङ्ग को पसन्द नहीं करता? इसलिए कि उसके मनमें रुचि नहीं—

रुचि कैसे पैदा हो? यह बार २ के अभ्यास से पैदा होती है। यदि आप चाहते हैं कि गुरुकुल से आपका प्रेम हो तो गुरुकुल का आप बार २ स्मरण कीजिये, उसका नाम अपने घरों में लिख कर लगा रखिये। यही विधि प्रीतिके पैदा करने की है। अपने किसी प्रियतम को एक वर्ष तक न देखें तो प्रेम की तार ढीली हो जावेगी।

बहनो और भाइयो ! जिन्होंने स्मरण छोड़ दिया उनकी डोर टूट गई। इसलिये ओ३म् नाम ही वह तन्तु है कि इसको कभी टूटने न देना चाहिये। इसीसे ईश्वर प्राप्त होता है। बार बार का जन्म-चक्र पापकर्मों का फल है परन्तु इस बन्धन को काट कर मुक्ति दिलवाने वाला भी भगवान् का उत्तम नाम है। नाम स्मरण करने से यदि और कुछ भी लाभ न होगा तो जिस प्रकार हर समय गाली देने वाले की जिह्वा पर गाली चढ़ जाती है और उसके मनमें मलीनता उत्पन्न हो जाती है एवं ओ३म् नाम को जपनेवालें के हृदय में ओ३म् नाम अंकित होजावेगा और मनकी मलीनता दूर हो जावेगी। यह क्या कुछ कम लाभ है ? इसीलिए उपनिषद् कहती है—

"एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते" ॥
इत्यतोम् स्मर।

ए मनुष्य ! तू परमात्मा का स्मरण कर, यह एक उच्चकोटि की बात है।

कर्मों का स्मरण।

दूसरा आत्म-प्रसाद है कर्मों का स्मरण। 'कृतं स्मर अपने किए हुए का स्मरण कर ! यह दूसरी बात है जो आपको बतलाना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस पवित्र तीर्थस्थान से यह बात भी आप अपने साथ

ले जावेंगे। वेद भगवान् कहते हैं कि मनुष्य का प्रतिदिन प्रातःसायं अपने किये को देखना और विचारना चाहिये कि मैं धर्म के मार्ग में कितना आगे बढ़ा अथवा पीछे हटा हूँ। ऐसा करने से अभिमान का त्याग होता है। मनु जी कहते हैं "अपने कर्मों पर बार २ विचार करने से आत्मा उत्पन्न होता है और उसमें अभिमान नहीं आने पाता"। इसको मैं एक दृष्टान्त से समझाता हूँ। एक धनिक के पास एक बड़ा परिश्रमी और काम करनेवाला नौकर था। धनिक ने नौकर पर प्रसन्न होकर सब व्यवहार उसके सुपुर्द कर दिये। यह देख बाकी के नौकर उससे ईर्षा द्वेष करने लगे, (दुनियां द्वेष की अग्निसे जल रही है, कोई दूसरे को अच्छी अवस्थामें देख नहीं सकता) दूसरे नौकर ने सेठ जी को धोखा देकर उस परिश्रमी नौकर के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ किया कि वह आपका धन खा रहा है, उसने आपके हीरे जवाहिरात सब आप रख लिए हैं, वह तो आपका कोष खाली कर देगा। पहले तो सेठजी को उसकी बातों पर विश्वास न आया, परन्तु जब उन्होंने कहा कि हम आपको दिखला सकते हैं कि वह प्रातः सायं धन लेकर अपनी कोठरी में चला जाता है और अंदर से द्वार बंद कर लेता है, तो यह शब्द सुन सेठ को सन्देह होगया और वह एक दिन समय देख कर उसी स्थान पर जा पहुंचा जहां वह

नौकर अपनी कुटिया का द्वार बंद करके अपने संदूक को खोल कर कुछ देख रहा था। एक झरोके में से वह दृश्य देख कर सेठ का सन्देह निश्चय में परिणत होगया और उसने तुरन्त किवाड़ खटखटाया। द्वार खुलते ही वह तत्काल अंदर चला गया, नौकर ने संदूक बंद कर दिया। सेठ ने पूछा कि इस संदूक में क्या है? नौकर ने उत्तर दिया, 'कि महाराज आपका कुछ नहीं, जो कुछ है मेरा ही है,। सेठ ने कहा कि खोल कर दिखलाओ,। नौकर ने बड़ी नम्रता से निवेदन किया कि महाराज आप इसे न देखिये। इस बात को भला सेठ कब मानने वाला था, बलपूर्वक संदूक खोल लिया। क्या देखता है कि संदूक फटे पुराने वस्त्रों और चिथड़ों से भरा हुआ है। सारा अविश्वास जाता रहा और लज्जित होकर कहने लगा कि यह कूड़ा करकट क्यों रख छोड़ा है, क्या तुम्हारे पास पहिनने को कपड़े नहीं? नौकर ने उत्तर दिया, भगवन्! यह मेरे वह वस्त्र हैं जिनको पहिन कर मैं अत्यंत हीन दशा में आपकी सेवा में आया था और आपकी दया से मेरी अवस्था इतनी उच्च होगई है कि प्रतिदिन सहस्रों पर लेखनी चलती है। इस लिए कि कहीं मुझे अभिमान न होजावे प्रातःकाल आकर इन कपड़ों को देख लेता हूं जिससे मैं अपनी वास्तविक दशा को न भूल जाऊँ।

बहनों और भाइयो! तुम जिन पदार्थों पर अभिमान

करते हो यह तो उस परमपिता परमात्मा की दया है, तुम्हारा तो वास्तव में कुछ भी नहीं है। इसलिये प्रातः सायं अपने गरेबान में मुंह डाल कर देख लिया करो कि तुमने क्या कुछ किया है। इससे अभिमान का नाश होता है। धन्य हैं वह पुरुष जो अपने आपको देखते हैं। दूसरों की तरफ़ देखने वाले संसार में बहुत हैं परंतु कल्याण उनका ही होता है जो अपनी ओर देखते हैं। अतः प्रतिदिन एकांत में अपने स्वरूप का दर्शन करना, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अत्यंत आवश्यक है। यदि अपने कर्म स्मरण रहें तो जीवन सफल हो जाता है। मनुष्य को अपने दोष तब तक दिखाई नहीं देते जब तक उसमें भगवान् की भक्ति नहीं। हमारे आचार्य ऋषि दयानन्द में इतनी भक्ति थी कि वह जब कोई कार्य अथवा पुस्तक आरम्भ करते थे, तो पहले लम्बी प्रार्थना करते थे। उन्होंने आपको भक्तिभाव और प्रार्थना उपासना की विधि सिखलाने के लिए 'आर्याभिविनय' बनाई। परन्तु अपने जहां चण्डी का पाठ छोड़ा, विष्णुसहस्रनाम छोड़ा वहां आर्याभिविनय को भी त्याग दिया। बेजोड़ और निरर्थक प्रार्थना से कुछ फल नहीं होता। आजकल जो उठता है अपनी मनमानी प्रार्थना आरम्भ कर देता है। अतः प्रत्येक आर्य का कर्तव्य होना चाहिये कि वह प्रातः सायं

आर्याभिविनय का पाठ करें। वैसे तो आप वेदमन्त्र याद करने से रहे, आर्याभिविनय के पाठ से आपको वेदमन्त्र भी याद हो जावेंगे। मनुष्यों ने समझ रक्खा है कि वेदों का पाठ और धर्म के कार्य वृद्ध-अवस्था में करेंगे परन्तु उस समय क्या हो सकेगा जब समस्त इन्द्रियां और स्मृति शिथिल हो जावेंगी? अतः प्रत्येक आर्य यह समझ ले कि जिस प्रकार अपनी सन्तान को विद्या तथा धन देना उसका कर्तव्य है उसी तरह वेदमन्त्रों का पाठ करवाना भी उसके लिए आवश्यक है।

सज्जनगण! मैंने आपको दो बातें बतलाई हैं—पहली बात 'ओ३म् नाम का स्मरण और उसकी भक्ति'। दूसरी बात 'अपने कर्मों का निरीक्षण'। यही दो आत्मप्रसाद हैं, जो स्वामी दयानन्द की लगाई हुई वाटिका से आप पुष्पमाला की तरह अपने गले में डाल कर लेजावें। भगवान् करें कि हममें परमात्मा की भक्ति और अपने कर्मों पर विचार करने का बल उत्पन्न हो।

——:०:——

वैदिक धर्म्म प्रचार की आवश्यकता।

शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?

मनुष्य के अन्दर दो प्रकार की वृत्तियां हैं, एक वह जिनके बढ़ने से सुख होता है और दूसरी वह जिनके घटाने से सुख होता है। अब यदि किसी मनुष्य के धर्म्म की परीक्षा करनी हो, तो देखो कि उसके जीवन में जिन वृत्तियों के घटाने से सुख होता है वह घट रही हैं या नहीं और जिनके बढ़ाने से सुख होता है वह बढ़ रही हैं या नहीं। वह वृत्तियां जिनके कम करने से सुख होता है काम की वृत्ति, लोभ की वृत्ति, क्रोध की वृत्ति, मोह की वृत्ति, अहंकार की वृत्ति जिस क़दर यह वृत्तियां बढ़ती जायें उसी क़दर ज्यादा दुःख होगा, और जिस क़दर यह कम होंगी उसी क़दर ज्यादा सुख होगा। जितना किसीमें अभिमान ज्यादा होगा उतना ही वह क्लेशित होगा। इसी तरह जितना कोई ज्यादा लालची होगा, उसी क़दर दुःख होगा। अब मैं उन वृत्तियों का वर्णन करता हूं, जिनके बढ़ने से सुख होता है। दया की वृत्ति जिस क़दर बढ़ाओ उसी क़दर सुख होगा। वह मनुष्य जिसके मनमें एक तड़फते हुए मनुष्य को देखकर दया की गङ्गा बह जाय, उससे बढ़ कर सुखी और कौन हो सकता है? इसी तरह परोपकार की वृत्ति जितनी ज्यादा होगी,

उतनी ही मन में शांति होगी। जिन धर्म्मों और जातियों में परोपकार की वृत्ति ज्यादा होती है, वह हरी भरी रहती हैं। आज मुझसे एक महात्मा ने पूछा कि क्या कारण है कि आपके आर्य्यसमाजी शंकराचार्य्य और इसी तरह दूसरे आचार्य्यों की निसबत स्वामी दयानन्द के नाम पर ज्यादा तालियां बजाते हैं। मैंने उत्तर दिया कि यह लोग भगवान् दयानन्द के लगाये वृक्ष के फल खा रहे हैं इसलिए उनके रोम २ से कृतज्ञता का भाव प्रकट हो रहा है। कुछ काल गुज़रा भील और अन्य जातियां भेड़ों और बकरियों तथा अन्य पशुओं की कुर्बानियां किया करती थीं। मैं भी कहता हूं कि कुर्बानी करनी चाहिये किन्तु किस पशु की? इस क्रोधरूपी पशु की, जो तुम्हारे अन्दर विद्यमान है। वह माता जो घर में शांति की दिव्य मूर्ति है, उसने अपने बच्चों की ख़ातिर अपने क्रोध की कुर्बानी कर रक्खी है, अपने स्वार्थ को निछावर कर दिया है इसी तरह जब तक स्वार्थ को त्याग कर परोपकार का गुण मनुष्य में नहीं आता वह धर्मात्मा नहीं बन सकता।

हिन्दुओं में एक आम ग़लती।

हिन्दुओं में यह एक आम ग़लती है कि जहां वह शौच, सन्तोष, तप-आदि नियमों का पालन करते हैं वहां उनसे अत्यन्त आवश्यक यमों अर्थात् सत्य, अस्तेय, ब्रह्म-

चर्य-आदि को भूल जाते हैं जिसका परिणाम उनकी तबाही और बरबादी हो रही है। एक हिन्दू दिन में चार बार नहाने को तय्यार है किन्तु जहां इसके भाई का वध हो रहा है वहां वह प्रेम की गङ्गा बहाने को तैयार नहीं। शास्त्रकारों ने सत्य पर बल दिया है, किन्तु वहांसे दो तीन मील के फ़ासले पर पवित्र भागीरथीतीर्थ के तट पर स्थान २ में ठगी और झूठ की दुकान खुली हुई हैं। आगामी वर्ष कुम्भ के मेले पर सहस्रों भङ्गी चरसी साधु एकत्रित होंगे, परन्तु सच्चे तपस्वी साधुओं का सर्वथा अभाव है। जो इस मुर्दा जाति की नस २ में धर्म का भाव उत्पन्न कर दें। मनुष्यों ने अपने अत्याचार से स्त्रियों और शूद्रों को विद्या भूषण से वंचित रख कर उनपर अत्याचार किया। परिणाम यह हुआ कि आज स्त्रियों में भी वह उज्ज्वल बातें नहीं रहीं जिनके लिए यह देश प्रसिद्ध था। परन्तु अब स्वामी दयानन्द की कृपा से उनके लिए शतशः पाठशालायें खुल चुकी हैं। पूजनीय देवियो! आप भी झूठी बातों को छोड़ कर सत्यरूपी व्रत को धारण करो। तो मैंने बतलाया कि हिन्दुओं को उपनियमों की ख़ातिर असली नियमों को नहीं भुला देना चाहिये जो उनके जीवन का मूलाधार हैं। स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन में जो सबसे बड़ा उपदेश इस जाति को दिया है वह यह है कि हिन्दु नियमों की अपेक्षा यमों पर ज़ोर दें। इस लिए इस उपदेश को जिस क़दर फैलाओगे, उतना ही

तुम्हारा कल्याण होगा। क्या आप सारे भारतवर्ष में मुझे कोई ऐसा स्थान दिखला सकते हो जहां २०-३० सहस्र के लगभग मनुष्य इकट्ठे हों और विना किसी पलटन और सिपाहियों की गारद के प्रबन्ध स्थिर रह सके; कहीं चोरी अथवा अन्य कुकर्म्मों का लेशमात्र न हो, और इस क़दर दुनियां शांति से बैठ कर उपदेश श्रवण करे। यह केवल आर्य्यसमाज की शक्ति है जिसका उदाहरण किसी सोसायटी में नहीं मिलता।

आर्यसमाज और अन्य सभाओं में भेद।

लोग प्रश्न करते हैं कि तुम कहते हो कि आर्य्यसमाज में सम्मिलित होने से मनमें शांति आवेगी किन्तु आर्य्यसमाज में तो हर समय कोई न कोई झगड़ा ही रहता है। इसके समाचारपत्रों में प्रायः परस्पर नोक झोक रहती है इस लिए हम तो ऐसी झगड़ालू सभा में सम्मिलित नहीं होंगे, स्वतन्त्रता में रहना ही हम मान का कारण समझते हैं। ऐसे लोगों से मैं पूछता हूँ कि क्या तुम यह बात पसन्द करते हो कि प्लेग के फोड़ों को छिपा कर रक्खा जाय या जहां कहीं मवाद हो तुरन्त ही उसकी चीर फाड़ की जाय? यदि आर्यसमाज के लोग स्वभाव से झगड़ालू और फसादी होते तो यह असम्भव था कि वह इतना बड़ा यज्ञ रच सकते। आर्य्यसमाज और अन्य सोसायटियों की लड़ाई में यह भेद है कि जहां अन्य

लोगों की लड़ाई शीशों की लड़ाई है जो टकराने से चकनाचूर होजाते हैं वहां आर्य्यसमाज की लड़ाई घंटों की लड़ाई है, जब तक आपस में टकराते रहे आवाज़ आती रही, जहां टकराना बन्द हुआ, तुरन्त शांति होगई और अपने २ काम में लग गये। आर्य्यसमाजी एक सूत्र में परोये हैं जिनको भगवान् दयानन्द ने परोया है।

आर्यसमाज में त्याग।

इस भेद के अतिरिक्त जो मैंने अभी वर्णन किया, अन्य सभाओं की अपेक्षा आर्य्यसमाज में एक और भी विशेषता है। शङ्कराचार्य के मत में केवल त्याग ही त्याग है, इसी तरह विष्णु मत में केवल अनुराग ही अनुराग है त्याग का नाम नहीं। किन्तु स्वामी दयानन्द के पुनर्जीवित किए हुए धर्म्म में जहां एक हाथ में त्याग है वहां दूसरे हाथ में अनुराग है। महर्षि दयानन्द अपने जीवन में जहां एक ओर अपना सर्वस्व न्योछावर करके त्याग का आदर्श पेश करते हैं, वहां चांदपुर के मेले में पहुँच कर मत मतान्तरों से शास्त्रार्थ करके हिन्दू जाति से अपने अनुराग का परिचय देते हैं। आप गुरुकुल में ही देखिये, इसके आचार्य और प्रोफैसर किस तरह फ़कीरी लिबास में रहते हैं। जहां इनका रहन सहन साधुओं का सा है वहां उनके हृदय मन्दिर में इस पवित्र कुल के लिए प्रीति का रंग बहुत ही ऊँचा है। मैंने आपको बतलाया कि स्वामी दयानन्द का

यह धर्म्म अनुराग और त्याग का पूर्ण आदर्श है। मेरा यह दावा है कि शंकर स्वामी के बाद कोई ऐसा नहीं हुआ जिसने त्याग और अनुराग का पूर्ण आदर्श पेश किया हो। केवल स्वामी दयानन्द को ही यह मान प्राप्त है। इस लिए आवश्यकता है कि इस धर्म में बहुत से ऐसे आदमी पैदा हों जो अपने स्वार्थ का त्याग करते हुए दूसरों के लिए अनुराग करें। स्वामी दयानन्द के धर्म में सबसे बड़ी अच्छी बात यह है कि इसमें त्याग के साथ कर्मयोग भी सम्मिलित है। वह बत्ती तभी मुबारिक है कि स्वयं जल कर दूसरों को प्रकाश देती है जिस सत्संग में कोई व्यक्ति अपने भाइयों के लिए त्याग नहीं करता वह सत्संग सफल नहीं होता। अतः दयानन्द के शिष्यों के लिए यह बात आवश्यक है कि वह अपने गुरु के चरण चिन्हों पर चलते हुए इस धर्म्म को फैलाने का यत्न करें जिसको उनके गुरु ने उन्हें प्रसाद रूप में दिया है।

धर्म प्रचार ही आर्य्यसमाज का मूलाधार है।

जिस तरह ईसाइयों के अन्दर ईसा की सच्ची Spirit है, उनकी १३६ मंडलियां और ४० से ज्यादा कालिज राम और कृष्ण के भक्तों को ईसाई बनाने का यत्न कर रहें है, हिमालय के बर्फ के पहाड़ों और कुष्टियों में जाकर काम करते हैं, जिस प्रकार मुसलमानों के अन्दर मुहम्मद साहिब की रूह काम कर रही है इसी तरह जब तक

आर्य्यों और हिन्दुओं के अन्दर स्वामी दयानन्द की सच्ची Spirit न आयगी देश या जाति का उद्धार व सुधार न होगा। जितनी जिस व्यक्ति में स्वामी दयानन्द की Spirit काम कर रही है उतनी ही वह आर्य्यसमाजी है। अन्तरंग सभाओं में बैठनेवाले मेम्बरों पर शासन करने वाले बहुत होंगे, परन्तु ऐसे आदमी बहुत कम हैं जिनके रुधिर के एक २ बिंदु में स्वामी दयानन्द की Spirit हो।

स्वामी दयानन्द का असली भाव।

स्वामी दयानन्द की Spirit आपके सामने कई पहलुओं से प्रगट की जाती है—ब्रह्मचर्य्य की महिमा के लिए गुरुकुल, स्त्री शिक्षा के लिए पाठशालाएं, शिक्षा के दूसरों अंगों के लिए स्कूल, यह सब कुछ सत्य है। आर्य्यसमाजियों ने जिस काम को हाथ लगाया है उसे पूरा करके छोड़ा है। परन्तु मैं कहता हूं और बड़े बल से कहता हूँ कि स्वामी दयानन्द की असली Spirit कुछ और ही थी जिसका परिचय उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में दिया। स्वामी दयानन्दजी ने पुस्तक लिखे, कई पाठ-शालाएं खोली, किन्तु इन सबके पश्चात् उन्हें मालूम हुआ कि उनके जीवन का असली उद्देश्य केवल पाठशा-लाओं से पूरा नहीं होगा, यद्यपि वह भी उसका एक अंग है। इस लिए आखिरी वर्षों में उन्हों ने ज़ोर शोर से प्रचार किया। बंगाल के एक प्रसिद्ध आदमी के प्रश्न पर उन्होंने उत्तर

दिया कि वह एक स्थान में बैठ कर अपने कार्य्य को सीमाबद्ध करना नहीं चाहते। इस लिए स्वामी दयानन्द के असली उद्देश को पूरा करने के लिए ऐसे नवयुवकों और वृद्धों की आवश्यकता है जिनके मन में धर्म के लिए उत्साह हो, जो देश देशान्तरों में फिर कर लोगों में वैदिक धर्म का प्रचार करें। ऐसे निडर आदमियों की आवश्यकता है, जो सच्चाई कहने से जरा न झिझकें। क्या कारण है कि पण्डित लेखराम और पण्डित गुरुदत्त का नाम लेनेंसे आपके अन्दर एक लहर चल जाती है? कारण प्रत्यक्ष है कि उनके हृदय में आपकी तरह लोकमत (आम राय) नहीं थी, प्रत्युत उनके अन्दर स्वामी दयानन्द की सच्ची Spirit थी। वह सच्चाई के प्रगट करने में कभी नहीं डरते थे। जिस स्वामी दयानन्द ने हमें जीवन प्रदान किया है हमें उनके आगे निर्बलता नहीं रखनी चाहिए।

प्यारे भाइयो! जहां आपने और अच्छे उपदेश ग्रहण किये हैं, वहां मैं चाहता हूं कि आपमें से प्रत्येक आर्य भाई यह शुभ सङ्कल्प भी करें कि वह अपने जिले में पूरे यत्न से वैदिक धर्म प्रचार करायगा। यदि आप प्रचार में बल देंगे तो आपके शत्रु मित्र बन जायंगे, कण्टक पुष्प हो जायेंगे। परमेश्वर कृपा करें कि हमारे हृदय मन्दिरों में स्वामी दयानन्द का दर्पण हो, जिसके द्वारा हम अपने कर्मों और धर्मों को देखें।

हमारा आदर्श ।

आशा का जीवन ।

आर्य्य जीवन आनन्दमय और मनोरथमय जीवन है अन्य धर्मपुस्तकों को देख जाइये, कहीं भी आपके सामने मनोरथों की सुंदर माला न रक्खी होगी । धार्मिक जगत् में कोई पुस्तक ऐसी नहीं जिसमें लिखा हो कि परमात्मा आनन्द मूल और प्रकृति आनन्द रूप है । यह तो वही बात हुई कि किसी पुरुष की सूई उसके घर में गिर गई, परन्तु वह अन्य स्थान पर जाकर ढूंढ़ने लगा क्योंकि वहां लैम्प जल रहा था। आत्मा तो हमारे अन्दर व्यापक हो रहा है परन्तु हम उसे गङ्गा और यमुना में ढूंढ़ते हैं । कई पुरुष कहते हैं कि हमारा पूज्य आकाश पर है, परन्तु वेद कहता है कि आपका देव हृदय सिंहासन पर विराजमान है । यह एक महत्व की बात है जो आर्यधर्म निरूपण करता है। परन्तु शोक तो यह है कि निराशा हमारे जीवन की एक अङ्ग बनी हुई है । माता के पास जावें तो निराशा, पिता के पास जावें तो निराशा, वक्ता श्रोता सब एक ही स्वर में निराशा का राग गा रहे हैं ।

महान् आत्माएं ।

भाइयो और बहनो ! मथुरा अशोकवाटिका बनी हुई है, सारे यादव व्याकुल हो रहे हैं, देवकी और

वसुदेव कैद में पड़े हैं, दुष्ट कंस बच्चों को वध कर चुका है, क्यों ! इस लिए कि उसे बतलाया गया है कि तेरी भगिनी की कोख से जो उत्पन्न होगा वह तेरा हनन करेगा। यादव वंश प्रार्थनाएं कर रहा है कि प्रभु, कोई ऐसा शक्ति पैदा कर, जो हमें कंस के अत्याचारों से बचावे। अंत में आखिरी संतान भगवान् कृष्ण पैदा होते हैं जो समस्त संकटों का निवारण कर कंस को उसकी करनी का फल देते हैं।

एक सच्चा ब्राह्मण आशा और मनोरथ लेकर विंध्याचल से पार जाकर अपना कुटिया बना लेता है। वह क्या देखता है, कि जो इस वन में जाता है गाजर और मूली की तरह उस वन में रहने वाले राक्षस उसे मार काट कर खा जाते हैं। ब्राह्मण और वैश्य जो जाते हैं, मारे जाते हैं। राम अपने प्रिय भाई लक्ष्मण को बतला रहें हैं कि दक्षिण दिशा की यह अवस्था हो रही थी जब कि उस वृद्ध महात्मा ने जिसका नाम अगस्त्य ऋषि है, वन में अपनी कुटिया बना कर लोगों के लिए रक्षा-स्थान बना दिया। यह ऋषि इसी लिए जी रहे हैं कि प्रजा को सुख हो। इस समय वन के तपस्वियों और वहां की प्रजा की यह भावना हो रही थी कि कोई महान् आत्मा आये और हमें बचावें। कोई आश्चर्य नहीं कि उन लोगों की प्रार्थना ही ने कैकेयी के दिल में प्रेरणा की

हो, कि वह राम को वनवास दिलाने का आग्रह करे। तप से की हुई कामना पूरी होती है, शुष्क भावना किसी काम की नहीं। राम अपने भाई सहित जंगल में जाते हैं और राक्षसों के राक्षसी भाव दूर हो जाते हैं। मैं आपको यह बतलाना चाहता हूँ कि राम, कृष्ण और दयानन्द बनाये नहीं जाते, प्रत्युत प्रार्थनाओं के द्वारा बुलाये जाते हैं। महान् पुरुष कारख़ानों में तय्यार नहीं होते और न गुरुकुल में ही कोई ऐसा सांचा है जिसमें ढाल२ कर ऋषि भेजे जावें। हमारी कामनाएं ऋषियों और मुनियों का आवाहन करती हैं। माता के आधीन है कि वह राम, कृष्ण और लक्ष्मण की आत्मा को पुकारें। उन्नत और शक्तिशाली मनुष्यों को बनाने में गुरु और आचार्य का भी भाग है परन्तु अधिक भाव माता की कामना और भावना का ही है।

संसार दुःखों का घर नहीं।

मैं आपको यह बतला रहा था कि हमारे शास्त्र संसार को दुःखों का घर नहीं बतलाते। हमारे यहां निराशा के लिए कोई स्थान नहीं। शास्त्र में आया है कि "आनन्दरूपममृतं यद्विभाति" यह चांद और सूर्य उसकी कृपा से हमारे लिए कल्याण और आनन्द के लिए प्रकाशमान हो रहे हैं। प्रकृति का एक २ परमाणु भी हमारे लिए विष मिश्रित नहीं। फूलों के साथ जो कांटे दिखलाई देते हैं वह इस लिए हैं कि फूलों की रक्षा हो

सके ताकि मेरे अमृत पुत्र इन सुन्दर फूलों को देर तक देख सकें। वेद में कहा गया है कि नदियां हमारे लिए कल्याणकारी हैं, पृथिवी मधुमती है समस्त संसार हमारे लिये सुखदायी है, परन्तु यह तब हो सकता है जब मनुष्यों में भक्ति हो। भक्ति कब होती है? जब मनुष्य प्रकृति में आनन्द को समझें। आपने भूमि पर आसन लगाया, उसके नीचे शीतल जल बह रहा है परन्तु खोदने की आवश्यकता है। दो गज़ खोदो, चार गज़ खोदो, दस गज़ खोदो, खोदने से आपके हाथ में कांटे चुभेंगे, बदन पर धूल पड़ेगी, चेहरा मलीन होगा, स्यात् इसी अवस्था को देखकर बौद्ध और जैनियों ने संसार को दुःखों का घर कह दिया। परन्तु खोदते २ जब निर्मल नीर निकल आवेगा और आप उसमें गोता लगावेंगे तो सब धूल धुल जावेगी, सारा परिश्रम सार्थक तथा मन शांत हो जावेगा। जिस प्रकार बाहर के अङ्ग हैं इसी प्रकार भीतर के भी अङ्ग होते हैं जिस प्रकार बाहर के अंगों को शुद्ध करने की आवश्यकता होती है इसी प्रकार अंतरीय अंगों को भी शुद्ध और निर्मल करने की आवश्यकता है। अन्दर के भावों को शुद्ध करो, बाहर के अंग स्वयं शुद्ध हो जावेंगे। जिसके मन में तेज हो उसका चेहरा तेजस्वी नज़र आता है, मन बुझा हो, चेहरे को मल २ कर कितना ही साफ़ करो, मलीनता कभी न हटेगी।

आर्य धर्म की विशेषता।

दूसरे मत सूक्ष्म से स्थूल की तरफ़ ले जाते हैं परन्तु आर्य्य धर्म वह है जिसकी प्रवृत्ति बाहर से अन्दर की ओर ले जाती है, यह स्थूल से सूक्ष्म में जाता है। दर्पण अपने सामने रखो आपको पता लग जायगा हमारी आत्मा क्या है। दूसरे धर्मों में लालच दिए गए हैं कि मरने के बाद भी नदियां और दूध की नहरें मिलेंगी, मेवे मिलेंगे और भोग की वस्तुएं मिलेंगी। परन्तु आर्य धर्म इसी संसार में स्थूल वस्तुओं से सूक्ष्म की ओर ले जाता है। परलोक तो दूर रहा ऋषि मुनि इसी धर्म का वर्णन अपने आचरण से करते रहे और उसका प्रचार करना हमारा कर्तव्य है। कर्मों का ध्यान करना बड़ी उच्च श्रेणी की बात है, कुछ लोगों का विचार है कि कर्म तो बन्धन है, और बन्धन का परिणाम मुक्ति नहीं हो सकती। परन्तु आर्य धर्म बतलाता है कि बन्धन का मूलकारण मिथ्या ज्ञान है। इससे दुष्ट वृत्तियां पैदा होती हैं। मिथ्या ज्ञान दूर होने से द्वेष दूर हो जाते हैं, जिस मनुष्य को यह ज्ञान हो गया कि लड़ना झगड़ना बुरा है उसके घर में आनन्द हो गया। ज्ञान होने पर अविद्या नष्ट हो जाती है। तो मैंने आपको बतलाया कि आत्मा को बन्धन में डालने वाली यदि कोई वस्तु है तो वह अविद्या है। एक शेर का बच्चा छोटी अवस्था से

सूअरों में चर रहा था उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान न था। भेड़, बकरी, गीदड़ जो चहता है उसपर आक्रमण करता है एक दिन उसके भाई ने उसे पहिचान लिया और उसे बतलाया कि तू शेर का बच्चा है, इन भेड़ों में तेरा क्या काम ? बस, अपने अस्तित्व का ज्ञान होना था कि उसकी एक ही गर्ज से सब सूअर डर गये। मनुष्य परमात्मा का अमृत पुत्र है। यह भ्रम में पड़ कर दुःख पा रहा है। आत्मा वास्तव में आनन्दमय शक्ति है, इस लिए कर्म को चाहते हुए आत्मा को अपने हाथ से उठाना चाहिए। हाथी औरों को उठाता है परन्तु जब स्वयं गिर जाता है तो हाथियों से ही उठाया जाता है। एवं आत्मा आत्मा से ही उठाया जाता है। अमृत, अमृत से उत्पन्न होता है। इस अमृत जल को पान करने के लिए धर्म कर्म में प्रवृत्त होने की आवश्यकता है परन्तु हमारे यहां उल्टी गङ्गा वह रही है। या तो हम ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी, मध्यम दशा में रहना हमें पसन्द नहीं। तप हमने भूखे रहने को समझा रक्खा है परन्तु महात्मा कहते हैं:—

"जपिया तपिया बहुत हैं शीलवान कोई एक"

तप करने वाले बहुत देखे जाते हैं, परन्तु मन को मारने वाला कोई एक ही होता है। तप ही है जो मनुष्य को ऊँचा ले जाता है। तप यह नहीं कि देह को जर्जरीभूत

बनाया जाय। यह प्रकृति का काम है। हमारे कर्म ज्ञान पूर्वक हों और उनके करने में हम सदैव तत्पर रहें यही सच्चा तप है। कर्म पहले हों अथवा ज्ञानशास्त्र बतलाते हैं कि पहले ज्ञान हो पीछे कर्म। पहले आंख बतलाती हैं कि इस मार्ग पर चलना है फिर पांव आगे बढ़ते है। यदि आंखों के इशारे पर न चलें तो ठोकर लग कर चकनाचूर हो जावें। जिसको ज्ञान नहीं वह पशु समान है। वही जातियां जीवित जागृत हैं जिनमें ज्ञान को उच्च स्थान दिया जाता है।

हमारा आदर्श ऊंचा होना चाहिए।

मैंने आपको बतलाया कि हम परमात्मा के अमृत पुत्र हैं। अमृत पान करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हमारा लक्ष्य उच्च होना चाहिए। हम हिमालय पर न चढ़ सकें, परन्तु लक्ष्य हमारे संमुख यही रहना चाहिए। यदि हमारा आदर्श महान् न हो तो हम संसार में संकुचित ही रहेंगे। वेद में प्रार्थना आई है कि हे इन्द्र! हमें सिद्धियों के मार्ग पर चलाओ, हे परमात्मन्! हमें ऐश्वर्य्य दो। परमात्मा देता है परन्तु किनको? जिनका कोष धर्म कार्य्यों के लिए खुला रहता है। कंजूस मक्खीचूस का कदाचित् संसार में ऐश्वर्य्य नहीं बढ़ सकता। प्रकाश वही धन्य है जो औरों के लिए चमकता है।

बहनों और भाइयो! जो जीवन औरों के लिए

है वही मंगल जीवन है। लोग एक और भ्रम में पड़ रहे हैं। सब कर्म धर्म और ऐश्वर्य को छोड़ने के नाम को लोगों ने त्याग समझ रक्खा है। आर्य-धर्म ऐसे त्याग ही की निन्दा करता है।

भक्ति क्यों करें ?

कई लोग पूछते हैं क्यों जी ! क्या परमात्मा खुशामदी है जो हम उसकी भक्ति करके उसको रिझावें ?

जब वह न्यायकारी है तो जैसे कर्म हम करेंगे वैसा ही वह फल देगा, उसने हमपर दया कौनसी की है जो हम उसकी भक्ति करें ?

भाइयो ! परमात्मा की दया बड़ी अपार है अपने शरीर की ओर ही देखो, उसने आंखें दी और वह भी उचित स्थान पर।

बच्चा पाठशाला नहीं जाता, माता उसके दो थप्पड़ लगाती है उसमें दया भी है और न्याय भी। कोई किसीको दो पैसे देता है वह उसकी दया का कृतज्ञ हो जाता है। परमात्मा ने हमें भूमि दी जिसपर हम एक दाना फैंकते हैं और वह हमें सहस्रों दानें देती है। प्राणशक्ति दी, सूर्य और चांद दिये। यह परमात्मा की दया ही है। यह हमारे कौनसे कर्मों का फल है।

भाइयो ! परमात्मा खुशामदी नहीं और न उसे हमारी भक्ति और स्तुति की ही कोई चाह है, परन्तु जिसका

हम स्तुति करेंगे उसके गुण हममें प्रविष्ट होंगे। परमात्मा की भक्ति और स्तुति हम अपने हित के लिए करते हैं। मेरे कथन का सार यह है कि हमारा आदर्श और लक्ष्य ऊंचा होना चाहिए।

परमात्मा की प्राप्ति हमारा लक्ष्य हो, प्रकृति स्वयंमेव हमारी सेवा के लिए उपस्थित होगी। इन्द्रियों के सुखों का हमारे यहां तिरस्कार नहीं, यदि आदर्श भगवान् की प्राप्ति हो।

दयानन्द के चरणचिन्हों पर चलो।

गौतम बुद्ध के समय जिन बातों की आवश्यकता थी, सम्भव है आज उनकी आवश्यकता न हो। बुद्ध के समय पश्चिमी लहर का नाम भी न था, इस लिए परमात्मा ने इस समय के अनुकूल हमारे लिए एक ऋषि भेजा जिसकी कृपा से इस गङ्गा के पवित्र तट पर सहस्रों नर नारी एकत्रित हो भगवान् की भक्ति कर रहे हैं। बड़े २ महात्माओं ने सुधार और उद्धार का काम किया परन्तु उनको वह सफलता प्राप्त न हुई जो दयानन्द को हो रही है। इस महात्मा के चरण-चिन्हों पर चले बिना आपको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती, सब लताएं भिन्न २ ऋतुओं में आकर सड़ जाती हैं परन्तु यदि कोई लता किसी काल में भी नहीं कुम्हलाती तो वह आर्य्यसमाजरूपी अमर लता है जो माली

दयानन्द ने लगाई है। यह एक अशोक-लता है जो आप के जीवनों को उज्ज्वल और शांत बनायगी।

संसार में यदि सुख का जीवन व्यतीत करना है तो इस लंगोट बंद संन्यासी को अपना आदर्श रक्खो, जिसके तप से आज आर्यसमाज सफल हो रहा है। आर्यसमाज का गौरव तब तक ही स्थिर रहेगा जब तक यह उस ऋषि के चरण-चिन्हों पर चलता रहेगा।

——:o:——

आर्य्यसमाज के नियमों का महत्त्व।

महर्षि दयानन्दजी के कार्य-काल में आर्यजनता में भ्रममूलक मन्तव्यों की भरमार थी। आर्य्यों में कौन मुख्य आराधनीय देव है और उसका स्वरूप कैसा है, यह निश्चित रूप से बताना कठिन था। देवमाला का ऐसा जटिल जाल बिछा पड़ा था कि उससे पार पाना परम दुष्कर हो गया था। इसी प्रकार विविध सम्प्रदायों के माननीय ग्रन्थ नाना होने से आर्यों में किसी एक पुस्तक की परम प्रतिष्ठा न थी। एक साधारण गाथा से लेकर वेद तक सभी ग्रन्थ एक ही गठरी में बाँधे जाते थे। मूंगा और मोती एक ही भाव बिकते थे, काँच और कंचन एक ही तुला पर तुलते थे। ईश्वर और धर्म्म-पुस्तक के सम्बन्ध में इस अस्त-व्यस्त विश्वास ने आर्य-धर्म्म को अतीव दुर्बल और दीन बना दिया था। बहुत समीप था कि वैदिक संस्कृति का सर्वलोप हो जाता, परन्तु विधाता ने श्रीदयानन्द ऐसे अद्वितीय सुधारक को भेजकर इस मृत्यु के महामुख से हमें बाल बाल बचा लिया।

महर्षि ने ईश्वर और ईश्वर-प्रदत्त आदेश में विश्वास के दो नियमों को—आर्यसमाज के मन्तव्यों को—इतना सुनिश्चित और सुस्पष्ट कर दिया है कि उससे अधिक कुछ कहा ही नहीं जा सकता। ये दोनों विश्वास आर्यसमाज

की आधार-शिला हैं, इसके जीवन की मौलिक जड़ हैं ।

श्री महाराज के कार्य-क्षेत्र में अवतरण के पूर्व लोक-हित करना, जन-सुधार में प्रवृत्त होना, दीन-दलित जनों को उभारना, आतुर और अनाथों के परित्राण में भाग लेना आर्य्यावर्त्त के नाना मतों में धर्म्म का कोई अंग नहीं समझा जाता था । मतवादों और साम्प्रदायिक व्रत-बँधनों में बँध जाना ही धर्म्म माना गया था । व्यवहार में, व्यापार में, और सांसारिक कामों में धर्म्मपूर्वक सत्यानुसार वर्तना चाहिये, यह बताना धर्म्म की सीमा से बाहर था । धर्म्म-गुरु परोपकार का, मेल-मिलाप का, एकता का, और शिष्टाचार का उपदेश नहीं देते थे। इस कारण तत्कालीन आर्य धर्म्म जहां विश्वास का वर्णन करने में मूक था, वहां जन-सेवा, सार्वजनिक और लोक हित के कामों में निरा पंगुपन प्रकट कर रहा था । इससे उसकी उपयुक्तता दिखाई नहीं देती थी । श्रीदयानन्दजी ने वैदिक सेवा-सङ्घ सुगठित करते समय तीसरे नियम से ऊपर के सारे नियम ऐसे बनाये जो मनुष्य को उदार, सच्चा, सरल और विवेकी बनाते हैं, उसमें प्रीति, सभ्यता और शिष्टाचार भरते हैं और उसे लोकहित और परोपकार की दीक्षा देते हैं ।

इन नियमों का अनुशीलन प्रत्येक आर्य-सभासद को करना चाहिये । ये दशों नियम इतने उत्तम आर

इतने पूर्ण हैं कि उनके अनुशीलन से यह लोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं । आर्यसमाजों में इनके समझने तथा विचारने का जितना प्रचार किया जाय, उतना ही स्वल्प है ।

दस नियमों की दीक्षा देकर आर्य्यसमाज का सभासद बनाने की रीति इसी लिए रक्खी गई है कि एक स्वयंसेवक-सेवा-संघ बन जाय और उससे कार्य में, धर्म्म-प्रचार में और लोक-हित में वृद्धि हो । यदि इन नियमों के निर्माण का यह उद्देश्य न होता तो उनमें इतने कामों का करना नियत न किया जाता । इस लिए प्रत्येक आर्य-सभासद को समझना चाहिये कि वह धर्म्म-सेना का एक सैनिक है, लोक-हित का एक व्रती है । श्रीदयानन्दजी ने अपना कार्य-भार—वैदिक धर्म्म का प्रचार—उसे सौंपा है । वह उनका उत्तराधिकारी है, वैदिक धर्म्म का पुरुषार्थी कर्म्मचारी है, वैदिक धर्म्म, वैदिक संस्कृति तथा आर्य-सभ्यता की उन्नति-अवनति और हानि-लाभ का उस पर पूरा पूरा उत्तरदायित्व है ।

आर्यसमाज का धर्म वैदिक है । पवित्र वेद में जिन कर्तव्य कर्मों के करने का विधान है, वे धर्म्म हैं । वैदिक धर्म्म मनुष्य को एक सर्वाङ्ग सुन्दर और पूर्ण मनुष्य बनाता है । यह लोक और परलोक अभ्युदय

और निश्रेयस—दोनों को सिद्ध करता है। यह अर्थ और परमार्थ दोनों का विधान करता है।

वेद में देवाधिदेव की स्तुति की सैंकड़ों श्रुतियाँ पाई जाती हैं। उसमें प्रार्थना और उपासना के अनेकानेक मंत्र मिलते है। "तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।" अर्थात् उसी परम पुरुष को जान कर मनुष्य मृत्यु से पार जाता है, इसके अतिरिक्त मुक्ति का मार्ग दूसरा नहीं है। इस उपदेश से वेद ने ईश्वरवाद को ही धर्म्म में परम पद प्रदान किया है। ईश्वर-मूलक धर्म्म भक्ति का धर्म्म हुआ करता है, प्रेममय धर्म्म होता है, श्रद्धा तथा विश्वास का धर्म्म होता है, सेवा का धर्म्म होता है, परोपकार का और आशा का धर्म्म होता है।

उपर्युक्त सर्वोत्तम धर्म्म आर्य्यावर्त में लुप्तप्राय हो गया था। जहां देखो वहां अवैदिक गाथाएं गाई जाती थीं, अवैदिक कर्म्मकाण्ड का प्रचार था, और अवैदिक पूजापाठ प्रचलित हो रहा था। आर्यों का धार्मिक और सामाजिक रीति-नीति में इतना भारी भेद दिखाई देता था कि भारतभूमि पर कभी वैदिक-धर्म का प्रचार था, यह समझना भी कठिन हो गया था। उस युग में वैदिक आशावाद के आकाश में निराशा-निशा का पूर्ण राज्य था। ऐसी भयङ्कर परिस्थिति को बदल डालने के लिए ही महर्षि दयानन्द का आगमन हुआ था।

महर्षि ने वैदिक धर्म के प्रचार तथा विस्तार के लिए आर्य्यसमाज की स्थापना की । यह एक प्रकार का वैदिक-सेवक-सेना-संघ संगठित किया । नियम निर्माण करके उसके विश्वास को, लक्ष्य को, उद्देश्य को, धर्म्म को और कर्तव्य-कर्म को सुनिश्चित कर दिया । महाराज ने आर्य्यों के लिए दस नियमों का एक ऐसा सरल, सुगम और सीधा राजमार्ग बनाया है कि उसपर चलते हुए भ्रम, भूल, भय और भेद-भाव आदि कोई भी विघ्न बाधा मार्ग में नहीं पड़नी चाहिए । सारे संशय मिट जाने चाहिये, और मनुष्यत्व का पूर्ण विकाश हो जाना चाहिये । परन्तु यह तभी हो सकता है जब इन दस नियमों का प्रतिदिन अनुशीलन किया जाय और उनका पूरा पूरा पालन हो ।

——:०:——

त्याग ।
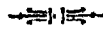
श्रीमद्दयानन्द त्याग और वैराग्य के अवतार-स्वरूप थे । जिस परम वैराग्य से, जिस गहरी लग्न से, और जिस उच्च भाव से उन्होंने अपने सम्पत्तिशाली पितृगृह का परित्याग किया, वह उनके त्याग-भाव का परिचायक परम प्रमाण और उनकी विशुद्ध वैराग्य-विशेषता का सूचक है ।

जिन दिनों श्रीदयानन्द जिज्ञासु-रूप से हिमालय की यात्रा कर रहे थे, एक दिन वे ओखी-मठ में जा टिके । उनके बुद्धि विकास, उनके युक्ति बल, उनकी तुरन्त उत्तर-प्रत्युत्तर देने की शक्ति और उनकी सरल, पर माधुरी मूर्त्ति पर उस मठ का महन्त मुग्ध हो गया । दयानन्द को चेला बनाने की लालसा से अपनी गुरुगद्दी के गुणों का बखान करते हुए वह कहने लगा—"दयानन्द जी ! आप हमारे शिष्य बन जायँ तो आप हमारी सारी सम्पत्ति के स्वामी हो जायँगे । इतना धन पाकर स्वतंत्रता से मन-माना सुख भोगेंगे, हमारे लाखों शिष्यों और सेवकों में खूब ही पूजा पावेंगे ।"

महात्यागी परमहंस जी इस महन्त के मायामय महाजाल में भला कब फंसने वाले थे । वे झुँझला कर बोले,—"महन्तजी ! यदि मेरे मन में माया की भूख होती, तो मैं धन-धान्य-पूर्ण अपने पितृप्रसाद का क्यों

परित्याग करता? वहां तो आपके चढ़ावे में चढ़े, पूजा पाठ से आये, यन्त्र-मन्त्र से कमाये, और नाना लीलाओं से लिए हुए रुपयों से कहीं अधिक ऐश्वर्य था। महाशय! जिस वस्तु की खोज में मैंने घर-बार और सांसारिक सुखों की सदा के लिये जलाञ्जलि दे दी है, मैं देखता हूँ, आप लोगों को उसका कुछ भी ज्ञान नहीं। इस कारण आपका चेला बनना तो दूर रहा, मेरा तो यहाँ रहना भी असम्भव है।"

महन्त महाशय उस मुनि के मुख से धन के प्रति धिक्कारध्वनि निकलती सुन आश्चर्यचकित होकर पूछने लगे—"फिर वह वस्तु क्या है जिसकी खोज में आपने यह भीषण महाव्रत धारण किया है?"

महाराज ने कहा—"वह वस्तु यथार्थ योग्य और आत्मपद की प्राप्ति है।" मठाधीश ने उनकी धुन की, उनकी धारणा की, उनकी तपश्चर्या की, भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए आग्रह किया कि और नहीं तो कुछ दिन तक तो यहां अवश्य निवास कीजिये। परन्तु वायु के सदृश अप्रतिबन्ध विहारी वैरागी ने केवल एक ही रात वहां वास किया।

एक बार राणा श्रीसज्जनसिंह जी ने महादेव के मन्दिर की गद्दी श्रीमहाराज के चरणों में अर्पण करते हुए कहा कि इस मन्दिर के साथ बड़ी भारी जागीर लगी हुई है

और राज्य भी इसी मन्दिर को अर्पित है । इस मन्दिर के महन्त बनने पर आप राजगुरु तो हो जायँगे, परन्तु साथ ही आपको पुस्तक-प्रकाशन तथा धर्म-प्रचार के कार्यों में भी बड़ी सुगमता हो जायगी । फिर आपको किसीसे सहायता लेने की आवश्यकता न रहेगी । इसपर स्वामी जी आवेश-पूर्वक बोले—राणाजी ! आप मेरे सम्मुख प्रलोभन-पाश फैला कर मुझे परमात्मदेव से पराङ्मुख करना चाहते हैं । यह रजोगुणी लोभ-लालच मुझे अनन्त ऐश्वर्यवान् ईश्वर से विमुख नहीं कर सकता । ऐसे वाक्य कहने का साहस फिर कभी न कीजियेगा ।

अवधूत-वृत्ति में गङ्गा-तीर पर विचरण के दिनों में श्रीदयानन्द केवल कौपीन ही रखते थे । वे नगर में नहीं ठहरते थे । वनों में, वृक्षों के नीचे, गङ्गाजी की रेत पर ही रातें काटा करते थे । एकान्त कुटिया में कहीं कदाचित् ही विश्राम लेते । अति शीत-पात पर भी उनकी यह दिगम्बर-वृत्ति बराबर बनी रही थी । उनकी इस अवस्त्र अवस्था की तपस्या जो देखता, दांतों अङ्गुली दबाता और उनमें अलौकिक कर्म की कल्पना करता ।

लोग थोड़ा सा तप-जप करने पर भी अपार अहङ्कार करने लग जाते हैं, दूसरों को तुच्छातितुच्छ समझने लगते हैं । पर पूज्य परमहंसजी में मद-मान की मात्रा लवलेश मात्र भी नहीं थी । एक दिन एक सज्जन ने उनसे पूछा

कि इतना तीव्र जाड़ा पड़ने पर भी आपकी काया को कँपकँपी कम्पायमान नहीं कर रही है, इसका कारण क्या है ? महाराज ने मुसकरा कर उत्तर दिया—"कारण है नित्य नग्न रहने का अभ्यास। आप भी मुख-मण्डल को सदा नग्न रखते हैं, इसलिए आपके इस अंग को शीत नहीं सताता। मैं सारा शरीर नंगा रखता हूँ इसलिए मेरे सारे तन में शीत को सहने का सामर्थ्य हो गया है।"

तपस्या के दिनों में श्रीदयानन्द आचार्य भी नगर में क्वचित् ही जाते थे। उनका आसन दिन रात प्रायः वृक्षमूल और गङ्गाकूल ही हुआ करता था। ऐसे निर्जन स्थानों में जिस समय और जैसी भी रूखी-सूखी चपाती कोई दे जाता, वे उसीपर निर्वाह करते। कई बार तो आप अनेक दिनों तक निराहार ही पड़े रहते, परन्तु माँगने न जाते। उन्होंने रसना के रस को ऐसा वश में किया था कि यदि कोई जली-भुनी रोटी पहले ले आता तो प्रसन्नता-पूर्वक उसी को खा लेते, और पीछे से आये विविध व्यञ्जनयुक्त स्वादु भोजन को स्पर्श तक न करते। चासी के वैरागी बाबा को उनका वहां रहना नहीं भाता था। उसे डर था कि आस पास के राजपूत इनके अनुयायी हो गये तो मेरी आजीविका जड़ मूल से जाती रहेगी। भक्तजनों का भोजन आने के पहले ही वह बाबा प्रतिदिन जले भुने, अधकचे दो तीन मोटे २ रोट उनके

सामने रख देता और वे वीतरागी उसी को खाकर तृप्त हो जाते, और पीछे आये उत्तमोत्तम पदार्थों की ओर दृष्टिपात तक न करते। उस बाबा ने सोचा कि ये मेरे अधपके टिकड़ों को बड़ी प्रसन्नता से खा जाते हैं, किसीके आगे नाम तक नहीं लेते। यह तो कोई असाधारण सन्त हैं। विरोध-बुद्धि छोड़ कर इनकी सेवा से यह जन्म सफल करना चाहिये। तब से वह मनसा, वाचा, कर्मणा उनका आज्ञाकारी सेवक बन गया।

——:०:——

आर्य्य-संगठन ।

इस समय, जहां देखो वहीं हिन्दू सज्जन हिन्दू-संगठन को अनुभव कर रहे हैं। उनका विचार है कि हिन्दू जाति जिस बुरी तरह बिखरी हुई है, बिरादरियों की बन्दशों में बटी हुई है, ऊँच नीच के विचारों के गंदे कीचड़ में फँसी हुई है, छुआछूत के भ्रमभूत से ग्रसी हुई है और सबसे बढ़ कर मतमतान्तारों के बड़े भारी भेद भावों में छिन्न भिन्न हो रही है, अगर इसकी यही हालत बनी रही और इसे समानता के किसा एक सूत में न सुगठित किया गया तो एक दिन ऐसा ज़रूर आयगा जब इसका ज़मीन के तख्ते पर से नामोनिशां मिट जायगा। उनका इस बात पर भी गहरा ध्यान है कि आई मर्दमशुमारी में हिन्दू लाखों की संख्या में कम हो जाते हैं। इस घटती के दो ही परिणाम निकल सकते हैं, एक तो यह कि यदि हिन्दुओं की मौजूदा हालत यही रही तो इनको दूसरे मत निगल जांयगे और घटते घटते हिन्दू जाति का जगत् में ख़ातमा हो जायगा। दूसरे, अगर हिन्दू किसी तरह बच बचा कर रह भी गये तो वे संख्या में इतने कम हो जांयगे कि जिससे मुलकी और कौमी जिंदगी में उनकी कोई कीमत न होगी। बहु संख्या के आगे,

दासों की तरह, उनको सदा सिर नवाये पड़ा रहना पड़ेगा। उनके तन धन की, धर्म कर्म की और लाज शर्म की रक्षा दूसरों के रहम पर ही होगी। यहूदियों की तरह, वे हिन्दू अपने पुरुखाओं के देश में, बहु संख्या और जबरदस्तों की लाठी की भैंस बने हुए सड़ सड़ कर और कुढ़ कुढ़ कर कालख और कलंक का कड़ा जीवन काटा करेंगे।

तीसरा विचार भी हिन्दू तुक्का नज़र के आगे एक खौफ़नाक और ख़तरनाक रूप धारण कर रहा है। और वह बिल्कुल दो तीन साल से प्रकट हुआ है। वह खिलाफत और उलमाओं की दबाव की नीति है और हिन्दुस्तान में दीन इसलाम के प्रचार से मुसलमानों के एक खास हिस्से का जगह जगह खामखा, हिन्दुओं पर ज़ोरो जुल्म पर उतर आना है, मारधाड़ मचा देना है, दिन दहाड़े लूट खसूट करने लग जाना है। सबसे बढ़ कर शैतानी हरकत यह कि हिन्दू औरतों की अस्मत पर हाथ डाला गया है। उनको तरह तरह से बेइज्जत किया गया है। देश के भाइयों की इन निरी हैवानी हरकतों से हिन्दू कांप गये हैं। उनको इस हालत में पड़े, अब अपना भविष्य, भारी भयावना दिखाई देने लगा है। वे इस वहशीयाना मुसीबत से पार पाने के उपाय सोचने लगे हैं। परन्तु मौलाने इतने सिर चढ़ गये हैं,

दबाव डालने के इतने आदी हो गये हैं कि हिन्दुओं को अपनी बिगड़ी बनाने से भी रोकते हैं। गिरे हिन्दुओं को उठाने जाने वालों को भी टोकते हैं, दलितों के उद्धार सुधार में विघ्न बाधा डालना, नीच से नीच उपायों से हिन्दुओं को बहकाना, उनको सिर उठाने से रोकना, मौलाना मण्डली के कुछ एक मनुष्यों का, आजकल आम काम हो रहा है। मालाबार के अत्याचारों को हिन्दू चुपचाप सह गये इस कारण दबाने की नीति उनमें घर कर गई है। उनको इसका स्वाद आगया है। कहीं हिन्दू अपने दुःख दर्द पर अगर हां भी करते हैं तो उल्मादल झट आंखें तिरेर कर कहता है, देखो अगर चीं चपड़ करोगे तो एक और चपत खाओगे। दूसरे, तुम्हारे दुहाई मचाने से हिन्दू मुसलिम इतहाद का सरसब्ज़ बाग़ तबाह हो जायगा और स्वराज के सूर्य्य को न चढ़ने देने का पाप तुम्हारे पिंड पर पड़ेगा। कुछ एक हिन्दू नेताओं ने भी यही समझ रक्खा है कि युनिटी के जूए में जुत कर हमें कंधा नीचा किये चुपचाप चले चलना चाहिये। दूसरा जोड़ीदार सिर उठाये चले, सींग मारे, पर परवाह नहीं, हम तो गर्दन तक नहीं हिलायेंगे। इससे उल्मादल को इतनी हिम्मत हो गई है कि वे लोग सारा बोझा हिन्दुओं पर ही डाल कर चलते हैं। उनके भाई जो ज़ुल्मो सितम करें उसमें वे अपनी जिम्मेदारी ज़रा भी नहीं मानते।

यह घोर अत्याचार का प्रवाह तभी बंद हो सकता है जब हिन्दुओं की तरफ़ से खड़े होने वाले लीडर ज़रा इख़लाकी जुरत से काम लें, पोचापाची की पतित पालसी को त्याग दें। मुआमले को दबाने और सत्य को छुपाने की निसबत अपने देश भाइयों को उनके अन्याय और अत्याचारों को मानने के लिए मजबूर करें और उल्मा को साफ़ कह दें कि अगर आप अपने हममज़हबी भाइयों को ऐसे पशुपन के घोरतर पापों के लिए भी पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त करने को मज़बूर नहीं करते हो तो अमन और इतफ़ाक की सुरें अलापना बच्चों को बहलाना और अहमकों को परचाना है!

जिनका हिन्दू तन नहीं, हिन्दू मन नहीं, हिन्दू मस्तक नहीं और नांही हिन्दू आचार विचार हैं वे हिन्दुओं के मुखिया चाहे जो कहें परन्तु सच्चे हिन्दुओं का यह पक्का विश्वास है कि खिलाफ़त मुवमेंट हिन्दुओं के खिलाफ़ काम कर रही है। इस पार्टी ने अपने हममज़हबों को हैवानी हरकतों से रोकने की कभी पूरी कोशिश नहीं की। इसकी लीडरी में हमारे पर वे ज़ुल्म ढाये गये हैं जिनकी मिसाल किसी वहशी जमाने में भी नहीं मिलती। यह कट्टर और मुत्त-सब मौलानों की मण्डली है। इससे सच्ची मुहब्बत की उम्मीद करना अपने आपको धोखा देना है। पर हिन्दू बेचारे क्या करें? उनके अकसर अगुवा मृगतृष्णा को

जान बूझ कर जल मान रहे हैं। मारीच की माया को सोने का मृग समझ बैठे हैं। अगर आज भगवान् दयानन्द यहां होते तो भारतवासियों को इस राक्षसी काम को तुरन्त रोक देने के लिए मजबूर करके ही छोड़ते। अत्याचारियों को तोबा करने के लिए विवश कर देते। वे मेल के मनोहर नाम से सीता और सावित्री की सन्तान रूप सतियों के सती धर्म हरण को कभी भी सहन न कर सकते। वे केसरी की तरह दहाड़ कर, मेघ की भांति गर्ज कर और बिजली के समान कड़क कर मैदान में आते और पंडों की पाप भरी पोल का भांडा फोड़ करके ही आराम लेते। मेरा तो विश्वास यह है कि उस नर-सिंह की मौजूदगी में इस पाप पिशाच कर्म को करने का किसीको हौसला ही न होता। भगवान् दयानन्द देश-वासियों को न्याय और सत्य के लिए खड़ा करते, बोदे और बुज़दिल लीडरों को भेड़ बकरी की तरह महा मुत्त-सब मौलाना दल की मनमानी बातों के आगे दब्बू न बनने देते।

अगर युवक भारत के जन्मदाता, राजनीति के अवतार और ज्ञान के सागर लोकमान्य तिलक महाराज भी ज़िन्दा होते तो जातीयसभा को मौलानों की मुट्ठी का पंछी न बनने देते। राजनीति की सुन्दर नाक में किसी एक मत की नकेल पड़ी न दिखाई देती। राष्ट्रीय

आन्दोलन मुत्तसवी मौलवियों की अंगुलियों के इशारों पर नाच नाच कर तमाशे न करता फिरता। और हिन्दुओं की इतनी हत्या और हानि न होने पाती।

महर्षि दयानन्द के कार्य्य-काल से पहले पादरी दल और. मौलवियों का मण्डल हिन्दुओं को उनकी कहानियों से और कुरीतियों से शर्मिंदा करके उनको अपने धर्म की ओर खींचता था। खास करके पादरी लोगों का यह काम बहुत बड़ा चढ़ा हुआ था। इसमें पादरियों को सफलता भी हो रही थी। परन्तु विरजानन्द जी की कुटिया से निकल कर ज्योंही महर्षि मतों के मैदान में कूदे और लगे दलीलों के दिलेराना वार करने तो तुरन्त ही मौलवियों और पादरियों ने मैदान छोड़ दिया। अपनी ही पोथियों की पोल खुल जाने से उनको अपना घर सम्भालने ही की फ़िकर पड़ गई।

महाराज यह जानते थे कि केवल दूसरे मत वालों का मुंह बन्द कर देने से आर्य्य-जाति और आर्य्यधर्म मौत के मुख से छुटकारा नहीं पा सकते। इनके जीवन के लिए संशोधन और संगठन दोनों साधन बड़े जरूरी हैं। वे रात दिन दोनों तरीकों को कामयाब बनाने के यत्न करते थे।

इस सदी में वे पहले महात्मा थे जिन्होंने आर्य्य मर्यादा में रह कर चारों वर्णों को एक जाति, एक धर्म,

और एक आदर्श के तार में पिरो देने की कोशिश की। इसके लिए उनको कितने शास्त्रार्थों के संग्राम लड़ने पड़े, कितने कष्ट सहने पड़े, इस बात को सभी दिल दिमाग रखने वाले भारतवासी अच्छी तरह जानते हैं।

उनके लेख, उनके व्याख्यान, उनके शास्त्रार्थ और उनके जीवन के हाल इस बात की जोर दार गवाही देते हैं कि श्रीदयानन्द आर्य्यों में धर्म्म की एकता करने में रात दिन यत्नशील रहते थे। सच तो यह है कि वे इस काम को अपने जीवन का उद्देश्य समझते थे।

उन्होंने अमृतसर में और अजमेर में बड़े जिम्मेदार अंग्रेज अफसरों के पूछने पर यही उत्तर दिया कि मेरा उद्देश्य सब मतों को वेद की एक ही वेदी पर सुगठित करने का है। वर्त्तमान हिन्दी के विधाता पंडित हरिश्चन्द्र जी को उन्होंने प्रयाग में कहा कि मैं तो यह चाहता हूं कि जैसे दो हाथ इकट्ठे करके मिलाये जाते हैं ऐसे ही सब मिल जायें।

महाराज ने देहली में आर्य्यों, मुसलमानों और ब्राह्मसमाजियों को एकत्र करके कहा कि आप सब मेल मिलाप करके एक महासंगठन बनाओ जिससे भारत का सच्चा हित हो सके।

श्री स्वामी जी ने आर्य्यसमाज का संगठन बना कर आर्य्य-जनता के आगे रक्खा और बताया कि आर्य्य

जाति और सच्चे धर्म्म को बचाने का यह मार्ग है। और सबसे बढ़कर, वे अपने आखिरी दिनों में, राजस्थान के राजाओं महाराजाओं को एक उद्देश्य के आसन पर बैठा रहे थे। उनको संगठन के सूत्र समझा रहे थे।

महर्षि के सारे काम को गहरी नजर से देखें तो साफ़ मालूम हो जाता है कि वे आर्य्य-जाति में नया जीवन लाने के लिए उसमें चारों वर्णों का संगठन चाहते थे, धर्म्म की एकता क़ायम कर रहे थे और इसकी दुर्बलता को दूर करने के लिए जनता को ब्रह्मचर्य्य पालन और व्यायाम के करने का उपदेश देते थे।

——:०:——

अपने समय के बड़े समालोचक।

जिन महापुरुषों ने कार्य्य क्षेत्र में कभी कदम रक्खा है वे सभी थोड़े बहुत समालोचक अवश्य थे। यह होना भी चाहिये। क्योंकि महापुरुषों को बनाने वाले राज्य, समाज, धर्म्म और विज्ञान आदि की उन्नति, और सुधार के कर्म ही हुआ करते हैं। वैसे देखें तो सुधारक सज्जन ही महापुरुष हुये हैं और सुधार का काम समालोचना के बिना कदापि नहीं किया जा सकता। स्वामी दयानन्द जी भी धार्मिक और सामाजिक सुधारक थे। इसी कारण वे अपने समय के बड़े समालोचक थे।

समालोचना करना कोई बुरा काम नहीं है प्रत्युत जाति, समाज और धर्म्म के जीवन के लिए बहुत ही ज़रूरी है। जैसे बाग में से घास पात निकाल फैंकने से फलों और फूलों के पौदों को अधिक पुष्टि मिलती है, कपड़े को धोने से उसकी असली हालत निखर आती है, बर्तन को मांजने से वह चमचमा उठता है और धातु पर लगे जंग को उतार देने से उसकी आयु और दृढ़ता दोनों बढ़ जाती हैं ऐसे ही यदि जाति, समाज और धर्म्म में जो कुनीतियां और कुरीतियां आ जाती हैं उनको समालोचना द्वारा दूर कर दिया जाय तो जाति,

समाज और धर्म्म की काया स्वच्छ हो जाती है। वे पूरी पुष्टि प्राप्त कर लेते हैं। उनका असली स्वरूप मन्द नहीं होने पाता और उनका सच्चा जीवन अपनी मज़बूत जड़ पकड़ लेता है। स्वामी दयानन्द जी के लेखों को यदि विवेक और विचार से कोई पढ़े तो वह सुगमता से यह जान जायगा कि उस महापुरुष ने जाति, समाज धर्म्म और मनुष्यमात्र के हित से प्रेरित होकर ही समालोचना की है। वे समालोचना करते हुए अपने निर्मल भाव को इन शब्दों में प्रकाशित करते हैं "एक दूसरे को हानि से पृथक् रह (कर) परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है"।

महापुरुषों को जहां पर हित की अधिक चिन्ता हुआ करती है वहां वे सत्य के भी परम उपासक और पक्षपाती हुआ करते हैं। श्रीराम और हरिश्चन्द्र आदि अनेक महानुभाव ऐसे हो गये हैं जिन्होंने सुख की सब सामग्री छोड़ी, हास विलास का परित्याग किया, धन सम्पत्ति को तिलांजली दी, और सैंकड़ों विघ्न बाधाएं झेलीं पर सत्य के पालन करने से जी नहीं चुराया। बुद्धदेव जैसे सन्त तो सत्य को ही धर्म और परमपद माना करते थे। ऐसे जनों की दृष्टि में जो असत्य था, भूल थी, और भ्रम था उसका उन्होंने खूब ही खंडन किया। श्रीराम ने जो जाबालि के नास्तिक पक्ष का जिन

शब्दों में खंडन किया उसे कौन ज्ञानी जन है जो नहीं जानता। बुद्धदेव पाखंड का खंडन तो करते ही थे परन्तु बिगड़े हुए चेले देवदत्त की पोल खोलने के लिए भी उन्होंने साधुओं को भेजा। कबीर आदि सन्तों की वाणियों में समालोचना के ऐसे कड़े शब्द मिलते हैं जो हद्द को पार कर गये हैं। क्राइस्ट आदि सभी मत प्रवर्त्तक अपने सत्य के प्रचार के लिए विरोधी विचारों के विरुद्ध बहुत कड़ा बोलते थे। आज भी ऐसा कौन सज्जन सारे भूमंडल पर मिलता है जो अपने से प्रतिकूल पक्ष पर अपने वचनों की तेज वर्षा नहीं करता; अपने विरोधी दल की दलीलों का जबरदस्त से जबरदस्त उत्तर नहीं देता। सच तो यह है कि कार्य्यक्षेत्र में उत्तर कर हर एक सज्जन को अपने अपने माने हुए सत्य की पुष्टि और रक्षा के लिए तर्क तीर और खंडन की खड्ग को पकड़ना ही पड़ता है।

स्वामी दयानन्द महाराज वेदों को सत्य ज्ञान का स्रोत मानते थे। उनका यह मत निश्चित था कि वैदिक धर्म्म ही सच्चा धर्म्म है। उन्होंने उसी अपने सत्य सनातन वेद की पुष्टि और रक्षा के लिए समालोचना की है। वे दिल से चाहते थे कि उत्तर प्रत्युत्तर से जनता में सत्य के सूर्य्य का प्रकाश हो। उन्होंने समालोचना करते समय अपने मनोरथ को इस प्रकार

प्रकाशित किया है "यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिए (है) सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसको इच्छा हो वह न माने वा माने, किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता" ॥

समालोचक में यह भी गुण होना चाहिए कि वह दूसरे के सत्य को स्वीकार करे। उसकी अच्छी बातों को दर्शावे। जिन जिन बातों में प्रतिपक्षी मिलता हो उनको माने। इसके बिना समालोचना न्याय से बाहर चली जाती है। यद्यपि शंकर आदि महापुरुषों ने कड़ी से कड़ी समालोचना करते समय इस नियम को दृष्टिगत नहीं किया। अपने प्रतिपक्षी के मतों के अच्छे से अच्छे अंशों की प्रशंसा नहीं की परन्तु श्री स्वामी जी ने इस नियम का पालन अवश्य किया है। उनपर यह दोष लगाना कि वे अपने से विरुद्ध मतों के अच्छे अंशों पर दृष्टि नहीं डालते थे, निरी अज्ञानता प्रकट करना है।

महाराज मुसलमान मत पर टीका करते हुए कहते हैं "जो कुछ इसमें थोड़ासा सत्य है वह वेदादि विद्या (की) पुस्तकों के अनुकूल होने से मुझको भी ग्राह्य है"। जैन धर्म्म की समीक्षा के अन्त में श्री महाराज फ़रमाते हैं:—"जल छान के पीना, और सूक्ष्म जीवों पर नाम मात्र की दया करना, रात्रि को भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं।"

समालोचक का दिल सदा इस बात के लिए खुला रहना चाहिए कि यदि उसके लेख में कोई भूल दिखावे तो तुरन्त उसे स्वीकार करे और उसे सुधार दे। अपनी लिखी गई और कही गई बात के झूठा सिद्ध होने पर भी हठ करना जहाँ दुराग्रह है वहाँ समालोचक के कर्म के सर्वथा प्रतिकूल है। भगवान् दयानन्द में यह दोष नहीं था। सत्य का स्वागत करने के लिए उनके दिल के दरवाजे के किवाड़ किस तरह सदा खुले रहते थे उसका पूरा पता उन्हीं के इस लेख में मिलता है:— "इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे, तत्पश्चात् जो उचित होगा तो मान लिया जायगा। क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या द्वेष, वाद विवाद और विरोध को घटाने के लिए लिखा गया है न कि इनको बढ़ाने के लिए। क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।" समालोचना का परिणाम यदि अच्छा निकल आये तो समालोचक सफल समझा जाता है। सब जन जानते हैं कि स्वामी जी की समालोचना का फल अच्छा ही निकला है। उनके लेखों से मतों के मानने वालों ने अपनी मत-पुस्तकों के आगे से सुन्दर और अच्छे अर्थ करने आरम्भ कर दिये हैं। उनमें उदारता भी आ गई थी। पिछले चार पांच वर्षों से

हिन्दुस्तानियों का एक दल असहनशील बन गया है जिसका कारण केवल यह है कि नेताओं ने लगातार तीन वर्ष तक खुशामद से अधिक काम लिया है। उन भाइयों की भारी भूलें भी उनको नहीं बताई गई। उनकी ज़ियादतियों का वर्णन करना भी पाप समझा गया। पोचापाची की कच्ची और भद्दी पालसी ही काम में लाई जाती रही। उनके अन्तःकरण की कोमलता की पुकार सभी सज्जन करते रहे जिसका फल यह निकला कि आन्दोलन शान्त होते ही एक दल अत्यन्त असहनशील और अशान्त हो गया।

स्वामी दयानन्द जी के व्याख्यान अधिकतर समालोचना से पूर्ण होते थे परन्तु पादरी और बड़े २ मुसलमान सज्जन किस प्रकार प्रेम से उनका आदर करते थे, उनकी प्रशंसा करते थे और उनको ठहरने के लिए जगह २ अपनी कोठियां खोल देते थे यह बात थोड़ासा परिचय रखने वाले भी जानते हैं। जब तक केवल आर्य्यसमाज ही काम के मैदान में था उस समय भी हिन्दू मुसलमानों के बड़े २ मरकज़ों में हजारों हिन्दू मुसलमान इकट्ठे मिलकर चर्चा करते थे, अशान्ति का कहीं नाम तक नहीं हुआ करता था। सभी धर्म्मों के लोग बड़ी भारी संख्या में मिल जुल कर बैठा करते थे। कहीं क्रोध की चिंगारी तक चमकने नहीं पाती थी। यह घोर बिगाड़ तो

तबसे होने लगा जबसे बड़े नेताओं ने दोनों भुजाएं खड़ी कर समालोचना के विरुद्ध दुहाई देनी शुरू की और एक मत के दल को मत की अवस्था में राजनीति में शामिल किया। हिन्दुस्थान की राजनीति तो तभी पवित्र रह सकती है जब हर एक इसमें हिन्दुस्थानी की हैसियत से शामिल हो।

कई एक सज्जनों का कहना है कि स्वामी जी ने दूसरे धर्म्मों के मन्तव्यों को ठीक रूप में पेश नहीं किया। इसपर इतना कह देना ही आवश्यक है कि दूसरे धर्म्मों का ठीक रूप जो कहा जाता है वह है ही स्वामी जी की समालोचना का फल। उनकी समालोचना से पूर्व इस रूप का जात-कर्म ही नहीं हुआ था।

स्वामी जी ने उन्हीं मन्तव्यों पर समालोचना की है जो उन मतों की धर्म्मपुस्तकों में साफ लिखे हैं। जिनके अर्थ आदि काल से उन मतों के महन्त ऐसा ही करते आये हैं। जिनके साथ परम्परा और इतिहास जुड़ा हुआ है और उनके समय तक उन मतों के माननीय जन उनको ऐसा ही मानते थे। आज भी करोड़ों जनों की ऐसी ही धारणा है। हां! कोई कल्पना से, नये ढङ्ग से उन पुस्तकों की व्याख्या करे तो स्वामी जी महाराज को इसमें कोई हठ नहीं है। उनका आक्षेप तो वैसा मानने वालों पर है।

कल्पना का क्या ठिकाना है ? लोग कल्पना करते समय परम्परा, इतिहास, अर्थसङ्गति, प्रकरण, वर्णन का प्रयोजन और हज़ारों वर्षों से लोग इसे क्या और कैसा समझते आये हैं इन सब बातों को भूल जाते हैं। मुझे एक बार एक ऐसा मनुष्य मिला जो गन्दे से गन्दे किस्से मार्फ़त में घटा कर बताया करता था। पंजाबी के प्रसिद्ध हीर-रांझा के किस्से को आत्मा और चित्त-वृत्ति पर घटा कर बड़ी खूबी से वर्णन किया करता था।

और तो और, महात्मा गांधी जी गीता का जैसा वर्णन करते हैं संस्कृत की साधारण सुध बुध रखने वाले भी उसको कोरी कल्पना मानते हैं। उनका मत है कि गीता के साथ परम्परा है, सच्चा इतिहास है। आदि काल से लोग ऐसा समझते और उसपर ऐसी व्याख्या करते आये हैं। सार यह है कि स्वामीजी के समय दूसरे मतों के महन्त सन्त अपनी धर्म्म-पुस्तकों के अर्थ जैसे करते थे, उनका जैसा निश्चय था जैसा मन्तव्य था उसीपर महाराज ने टिप्पणी की है। उनका भाव विवेक और बुद्धि को जगाने का था, सनातन सत्य के प्रकाश का था, लोगों में सहनशीलता पैदा करने का था और सबसे बढ़ कर एकता देवी के महामन्दिर में सबको मिल कर बैठाने का था। उनके परिणाम निकल भी वैसे ही रहे थे।

महर्षि दयानन्द का काम ।

महापुरुषों की आवश्यकता ।

पूजा के योग्य देवियो और भद्र पुरुषों ! पौराणिक देवमाला में एक स्थान पर एक भाव मिलता है कि जब कभी धर्म की हानि होती है तब विष्णु भगवान् संसार में जन्म लेते हैं । विष्णु कौन है इसका भी पता वहीं से मिलता है । वहां लिखा है कि विष्णु भगवान् के दो गुण हैं, एक प्रीति और दूसरा पुरुषार्थ । प्रीति और पुरुषार्थ के अवतार का नाम विष्णु है । जब २ संसार में यह दोनों गुण दूर होजाते हैं देवता लोग प्रार्थना करते हैं कि कोई ऐसा पुरुषार्थी महान् आत्मा उत्पन्न हो जो इस दुष्काल से रक्षा करे । देवताओं के विनय से विष्णु भगवान् अवतार धारण करते हैं । यह एक अलङ्कार है ।

देवमाला के कई लक्षण होते हैं उनका उद्देश्य यह होता है कि शुष्क और नीरस विषयों को ऐसा बनाया जाय कि मीठा और प्यारा मालूम हो और गुणी पुरुष इन सात्विक ग्रन्थों का अवलोकन करें । जिस महान् आत्मा की आज कथा आरम्भ है जिसके निर्वाण प्राप्ति की आज वर्षगांठ है उस महान् आत्मा में यह दोनों गुण विद्यमान थे, यही कारण है कि हम उसे विष्णु का

अवतार कहते हैं । इससे मेरा यह प्रयोजन नहीं, कि परमात्मा जन्म लेता है यह बात कभी मेरे स्वप्न में भी नहीं आई । मेरा कथन केवल यह है कि केवल शुद्ध और पवित्र आत्माएं ही प्रीति और पुरुषार्थ फैलाने के योग्य होती हैं और वही इसी असार संसार में उद्धार के लिये जन्म लेती हैं ।

स्वामी दयानन्द का पहला काम ।

स्वामी दयानन्द भी एक ऐसी ही पवित्र आत्मा था जो प्रीति और पुरुषार्थ को साथ लिये हुए था । महान् आत्माओं की यह पहचान है कि उनके हृदय में सबके लिए अगाध प्रेम होता है । जब देवता लोग अन्धकार से पीड़ित होते हैं तब वह विलाप करते हैं और विष्णु को उनके विलाप पर दया आजाती है । महाराज राम के कथनानुसार जब इस धर्मभूमि में लोग 'त्राहि माम् २' करने लगते हैं तो महान् आत्माओं का पुनः आविष्कार होता है । देवताओं के विलाप पर स्वामी दयानन्द को भी करुणा आई और वह महान् आत्मा जो एकान्तवास को पसन्द करता था जो अपने मन को हृदयरूपी दुर्ग में बन्द करके बैठना चाहता था, वह करुणा और दया से भर कर 'त्राहि ! त्राहि !!' करते हुए इस व्याकुल कार्यक्षेत्र में आता है । प्रश्न होता है कि हमको ऋषि के प्रेम का पता कैसे लगे ?

सज्जनगण ! मैं किसी महात्मा के लिए अपमान के शब्दों का प्रयोग नहीं किया करता, मेरा यह भाव दब चुका है। यह सत्य है कि बहुत से महान् आत्माओं ने इस देश के सुधार के यत्न किये, कई शुद्ध हृदय महात्माओं ने कोशिश की, कि इस बाटिका से कांटों और कांटेदार झाड़ियों को उखाड़ फैंकें। परन्तु एक कांटा किसीसे न उखड़ सका और वह ख़राबी कभी दूर भी हुई तो स्थिर न हुई ! मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि सब सुधारकों ने ऊंचे कुलों में ही काम किया, परन्तु वह लोग जो करोड़ों की संख्या में भारत में रहते हैं, वह लोग जो तीनों वर्णों के बोझ को उठाये हुए हैं, उनमें कोई काम नहीं हुआ, उनका किसी को भी ध्यान नहीं आया। वैष्णवों ने उनके लिए कुछ काम किया, परन्तु दुर्भाग्य-वश वह लहर भी चिरस्थायी न रही और शीघ्र ही सूख गई वा किसी दूसरी ओर को वह निकली । वैष्णव-धर्म के प्रचारकों के अतिरिक्त अन्य महानुभावों ने भी इस सम्बन्ध में बहुत काम किया, परन्तु ऋषि दयानन्द का काम इन सबसे उच्च और चिरस्थायी रहा । स्वामी दयानन्द ने इन दीन हीनों की पुकार को सुन कर दया की जो लहर चलाई, वह आज तक चल रही है:—

स्वामी दयानन्द के उपदेशों से यदि उच्च कुल वालों ने लाभ उठाया तो इन दीन पुरुषों ने भी ऋषि के चरणों

में बैठ कर आनन्द लाभ किया और कर रहे हैं । सज्जन गण ! जो पुरुष स्त्री केवल एक अपने सुन्दर आभूषणों से लदे हुए और बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए साफ़ सुथरे बालक से ही प्रेम कर सकते हैं वह कदाचित् प्रेमस्वरूप नहीं कहला सकते । प्रेमस्वरूप वह पुरुष है जो उन बालकों से प्रेम करे जिनके अंगों में कीचड़ लगा हुआ हो, जिनके वस्त्र फटे हुए हों, भोजन न मिलता हो, दरबदर ठोकरें खाते फिरते हों । जो ऐसे बालकों से प्रेम करते हैं उन्हीं का मान होता है ।

सज्जनो ! ऋषि दयानन्द में यह बात पाई जाती थी । स्वामी के प्रादुर्भाव से पूर्व यद्यपि यह शरीर सर्वाङ्ग पूर्ण था तथापि एक अंग का दूसरे अंग को सर्वथा ध्यान न था, यदि पांव मे कांटा चुभता था, तो हाथ सहायता नहीं करता था । मुंह और जिह्वा शुष्क होरहे थे कोई उफ़ तक नहीं करता था । शूद्रों अथवा पांव में धर्म की ग्लानि हो रही थी, मारे मारे फिरते थे, परन्तु आंख को करुणा न आती थी, कुछ बिंदु आंसुओं के भी नहीं निकलते थे' पांव की अंगुलियां कट रही हैं परन्तु आंख मस्त है । हाथ अपनी मुंदरियों और कंगणों पर ही मस्त हैं । वह समझते हैं कि हमें क्या ? कटती हैं तो पांव की अंगुलियां कटती हैं । स्वामी दयानन्द ने जहां शूद्रों से स्वयं प्रेम किया, वहां तीनों वर्णों में उनके लिए दया का भाव

पैदा कर दिया। आज यदि यहां पांव को कष्ट होता है तो मद्रास में बैठा हुआ मुंह हाय कर उठता है, बंगाल में बैठी भुजा सहायता के लिए चुस्त होजाती है। यह भाव है, जो स्वामी जी ने हममें पैदा किया।

ऋषि दयानन्द का दूसरा काम।

एक और कृपा ऋषि दयानन्द ने हमपर की और वह स्त्रियों में विद्या का प्रचार है। वस्वामी जी से पूर्व देश में स्त्री-शिक्षा का वहुत कम प्रचार था, इसमें संदेह नहीं कि कई महात्माओं ने इसका प्रचार किया परन्तु एक दुर्ग जो पौराणिकों ने बनाया हुआ था वह न टूटा। यह दुर्ग एक श्रुति थी, कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" अर्थात् स्त्री और शूद्र को पढ़ने का अधिकार नहीं। स्वामी जी ने इस दुर्ग को भूमिसात् कर दिया। आज कोई नहीं बता सकता कि यह श्रुति कहांकी है और किस पुस्तक का यह वाक्य है। स्वामी दयानन्द ने स्त्री-जाति पर गहरा उपकार किया और भारतवर्ष में आन्तरिक सुधार प्रारम्भ किया। बाहर का जीवन चिरस्थायी नहीं होसकता, परन्तु आंतरिक जीवन चिरस्थायी होता है। स्वामी ने बतलाया कि स्त्री और शूद्र को पठन पाठन का पूर्ण अधिकार है। उन्होंने मुर्दा आत्माओं में अन्दर से शक्ति पहुँचाई। यह उस आत्मा का एक उज्ज्वल काम था।

ऋषि दयानन्द का तीसरा काम।

भगवान् दयानन्द का तीसरा काम यह था कि उनके शुभागमन से पूर्व आर्य्यावर्त में प्रत्येक गृह मूर्त्तिपूजा का केन्द्र बना हुआ था परन्तु मन्दिरों की दशा अतिहीन थी। वह कौओं और चीलों के विश्राम-स्थान बने हुए थे, जीवन मन्दिरों के सुधार का किसीको ध्यान न था। लोग केवल मूर्त्तिमान् ठाकुर जी की ही पूजा करना धर्म समझते थे। यह प्रायः प्रचलित बात थी कि परमात्मारूपी ठाकुर जी की ही पूजा करनी चाहिये और वह इस शरीररूपी मंदिर की किञ्चित्-मात्र भी अपेक्षा न करते थे। इस शरीरकी रक्षा तथा पालन पोषण करने वाला बुरी दृष्टि से देखा जाता था, टूटे फूटे मन्दिर को सुधारना दिखावा समझा जाता था। स्वामी दयानन्द ने बतलाया कि तुम्हारी मूर्त्तियां सुन्दर नहीं रह सकतीं जब तक तुम अपने मन्दिरों को दृढ़ नहीं बनाते। यह आत्मा अपनी ज्योति को भली प्रकार प्रकाशित नहीं कर सकता, जब तक उसका स्थान यह मन्दिर शुद्ध न हो, यह तीसरी बात थी जो स्वामी दयानन्द ने हमको बतलाई। ब्रह्मचर्य्य को धारण करो, शरीर को पुष्ट बनाओ। गृहस्थी लोग शरीर की रक्षा का साधन करें यह धर्म है। हमारे प्राचीन पुरुष बतलाते हैं कि स्नान करना धर्म हैं, ऋषि दयानन्द भी उनके ही

पद चिन्हों पर चलता है और स्मृतियों के अनुसार उपदेश देता है कि यदि यह शरीर रूपी मंदिर ठीक नहीं तो उसके अन्दर जो प्रबल मूर्त्ति आत्मा है वह इसमें कभी नहीं रह सकेगी।

ऋषि दयानन्द का चौथा काम।

स्वामी जी महाराज का चौथा कार्य यह है कि आर्यों में उसके शुभागमन से पूर्व अनेक सम्प्रदाय होने के कारण कोई एक ऐसा स्थान न था जिसमें सब आर्य मिल कर बैठ सकें। आर्यों का कोई एक ऐसा मन्दिर न था जहां बैठ कर वे भगवान् की मिल कर पूजा कर सकें। भिन्न २ सम्प्रदायों के अतिरिक्त आर्यों में एक जातिभेद की न्यूनता भी थी, यह न्यूनता प्राचीन काल में न थी परन्तु स्वामी जी के समयकाल में बहुत वेग से प्रचलित थी। स्वामी जी ने बतलाया कि यह तुम्हारी पृथक् नहरें एक महान् सिंधु की शाखाएं हैं और वह धर्म जिसको तुम्हारे बुजर्ग मानते आये हैं वह वैदिकधर्म है। आओ और इसे मानो यह तुम्हारा सबका सांझा है। यह चौथा दान था जो स्वामी जी ने हमें दिया। यद्यपि वेद पहले से भी यहां थे तथापि वे इन निर्बल हाथों में थे जो अपने वस्त्र भी न संभाल सकते थे यद्यपि हाथों में मुद्रा और कङ्कण पड़े हुए थे तथापि वह गाजर मूली से भी बलहीन थे। स्वामी ने

कहा कि वेद को बुद्धि और ज्ञान के बलवान् हाथों से पकड़ो जिससे कोई इसे तुमसे छीन न ले जाय । अब आप वेदों की वेदी पर सब सम्प्रदायों को निमंत्रित कर सकते हैं। समय आयगा जब तुम लोग तुच्छ भेदों को छोड़ कर एकत्रित होगे ।

ऋषि दयानन्द का पांचवां काम ।

पांचवां काम जो स्वामी दयानन्द ने किया वह यह था कि हमको ईश्वर का ज्ञान दान दिया । उनके प्रादुर्भाव के समय लोगों में आस्तिकभाव बहुत शिथिल हो चुका था। लोग वैदिक और दार्शनिक ईश्वर को कोई ऐसा उच्च न समझते थे और इसी लिए वह दूसरे लोगों के ईश्वरों को मानने लग गये थे परन्तु भगवान् दयानन्द ने बतलाया कि वैदिक ईश्वर ही सबसे महान् है। सम्प्रदायों के ईश्वर अलङ्कारों के पर्दों में छिपे हुए थे। स्वामी दयानन्द ने यह पांचवां काम यह किया कि माया से ढके हुए परमात्मा के सुन्दर मुख को उज्ज्वल रूप में प्रकट कर दिया ।

क्या स्वामी दयानन्द द्वेष का प्रचारक था ?

मैंने कहा था कि स्वामी दयानन्द प्रेम और पुरुषार्थ का अवतार था। आप कहेंगे इसमें क्या प्रमाण ? सज्जनगण ! प्रेम का लक्षण ही यह है कि अपने से

निर्बलों का उद्धार किया जाय । राम ने भिलनी के बेर खाये, कृष्ण ने सुदामा के चावल रुचि २ भोग लगाये । प्रेम किसी विशेष रङ्ग, रूप अथवा कुल की अपेक्षा नहीं करता । यदि समस्त भेद कहीं आकर मिटते हैं तो वह प्रेम की लहर में आकर मिटते हैं । स्वामी का पुरुषार्थ कितना महान् और उसका प्रेम कितना विशाल है ? उसके साथी मठों में बैठे हुए सुख भोग रहे हैं परन्तु दयानन्द दण्डी हाथ में दण्ड लिए दिन रात दौरा करता है । इस लिए नहीं कि वह अपना मठ बनाना चाहता है अथवा ऐश्वर्य बढ़ा कर अपनी पूजा करवाना चाहता है । प्रत्युत इस लिए कि इस देवभूमि का उद्धार हो, आर्यों में धर्म का प्रचार हो, लोगों में विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश हो ।

सज्जनगण ! स्वामी दयानन्द ने जो लेख का काम किया वह स्वयं एक महान् कार्य था परन्तु इसके अतिरिक्त वह नगर २ लोगों को उपदेश देता और उठाता फिरा । यह कोई साधारण काम नहीं । यह किसी परम वैराग्य वाले योगी का ही काम है । लोग ईंटें और पत्थर फैंकते हैं, गालियां निकालते हैं, तलवार उठाते हैं ज़हर देते हैं परन्तु वह प्रेम और पुरुषार्थ का अवतार पीछे नहीं हटता । प्रश्न होता है कि ऐसा परम दयालु हितैषी पुरुष दूसरे मतों पर ऐसे कठोर और कटु शब्दों

का प्रहार क्यों करता था ? यह दोष स्वामी जी के जीवन में नहीं प्रत्युत उनकी मृत्यु के बाद उनपर आरोपित किया गया था । उनके जीवन में सब मतों के नेता उनकी प्रशंसा करते और सत्संग से लाभ उठाते थे ।

सज्जनगण ! यह असत्य है कि स्वामी जी ने किसीका दिल दुःखाया वह अपनी पुस्तक सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि मेरा उद्देश्य केवल सत्य-असत्य का निर्णय करना है । ग्रहण करने के योग्य सचाइयां सबमें पाई जाती हैं परन्तु अवांतर भेद है । पण्डितों के विरोध से सर्वसाधारण में विरोध होता है अतः पण्डितों को परस्पर मिल कर निर्णय कर लेना चाहिये मैंने यह लेख अन्य के विषय में इस लिए दिया है कि थोड़ा २ ज्ञान सब मतों का सबको होजाय और लोग सत्यासत्य का निर्णय कर अपने कर्तव्य को समझ सकें । अंत में आप लिखते हैं कि जो कुछ उचित प्रतीत हो माना जाय, ऋषि दयानन्द अपनी सम्मति पर मोहर नहीं लगाते किन्तु स्वतन्त्रता देते हैं कि यदि उचित दे, तो मानो ।

सज्जनगण ! यह उसी महात्मा के प्रयत्न का फल है कि आज दस २ बारह २ सहस्र भिन्न २ विचारों के लोग एक स्थान पर बैठ कर अपने महात्माओं के चरित्रों को स्मरण करते हैं । एक बात कह कर मैं समाप्त करूंगा वह यह कि आज अंधेरी रात्रि में भगवान् ने उस नश्वर

संसार से प्रस्थान किया था, स्वामी जी ने मरते हुए यह शिक्षा दी कि मैं तुम्हारे अंदर प्रीति और पुरुषार्थ का प्रचार कर यह अंधेरी रात्रि तुम्हारे लिए छोड़ जाता हूं ताकि देखूं कि तुम मेरी ज्योति को कितनी देर तक स्थिर रखते हो । स्वामी जी के आज परलोकगमन का यही भाव है, कि तुम संसार में दीपक बन कर चमको । परन्तु स्मरण रक्खो कि दीपक पास पास रक्खे बहुत शोभा दिया करते हैं अकेला दीपक टमाटमा कर रह जाता है । इस लिए तुम इकट्ठे होकर एक कतार बन जाओ और अपने प्रकाश से देश देशांतर और द्वीप द्वीपांतरों को चमका दो ।

भगवान् दयानन्द की जय।

आर्य जनता! आओ, अपने गुरु आचार्य की अपार दया के लिए कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए, निर्वाण उत्सव मनाते हुए एक स्वर होकर बोलें, गुणनिधान, महान्, महर्षि, भगवान् आनन्दकन्द दयानन्द दयालु की जय!

आदित्य ब्रह्मचारी अटल अखण्ड व्रतधारी की जय, धर्म धुरन्धर ज्ञान समुद्र की जय। पाखण्डखण्डिनी झण्डी के झुलाने वाले की जय। आर्य जाति की बिगड़ी को बनाने वाले, पतितों को उठाने वाले, और बिछुड़ों को मिलाने वाले की जय। आर्य जीवन-दाता वैदिक-धर्मत्राता संन्यासी परम धामवासी की जय। अधम उद्धारण, आर्य जाति की जागृति के कारण और पालक पोषक की जय। काशी के जेता, धर्म के नेता अद्वितीय वेदवेत्ता की जय। परमात्मा के प्यारे डूबतों के सहारे की जय। आर्य युग के प्रवर्त्तक, कुरीतियों के निवर्त्तक, कलिकाल के नाशक, सत्य के प्रकाशक, निष्कलङ्क की जय। चारों कोट में नामी, आनन्दधामी, परमपदगामी, दयानंद सरस्वती स्वामी की जय। कुनीति गजकेसरी, दुष्टता हरण की महेश्वरी (दुर्गा) की जय। न्याय के निधि आर्य्य जगत् के विधि (ब्रह्मा)

की जय। तर्क के अवतार, शोभा के सार, युक्ति के भण्डार की जय। सुमार्ग प्रदर्शक, सज्जन मन-हर्षक की जय। गुण कर्म स्वभाव के अनुसार वर्णव्यवस्था की जय। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के बोधक, कुशिक्षा के शोधक शांतिमूल शंकर की जय। स्त्री-जाति को धर्म-शिक्षा, दीक्षा दिलाने वाले, अबलाओं के सम्मान बढ़ाने वाले, गिरतों को उठाने वाले की जय। वेद प्रचार के चालक वैदिक समता के पालक, शम, दम, क्षमा सिंधु की जय। दया और आनन्द के सागर, चरण वन्दनीय दयानन्द की जय। सोतों को जगाने वाले, आर्य नाम बताने वाले, नमस्ते का दिव्यनाद बजाने वाले, मत मतांतरों की रंगभूमि में शृगालों को सिंह बनाने वाले, चिड़ियों से बाज़ भगाने वाले की जय। सत्य के उपदेशक की जय। अहिंसा धर्म के वर्धक, प्रीति रीति के प्रचारक, राग द्वेष के हारक की जय। सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रसारक, भवसागर से तारक की जय। निराकार एक ईश्वर के पूजक निर्लोभी, निरभिमानी, महाध्यानी दयानन्द यथार्थ ज्ञानी की जय। सदा कर्म धर्म परायण महा कर्मयोगी की जय। ब्रह्मचर्य्य शिक्षक ब्रह्मपूजक ब्रह्मज्ञाता, अनाथों के नाथ संगी साथी और भ्राता की जय। मुर्दों में संजीवनी जीवनी भरने वाले, सकल संदेह समूह को हरने वाले की जय। पूर्ण काम,

सिद्ध काज, तरण तारण जहाज़, प्रभु दयानन्द महाराज की जय । हे जग में आर्यसमाजरूपी उज्ज्वल ज्योति जलाने वाले जगत् गुरु दयानन्द । तेरी रोम २ से जय जय ! युग २ में जय जय !!

दयानन्द स्मरण और दयानन्द व्रत।

दीपमाला का दिन प्रत्येक आर्य्य के लिये एक विशेष दिन है। इसी दिन महर्षि दयानन्द ने अतुल परोपकार करते हुए और घोर तप करते हुए परमधाम में विश्राम लिया था। हमें चाहिये कि इस दिन हम अपने गुरुदेव के गुणों का स्मरण करें। प्रत्येक आर्य गृह में स्वामी के ग्रन्थों का पाठ, स्वामी के पवित्र चरित्र की कथा और स्वामी के शुभ गुणों की चर्चा होनी चाहिये। प्रत्येक आर्य को उस दिन स्वामी जी माहराज के असीम उपकार के लिए कृतज्ञता का प्रकाश करना चाहिये। हम ऐसा सुनते हैं कि जो जैसा स्मरण करता है वह वैसा ही होजाता है, परन्तु यह स्मरण एक तीव्र लग्न से होना चाहिये। किसी दूर के दृष्टान्त की आवश्यकता नहीं। जिस पुरुषोत्तम के गुणों का कीर्त्तन, यश का वर्णन और उपकारों तथा सुधारों का स्मरण होरहा है उन्हींके पवित्र चरित्र को देखिये। अनेक महात्माओं के सत्संग से योग के अंगों को अनुशीलन करके सिद्धि को प्राप्त, सुबोध, अनुभवी, शान्त-आत्मा, जितेन्द्रिय, तेजस्वी, कौपीनमात्र-धारी, एक अखण्ड ब्रह्मचारी, आदर्श, आर्ष-व्याकरण और आर्य ग्रन्थों को सीखने की इच्छा से महात्मा विरजानन्द की कुटी के द्वार पर खड़ा है। विरजानन्द जी आज्ञा

करते हैं तुम तब मेरे शिष्य तब बन सकते हो जब सब अनार्य ग्रन्थों को भुला दो। इस कुटिया में केवल आर्य ग्रन्थों का ही मान है। 'गुरुजनों से किसी विनीत भाव से ज्ञान लाभ करना चाहिये' इस मर्म को जानने वाले महामुनि दयानन्द ने अपने नवीन विद्या-गुरू की इसी आज्ञा को प्रसन्नता से शिरोधार्य किया। छोटेपन से पढ़े हुए चिरकाल से स्मरण किये हुए और पुराने अपनाये हुए कौमुदी आदि अनार्य ग्रन्थों की ममता और उनकी पण्डिताई के अभिमान को मनके धनी, महान् पुरुष ने तत्क्षण अपने हृदय से दूर कर दिया। विरजानन्द जी के चरणों में बैठ कर इस सादगी और सरलता से सीखने लगे, मानों उन्होंने पहले कुछ पढ़ा ही न था। स्वामी जी महाराज की गुरुभक्ति, गुरु की आज्ञापालन गुरुचरण सेवा और विनय अनुकरण करने योग्य आदर्श रूप हैं। इस प्रकार निरन्तर गुरु आराधन से स्वामी जी महाराज की अन्तःकरण भूमि से पुराणों के प्रेम का अंकुर छेदन होगया, अनार्य ग्रन्थों का मान सर्वथा मिट गया और पन्थों की पोल का प्रत्येक पार्श्व उन्हें स्पष्टतया दीखने लगा। सच पूछो तो ऋषि के हृदय में ऋषि मुनियों का मान बढ़ाने का कारण ऋषि आत्मा को कर्मयोग के विकट कार्यक्षेत्र में वीर धीर बना कर उतारने का हेतु और ऋषि को वैदिक धर्म का उद्धारक आर्य जाति का सुधारक बनाने का साधन स्वामी विरजानन्द का आराधन ही हुआ।

शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के गुणों को अपनी आत्मा के अन्दर धारण करे। जो उत्साह आर्य ग्रन्थों के प्रचार और अनार्य ग्रन्थों के खण्डन का महात्मा विरजानन्द जी के अन्दर विद्यमान था, जो प्रीति वैदिक प्रणाली के लिये उनमें पाई जाती थी, स्वामी दयानन्द में उन सब का पूर्ण प्रकाश था। इस अंश में विरजानन्द आराधन से दयानन्द विरजानन्द ही बन गये। जिस प्रकार लोहे का गोला अग्नि में पड़ कर अग्नि के रूप रंग को धारण करके अग्निमय होजाता है इसी प्रकार शिष्य का धर्म है कि सत्‌गुरु सेवन, गुरु स्मरण और गुरु के शुभ कर्मों के अनुकरण से गुरु का अवतार ही बन जाय। ऐसे ही अनुयायी, अनुगामी, लग्न वाले भक्त लोग अपने आचार्यों और गुरुजनों के शुभ विचारों और सुधारों को सातसागरों से पार ले जाते हैं, नवखण्ड में फैला देते हैं, उनके धर्म की जयध्वनि तीनों लोकों में तीन काल गूंजती रहती है।

आर्यजनो! आर्य्य धर्म का ऐसे ही स्वामी-भक्तों, धर्म प्रेमियों और स्वार्थ त्यागियों की आवश्यकता है। इस भाव को उत्पन्न करने के लिये स्वामी दयानन्द का स्मरण मूल मन्त्र है। स्वामी दयानन्द विशिष्ट गुणों का समूह था। उनके स्मरण से उनके गुणों के स्मरण क तात्पर्य है। उनका जीवन हमें बताता है कि वह सत्य

परायण थे और सत्य ही के लिए जीते थे। वह उत्साह और सहारे के पुञ्ज थे। धर्म प्रचार के रङ्ग में गूढ़े रङ्गे हुए थे। सुधार के अवतार थे। परोपकार की मूर्त्ति थे अभिमान रहित आत्मत्यागी निर्भय थे। वीर धीर थे। सोते, जागते, चलते फिरते, उठते बैठते उनके मन में सदा एक ही लग्न और ही उद्देश्य रहता था और वह यह कि धर्म प्रचार हो और समाजिक सुधार हो। महर्षि के गुणों का स्मरण और चरित्र पाठ ऐसा होना चाहिये कि अपने चित्त की चादर पर उनके गुणों का रङ्ग बसने लग जाये। जिस प्रकार चुम्बक से लग कर लोहा भी चुम्बक होजाता है एवं दयानन्द के गुणों को धारण करके अपना आत्मा भी दयानन्द की कला से चमकने लग जाये। हृदय उसी उत्साह से भर आयें। आत्मा में वही भाव जाग उठें और कर्मों में वैसी ही प्रबलता आजाय। यह सत्य कहा गया है कि मनुष्य झूठ और देव सत्य होते हैं। इस लिए देव-स्वरूप महर्षि को ही नेता, आचार्य, गुरु और पथ-प्रदर्शक मान कर उनके कर्मों का अनुकरण करना हम आर्यों का कर्तव्य है। मनुष्य-उपासक बनना नहीं चाहिये। जब बालक अथवा यजमान दीक्षा लेता है तब उसे कहा जाता है कि गुरु के व्रत तेरे दिल में स्थापित किये जाते हैं। तेरा चित्त गुरु के चित्त के अनुकूल हो। गुरु के वचनों को एक मन से सेवन कर। परमेश्वर गुरु

के साथ [illegible] ने भगवान्
दयानन्द [illegible] परोपकार
दीक्षा ली [illegible] आपके धर्म
गुरु हैं । [illegible] पने आपमें
धारण करो ।

दया[illegible] व्रत ।

[illegible] सुकर्म, परोपकार, धर्म प्रचार, ईश्वर प्रेम और भक्ति, [illegible] श्रद्धा, आर्य ग्रन्थों की प्रीति और सत्य के प्रकाश में [illegible]दा निर्भय वीर धीर बने रहना है । जहां तक बन पड़े उनके कर्म करो उनकी आत्मा को अपने आपमें धारण करो । यहां तक कि दयानन्द जीवन की ज्वाला हृदय में भड़क उठे ! मन में धर्म प्रचार और सुधार की उमङ्ग के नित्य नये अनगिनत तरङ्ग उठते रहें । सोते भी दयानन्द बनने के स्वप्न आने लग जावें । यह दशा दयानन्द व्रत धारण करने से अवश्य होगी । लोग अपने महापुरुषों के नाम से व्रत धारण करते हैं और भूखे रहते हैं मैं आपको ऐसा व्रत नहीं बता रहा । यह व्रत भूखे रहने का नहीं हैं । यह व्रत फलाहार का नहीं है, यह व्रत भंसने पूजने का नहीं है और नांहीं यह व्रत महात्मा सुना कर टके बटोरने का ही है । यह व्रत दयानन्द के आर्य जीवन की ज्योति को अपने दिल में जगाने और दूसरों को वह ज्योति दिखाने का है । स्मरण करो कि आपके

गुरु त्यागी और निःस्वार्थी थे। आपके व्रतों में भी त्याग और निःस्वार्थपन मुख्य होना चाहिये।

स्वामी जी महाराज ने सहस्रों आर्य बनाये, अनेक आर्यसमाज स्थापित किये, लोगों को मन्त्री प्रधान आदि उच्चपद भी दिये परन्तु स्वयं किसी मठ की महन्ती के लिये बिना सरोवर के पद्मकमल की न्याईं सब पदवियों से पृथक् और निर्लेप रहे। अपने आपको अपने कामों के फलों और नामों से निर्लेप रखना कर्मयोगी दयानन्द का घोरतर तप और महात्याग है। सब व्रतों से यह बड़ा व्रत है। यही व्रत किसी गिरी हुई जाति को उठाने और बिगड़े हुए धर्म को सुधारने का उत्तम साधन है यही व्रत आर्यसमाज की आधारशिला है। यह वह व्रत है जिसके धारण करने वाले का कोई मुकाबला नहीं करता, जिसके धारण करने से उन्नति ही उन्नति होती है और कभी पग पीछे नहीं पड़ता। यह वह व्रत है जो विचारों और सुधारों को मनुष्य मंडल में पानी पर तेल की न्याईं फैला देता है। दयानन्द के व्रत से व्रती होकर यह भाव फैला दो कि वही उपदेशक पुरस्कार अथवा आदर के योग्य है जिसने अपने उपदेशों से अधिक आर्य बनाये हैं। वे ही अधिकारी आगे को अधिकार दिये जाने के पात्र हैं जिन्होंने अपने अधिकार काल में आर्यजन संख्या में वृद्धि की है। आर्य जीवन बनाना और आर्य धर्म फैलाना आर्यसमाज

का काम है। यह कर्म हार्दिक उत्साह और गहरी लग्न से हो सकता है। उत्साह और सच्ची लग्न का अटूट भण्डार आर्यों के लिए आनन्दकन्द दयानन्द का ज्वलंत जीवन है। आपके जीवन की मशीन के पुर्जे दयानन्द की जीवन शक्ति से सच्चे और सरल मार्ग पर अवश्यमेव हिलने लग जावेंगे। अपने अन्तःकरण का सम्बन्ध उस तार के साथ कर दो जो दयानन्द के जीवन की बिजली की प्रबल धारा के बहने का मार्ग है फिर किसीका हृदय-इंजन कितना ही बोझल क्यों न हो, अवश्यमेव चलने लगेगा। उसकी गति सैकड़ों कोसों को पार कर जावेगी, वह हज़ारों मन बोझ खींच सकेगा और सैकड़ों मनुष्यों को अपनेमें बिठला इष्टस्थान को ले जाना उसके लिए सहज कार्य होगा। यह सब बर्कतें पहले दयानन्द-व्रत ही से आर्यों को लाभ हुई थीं और आगे को भी होंगी।

महर्षि के चरण शरण में धन्यवाद की पुष्पाञ्जलि ।

आर्य्य-मण्डल ! भगवान् दयानन्द का निर्वाण-उत्सव मानते हुए, अपने मन्दिरों की दीपमाला से शोभा बढ़ाते हुए सत्यार्थप्रकाश की उज्ज्वल छटा में बैठ कर हृदयाकाश में दिव्यनेत्रों से महर्षि के देवत्व और दिव्य स्वरूप के दर्शन करो और विनीत भाव से कृतज्ञता प्रकाशित करते हुए मुख से कहो कि आर्य्य जीवन के दानी आर्य्यसमाज के बानी श्री स्वामी जी महाराज ! आपका धन्यवाद हो ।

धन्यवाद हो सच्चे धर्मोपदेशक शुभ दर्शन स्वामी आपका धन्यवाद हो । नर नारियों के उद्धार के लिए बिगड़ों के सुधार के लिए दुःख सागर में डूबतों के निस्तार के लिए, नगर नगर और ग्राम ग्राम में पर्यटन करके वैदिक धर्म के प्रचारक, संतप्त हृदयों में सुख-संचारक सौम्य स्वभाव और सन्त आपका धन्यवाद हो ।

ईंट पत्थर धूल कङ्कर और कुवचनों की बौछार सहन करते हुए मृत्यु के भयानक दृश्य से भी न डरते हुए एकमात्र सत्य के विस्तारक महावीर परमधीर अति गम्भीर श्रीदयानन्द सरस्वती जी महाराज आपका धन्यवाद हो ।

मान अपमान, राग द्वेप दूर, प्रेम अमृत से भरपूर, परस्पर के स्नेह-सूत्र में आर्य जनता को पिरोने वाले आर्यजाति की कालिमा को धोने वाले, ऋषि मुनियों की आन, पुरातन सनातन आर्य रीति के जीवन और प्राण, अद्वितीय विद्वान् और गुणनिधान महान् महामुनि आपका धन्यवाद हो।

पुरुपार्थ प्रिय, कर्तव्य परायण, धर्म का मर्म जानने वाले एक ईश्वर के मानने वाले, निर्लोभी, निर्लेप आपका धन्यवाद हो। आर्यों की मानमर्यादा के रक्षक, मर्यादा पुरुषोत्तम आपका धन्यवाद हो।

स्वार्थ के नाशक, परमार्थ के प्रकाशक, परोपकार और परहित के मुख्योद्देश्य दर्शक, तेजः पुञ्ज, पुण्य धाम, पूरण काम धन्य नाम, आपका धन्यवाद हो।

पाखण्ड खण्डन, सत्य के मण्डन आपका धन्यवाद हो। प्रेम की नहर चला के ज्ञान की निर्मल गङ्गा बहा के, विशुद्ध भक्तिमय जीवन के प्रदानकर्त्ता पाप-तापहर्त्ता, भाग्यशाली, भक्तराज सफल मनोरथ सिद्ध काज भगवन् आपका धन्यवाद हो।

परम प्रभु के प्यारे, हमारे आश्रय और सहारे, प्रभु आपका धन्यवाद हो।

उज्ज्वल ज्योति दिखा कर भय भ्रम भूल को मिटा कर पक्षपात और हठधर्मी को हटा कर आर्य्यसमाज के

प्रवर्त्तक कुमत् कुपन्थ के निवर्तक परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद जगत् गुरु आपका बार २ धन्यवाद हो।

कलियुग की कला मिटाने वाले, सतयुग की आशा बंधाने वाले, आर्य पदवी दिलाने वाले, हमारे उत्साह को बढ़ाने वाले, आर्य जगत् के अधिपति संन्यासी आपका सदा धन्यवाद हो।

ब्रह्मज्ञान के अमृत-सरोवर में स्नान करवा कर अमर जीवन और शान्ति के दाता, ब्रह्मज्ञानी, परमध्यानी, योगीश्वर आपका हार्दिक धन्यवाद हो।

धीरज के धनी, आर्य्य जाति के अमूल रत्न आपका धन्यवाद हो।

महा तपस्या के धारी, अविद्या अन्धकार के हारी, अखण्ड ब्रह्मचारी यतिराज आपका धन्यवाद हो।

कर्म भूमि के पूज्यदेव! कर्म काण्ड में श्रद्धा वर्द्धक! परम कर्म योगी, आदर्श जीवन, आपका धन्यवाद हो।

कार्य क्षेत्र में अटल वीर, सुख दुःख में अचल धीर आर्य्य-वाटिका में आनन्द नीर, आपका धन्यवाद हो।

हमारे मार्गदर्शक, आनन्दकन्द दयानन्द आपका धन्यवाद हो। हमारे प्रेम के पवित्र पात्र, श्रद्धा और भक्ति के उत्तम भाजन, बोध के कारण, विद्या बुद्धि के भण्डार आपका धन्यवाद हो! धन्यवाद हो!! धन्यवाद हो आपका हमारे गुरुदेव श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामी, परम

पद्धामी, आपका हज़ार बार धन्यवाद हो। कोटिशः धन्यवाद हो, रोम रोम से धन्यवाद हो, अन्तःकरण से धन्यवाद हो, और युग युगान्तर में धन्यवाद हो।

॥ इति ॥

श्री स्वामी सत्यानन्द जी रचित अन्य पुस्तकें
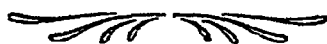
१—श्रीमद्दयानन्द प्रकाश—पूर्ण श्रद्धा और भक्ति के रंग में लिखा हुआ ऋषि दयानन्द जी का सचित्र जीवन चरित्र पांचवीं वार छपा है १॥)

२—दयानन्द-वचनामृत—प्रत्येक विषय पर ऋषि के विचारों का संग्रह ॥=)

३—आर्य्यसामाजिक धर्म्म—आर्य्यसमाज के दस नियमों की सुन्दर व्याख्या ॥)

४—ओंकार-उपासना—परमात्मा के मुख्य नाम ओम् की व्याख्या ≡)

५—सन्ध्या योग—सन्ध्या तथा उसमें आई हुई क्रियाओं की अपूर्व व्याख्या ।−) उर्दू ।)

६—सत्य-उपदेशमाला—इस पुस्तक में भक्तियोग, कर्म-योग, ज्ञानयोग, राजयोग तथा अन्य आध्यात्मिक विषयों की व्याख्या है १।) उर्दू में ॥।)

७—वैदिक भक्ति प्रदर्शन—यह पुस्तक स्वामी जी ने हिन्दूमात्र के दैनिक पाठ के लिए लिखी है ।=)॥

८—गीता—सरल भाषा अनुवाद-बहुत ही बढ़िया पुस्तक है ॥।=) रंगीन छपाई १)

पुराणालोचन ग्रन्थमाला ।

दयानन्द उपदेशक विद्यालय की ओर से १८ पुराणों की आलोचना तथा अन्वेषण का काम आरम्भ कर दिया गया है इस समय तक जिन २ पुराणों की आलोचना प्रकाशित होचुकी है उनको जनता ने बड़े आदर की दृष्टि से देखा है बाकी पुराणों की आलोचना तैयार हो रही है ।

स्थायी ग्राहकों को विना किसी डाक तथा वी० पी खर्च के घर बैठे मूल्यमात्र में पुस्तक मिल जाती है । केवल १) देकर आप स्थायी ग्राहक बन सकते हैं ।

१. **वराह पुराणालोचना**—इस पुस्तक में वराह पुराण की पूरी तरह छानबीन करके बड़े मनोरंजक रूप में उसका असली चित्र दिया गया है । पढ़ने में उपन्यास से भी बढ़कर आनन्द आता है । मूल्य ॥)

२. **शिवपुराणालोचना**—यह पुस्तक बहुत ही मनोरञ्जक है । हिन्दुमात्र को पढ़नी चाहिए । पुराणों में शिव की स्तुति की गई है या निन्दा, यह इससे भली भान्ति पता लगता है । मूल्य १।)

३. **गरुड़पुराणालोचना**—मनुष्य के मरने पर हिन्दुओं में गरुड़ पुराण की कथा कराई जाती है यह परलोक की बातों से भरा पड़ा है इसकी गप्पें बड़ी मज़ेदार हैं । पढ़ने से जानकारी भी बढ़ेगी ॥)

४. **लिंगपुराणालोचना**—सारी सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की बड़ी सुन्दर व्याख्या की गई है ।